विषय सूची

चित्र-सूची

द्वारकिन के हारमोनियम

पचपन साल पहले हाथ से बजाने वाले हारमोनियम का आविष्कार द्वारकिन कार्यालय ने किया था और वर्षों से हिन्दुस्तान वही एक हारमोनियम का कारख़ाना रहा है। आज हिन्दुस्तान में हाथ से बजाने वाले हारमोनियम के हज़ारों कारख़ाने हैं, किन्तु द्वारकिन के बाजे दुनिया में चारों ओर मधुर टोन, उम्दा कारीगरी और मज़बूती के लिहाज़ से सबसे अच्छे माने जाते हैं। जब आप द्वारकिन का हारमोनियम ख़रीदेंगे, आप केवल बाजे का ही दाम देंगे, किन्तु आपको हमारे अनुभव का लाभ मुफ़्त में ही होगा जो सचमुच ही बड़ा मूल्य[illegible]ा। द्वारकिन के हारमोनियम के एक-एक इञ्च पर द्वारकिन कार्यालय के पुराने अनुभव की और उम्दा कारीगरी की मुहर पड़ी हुई है।

ख़ास ज़रूरत से सूचीपत्र मँगाइए—**द्वारकिन एण्ड सन्स,**

१२ स्प्लेनेड और ८ डलहौज़ी स्क्वायर,

कलकत्ता

१०००) मासिक कमा लो

इस 'व्यापार मित्र' नामक पुस्तक में ३४० व्यापारों का वर्णन है कि जिनसे बहुत थोड़ी पूँजी से भी दो-चार रुपए रोज़ आसानी से कमाया जा सकता है। ज़्यादा रुपए लगाया जावे तो हज़ारों की आमदनी हो सकती है। इससे बहुत से निर्धन धनी बन गए हैं। सब रोगों की दवाएँ बनाना, नक़ली सोना-चाँदी व जवाहरात बनाना। बार्निशें, साबुन, लिखने और छापने की स्याहियाँ, गिलट करना, सिगरेट, मोमबत्ती, गेस, बिजली बनाना, सुगन्धित तैल, ख़िज़ाब, मलहम, अर्क़ काफ़ूर, धातु, रबर का सामान, टाइप के अक्षर, बिस्कुट, पारे की अँगूठी इत्यादि-इत्यादि बनाने की तरकीबें इस पुस्तक में लिखी गई हैं। तुरन्त ऑर्डर भेजिए। पहला संस्करण हाथों-हाथ बिक चुका है। मूल्य प्रति पुस्तक १); वी० पी० ख़र्च ।-)

जे० एल० सन एण्ड ब्रादर्स मैनपुरी यू० पी०

वशीकरण अञ्जन (सुर्मा)

अगर आप किसी स्त्री-पुरुष, हाकिम, अफ़सर, मालिक को वश में करना चाहते हैं, अगर पति पत्नी से प्रेम नहीं करता या पत्नी की इच्छानुकूल कार्य नहीं करता या पत्नी को हर समय तङ्ग करता, दुखित रखता है, कहा नहीं मानता तो पत्नी वशीकरण अञ्जन सेवन करे, जिसके प्रभाव से पति अपने प्रथम अनुचित कर्मों का पश्चात्ताप कर पत्नी की साक्षात् लक्ष्मी की तरह पूजा करेगा, यह एक सिद्ध बात है। अगर पत्नी बदज़बान है, हर समय आपको अपने आचार-व्यवहार से दुखित रखती है, आपका घर कोलाहल से पूर्ण, सुख-शान्ति, प्रेम और धन-सम्पत्ति से वञ्चित है तो वशीकरण अञ्जन सेवन कर आप विश्व भर की सुख-शान्ति और प्रेम के भण्डार के स्वामी बनें। ग़लत होने पर १००) रु० इनाम देंगे, इससे अधिक सचाई क्या हो सकती है? अगर अब भी हम पर विश्वास न हो तो अपने मन्द भाग्य को कोसें। अगर विश्वास हो तो मँगाएँ। क़ीमत मय पर्चा सिर्फ़ ३) रु०

दी ऑल इण्डिया मैस्मरेज़म हाउस

एण्ड मैजीकल वर्क्स (चाँ)

पोस्ट-बॉक्स नं० १५, फ़ीरोज़पुर सिटी

अबलाओं पर अत्याचार

इस पुस्तक में भारतीय स्त्री-समाज का इतिहास बड़ी रोचक भाषा में लिखा गया है। इसके साथ स्त्री-जाति के महत्व, उससे होने वाले उपकार, जाग्रति एवं सुधार को बड़ी उत्तमता और विद्वत्ता से प्रदर्शित किया गया है। पुस्तक में वर्णित स्त्री-जाति की पहली अवस्था, उन्नति एवं जाग्रति को देख कर हृदय छटपटा उठता है और उस काल को पुनः देखने के लिए लालायित हो जाता है! इसमें वर्तमान स्त्री-समाज की करुणाजनक स्थिति का सच्चा और नग्न-चित्र चित्रित किया गया है। मू० २॥), स्थायी ग्राहकों से १॥।=)

विदूषक

नाम ही से पुस्तक का विषय इतना स्पष्ट है कि इसकी चर्चा करना व्यर्थ है। एक-एक चुटकुले पढ़िए और हँस-हँस कर दोहरे हो जाइए, इस बात की गारण्टी है। एक विशेषता इस पुस्तक में यह है कि सारे चुटकुले विनोद-पूर्ण और चुने हुए हैं। कोई भी चुटकुला पढ़ कर अगर दाँत न निकल पड़ें तो मूल्य वापस! मू० १), स्थायी ग्राहकों से ॥।)

मुग़ल दर्बार-रहस्य

उपनाम

अमृत और विष

यह ऐतिहासिक उपन्यास मुग़ल-दर्बार-रहस्य के आधार पर लिखा गया है। यदि नूरजहाँ के शासन-काल के दाँव-पेच देखना हो; यदि देखना हो कि हिन्दुओं के ख़िलाफ़ मुसलमानों के शासन-काल में कैसे-कैसे भीषण षडयन्त्र रचे जाते थे; यदि मुसलमान-बादशाहों की काम-पिपासा, उनकी प्रेम-लीला और विलासिता का नग्न-चित्र देखना हो तो इस महत्वपूर्ण ऐतिहासिक उपन्यास को अवश्य पढ़िए। बहादुर राजपूत-नवयुवकों की वीरता का भी आदर्श-नमूना आपको इसमें मिलेगा। जुलेख़ा नामधारिणी एक हिन्दू-महिला की वीरता, साहस और राजनीतिक दाँव-पेच की सत्य घटनाएँ पढ़कर आपको दाँतों तले उँगली दबानी पड़ेगी, उस समय का सारा इतिहास बाइस्कोप के तमाशे की तरह आपकी आँखों के सामने नाचने लगेगा। यह एक ऐतिहासिक महत्वपूर्ण ग्रन्थ है, जिसे एक मनोरञ्जक उपन्यास के आवरण में पढ़कर प्रत्येक स्त्री-पुरुष, बच्चा और बूढ़ा अपनी ज्ञान-वृद्धि कर सकता है। मूल्य केवल ४) रु०; स्थायी ग्राहकों के लिए ३॥।) मात्र!

व्यवस्थापिका 'चाँद' कार्यालय; इलाहाबाद

शुक्ल और सोफ़िया

अर्थात्

पूर्व और पश्चिम

[लेखक—ठाकुर कल्याणसिंह जी शेखावत, बी० ए०]

इस पुस्तक में पूर्व और पश्चिम का आदर्श, दोनों की तुलना, मनुष्य-जीवन के लिए भारत की प्राचीन मर्यादा का सर्वश्रेष्ठ सिद्ध होना, भारत की वर्त्तमान सामाजिक कुरीतियाँ तथा उनका भयङ्कर परिणाम, यूरोप की विलास-प्रियता और उससे उत्पन्न होने वाली अशान्ति का वर्णन बड़े ही मनोहर ढङ्ग से किया गया है। पुस्तक की भाषा अत्यन्त सरल और मुहावरेदार है।

इङ्गलैण्ड की सोफ़िया नामक एक अनाथ बालिका का भारत के प्रति अगाध प्रेम एवं श्रद्धा, चिकित्सा-कार्य द्वारा उसका भारतीय जनता की निस्स्वार्थ-सेवा करना, डॉक्टर चन्द्रस्वरूप शुक्ल तथा उनकी धर्मपत्नी फूलकुमारी से सोफ़िया का घनिष्ट प्रेम, फूलकुमारी की मृत्यु के बाद शुक्ल और सोफ़िया का प्रणय, एक दूसरे को अपना हृदय समर्पण करना, किन्तु सामाजिक रूढ़ियों के भय एवं पिता के अनुरोध से बाध्य होकर शुक्ल का दूसरी स्त्री से पाणिग्रहण करना ऐसी मनोरञ्जक कहानी है कि पढ़ते ही तबीयत फड़क उठती है। सजिल्द पुस्तक का मूल्य केवल २॥) ; स्थायी ग्राहकों से १॥=) मात्र !

नयन के प्रति

हिन्दी-संसार के सुविख्यात तथा 'चाँद'-परिवार के सुपरिचित कवि आनन्दीप्रसाद जी की नौजवान लेखनी का यह सुन्दर चमत्कार है। श्रीवास्तव महोदय की कविताएँ भाव और भाषा की दृष्टि से कितनी सजीव होती हैं—सो हमें बतलाना न होगा। इस पुस्तक में आपने देश की प्रस्तुत हीनावस्था पर अश्रुपात किया है। जिन ओज तथा करुणापूर्ण शब्दों में आपने नयनों को धिक्कारा और लज्जित किया है, वह देखने ही की चीज़ है—व्यक्त करने की नहीं। छपाई-सफ़ाई दर्शनीय ! दो रङ्गों में छपी हुई इस सुन्दर रचना का न्योछावर केवल ।=); स्थायी ग्राहकों से ।)॥ मात्र !!

मृगनैनी

अमिय, हलाहल, मद भरे, श्वेत श्याम रतनार !
जियत, मरत, झुकि-झुकि परत, जेहि चितवत एक बार !!

—(कविवर) रहीम

के

हिन्दी या उर्दू-संस्करण का प्रचार करने के लिए अथवा स्वयं
ग्राहकता स्वीकार करने के लिए

क्यों

ज़ोर दिया जाता है ??

यह रहस्य जानने के लिए अगले पृष्ठों का अवलोकन कीजिए और देखिए
कि मुट्ठी भर मारवाड़ियों की अथवा उनके टुकड़ों पर पलने
वाले हिन्दी के कुछ पत्रों की राय ठीक है अथवा
सारे भारतवर्ष की—विशेष कर
शिक्षित समुदाय की

यदि इसमें भी सन्देह हो तो हमारा हृदय चीर कर देखिए !

Maulana Shah Saiyed Habib Ahmad, Adib-Fazil:

I am very pleased to see the illustrated Urdu Edition of the CHAND. I hope CHAND will be a medium which will perpetuate unity between Hindus and Muslims and it will bring them in closer contact. The CHAND has already rendered valuable services to the cause of Hindi literature for more than seven years and now I hope that it will give great help to the cause of Urdu. An organ like this was badly needed at present and I can confidently say that it will do its best. I wish you every success.

***

Mr. Jaswant Narain Mathur, Jodhpur, writes:

I offer my sincere congratulations to you on the brilliant and glorious success in your venture of publishing an Urdu Edition of CHAND.

The aims and objects of this magazine are also laudable, not because they are idealistic, but because they are directed towards a reform which was long overdue. I mean the Social Reform. As far as I think, the only way to strike at the very root of social evils is to awaken the people through a standard and an enlightened magazine, which qualities, I am glad to note, are conspicuously present in your magazine.

I therefore heartily join my other learned friends in wishing this magazine every success and a long and useful career.

***

Mr. K. G. Saiyidain, Principal, Training College, Aligarh, writes:

I am very glad to learn that you are bringing out an Urdu Edition of the CHAND.

Dr. Hunar Anwari, Amritsar, writes:

The CHAND of February 1930 passed from my eyes. I found it of course unrivalled from those of the modern times. We are proud enough to keep it on the same tables that were carrying only the Europeans Mag zines before.

It has undoubtedly made up the deficiency that others were unable to do. Its articles and pictures both are interesting and praiseworthy.

I therefore offer congratulations to the Editor on its such wonderful success.

***

Prof. A. Shakoor, Muslim University, Aligarh:

I was very glad to learn that you are shortly going to bring out an Urdu magazine. I feel sure that under your able editorship it will flourish.

***

Sri Ramanath Lal, 'Suman' Joint Editor, Tyagbhoomi, Ajmer, writes:

I congratulate you for such an excellent production of the CHAND (Urdu). Its get-up as well as articles are fine, interesting and illuminating.

***

Munshi Maharaj Bahadur, Barq, B. A., Delhi:

I much congratulate you on the Urdu Edition of CHAND which contains several standard contributions affording a very interesting reading. I trust it will surely, achieve its aims and objects in view, under your Editorship.

***

The Editor, 'Hon-Har,' Delhi, writes:

Your magazine, undoubtedly is very nice and hope, it will attain its top progress exactly like the Hindi CHAND very soon.

सम्पादक :—
मुन्शी कन्हैयालाल जी,
एम० ए०, एल्-एल्० बी०

वार्षिक चन्दा ८)
छमाही चन्दा ५)

के उर्दू-संस्करण के सम्बन्ध में

लोग क्या कहते हैं ?

विगत जनवरी के हिन्दी 'चाँद' में पं० मोतीलाल नेहरू, सर अब्दुल क़ादिर, मिस्टर विल्सन, मुन्शी ईश्वरसरन एम० एल्० ए०, मिस्टर सी० वाई० चिन्तामणि तथा डॉक्टर सर तेजबहादुर सप्रू आदि अनेक प्रतिष्ठित नेताओं तथा व्यक्तियों की बधाइयाँ प्रकाशित हो चुकी हैं। गत मास में आई हुई कुछ और सम्मतियाँ नीचे दी जा रही हैं :—

ख़बरदार (उर्दू साप्ताहिक)

रिसाला 'चाँद' इलाहाबाद ने पहली जनवरी सन् १९३० ई० से अपना उर्दू-एडिशन शाया करना शुरू कर दिया है, जिसकी एक जिल्द इस वक़्त हमारे सामने है। शुरू से आख़िर तक इसका बग़ौर मुताला करने से हम इस नतीजे पर पहुँचे हैं कि उर्दू ज़बान के मैदाने-सहाफ़त में तर्ज़-तहरीर की पेचीदगी, लखनऊ-देहली के मुहावरात, इनके बेमानी शाज़अत और ग़ैर मुहज़्ज़ब इश्क़िया मज़ामीन की कशाफ़त से अब तक जो एक शब ज़ुल्मत का अँधेरा छाया हुआ था, वह 'चाँद' के तुलूअ से यक़ीनन् बहुत जल्द काफ़ूर हो जायगा।

उर्दू ज़बान में अब तक जितने रिसाले निकले या जो आजकल जारी हैं, उनमें एक यह ज़बरदस्त कमी है कि वह किसी एक मख़सूस पहलू को लिए हुए हैं और अपनी मज़ूज़ह शाहराह पर आहिस्ता-आहिस्ता चेहलक़दमी करते हुए चले जा रहे हैं। ज़माना क्या है; मुल्क की क्या ज़रूरियात हैं; तालीम-निस्वाँ की ज़रूरत है या नहीं; नौजवानों के क्या फ़राइज़ हैं; हमारे मुल्क की ख़्वातीन किस हालत में हैं; बच्चों की तरक़्क़ी के ज़राए हो सकते हैं—इनको इनसे कुछ सरोकार नहीं, बल्कि ख़्वाजा हैदरअली 'आतिश' 'मुसहफ़ी' और 'इन्शा' की सवाने-उमरियों और उनके अशार की ख़ूबियों पर ही बहस व तमहीस करने में ही उनकी तरक़्क़ी और ज़िन्दगी का इनहसार है और यही एक वजह है कि मुल्क में उनको ज़्यादा पसन्दीदा निगाहों से नहीं देखा जाता। मुन्शी कन्हैयालाल साहब एडवोकेट एडीटर रिसाला 'चाँद' (उर्दू-एडीशन) ने मज़कूरा बाला कमी को हत्तुलमक़दूर दूर करने की कोशिश की है। मज़ामीन अव्वल से आख़िर तक दिलचस्प और सबक़-आमोज़ हैं। तसावीर और कार्टून देखने से ताल्लुक़ रखते हैं। मिस्टर आर० सहगल एडीटर हिन्दी-एडीशन ने अब तक बज़रिया हिन्दी 'चाँद' मुल्क में जो रोशनी फैलाई है, वह किसी से मुख़फ़ी नहीं है। आप हिन्दुस्तान की बदरस्मों को—जो बदक़िस्मती से इस वक़्त हमारी तरक़्क़ी में सदराह हैं—दूर करने के लिए जद्द व जेहद कर रहे हैं।

हम बज़ोर सिफ़ारिश करते हैं कि उर्दूदाँ पब्लिक इस रिसाला को ज़रूर ख़रीदे और देखे कि वह ख़ुद कहाँ है और ज़माना उसे किस जगह चाहता है।

* * *

अजमल (उर्दू दैनिक)

इलाहाबाद से 'चाँद' के नाम से एक हिन्दी रिसाला गुज़श्ता सात साल से शाया हो रहा है। इस अर्सा में रिसाला मज़कूरा ने बहुत कामयाबी हासिल की है और बिला शुबा इस वक्त हिन्दी के बेहतरीन पर्चों में इसका शुमार हो सकता है। इस रिसाला का एक उर्दू-एडीशन भी जारी किया गया है। पहला पर्चा ख़ूबसूरत सैरङ्गी टाइटिल पेज और बहुत काफ़ी अच्छी तसावीर से जिनमें "स्वराज्य का पैग़ाम" और "टीपू सुल्तान" की तसावीर सैरङ्गी हैं, मज़ीन है। रिसाले का मक़सद ख़्वातैन हिन्द की तरक्क़ी और इस्लाह की कोशिश है। ज़ेरे-नज़र पर्चा बहुत काफ़ी अच्छे मज़ामीन, अफ़सानों, नज़्मों, और इस्लाही मज़ामीन पर मुश्तमल है। मुन्शी कन्हैयालाल इस कोशिश पर मुस्तहक़ मुबारकबाद हैं। पर्चे की ज़हामत, काग़ज़, किताबत व तसावीर के लिहाज़ से सालाना चन्दा ८) व शशमाही ५) ज़ायद नहीं है। फिर भी अगर मुन्शी साहब अपना इस्लाही प्रोपेगण्डा आला-ख़ान्दानों और मतमूल तबक़े तक महदूद रखना नहीं चाहते तो यह बेहतर होगा कि वह इसी पर्चे का एक कम क़ीमत एडीशन हल्के काग़ज़ पर भी निकालें, ताकि वह मुतवस्सित तबक़े की मुस्लिम ख़्वातैन के हाथ में भी पहुँचे।

* * *

एडिटर "निज़ाम आलम"

साल नौ के माह नौ का 'चाँद' जिसकी ख़ुशनुमा शोआएँ १२ करोड़ उर्दू-दाँ पब्लिक पर पड़ रही हैं उसकी रोशनी में २६ ख़ूबसूरत तसवीरें इन पर जज़बात का इज़हार कर रही हैं और अदबी व तारीख़ी व तालीमी व सनायती, ज़रायती, तमद्दुनी व क़ानूनी व सैयासी व मज़हबी व मौसीक़ी ऐसे अहम व सूदमन्द अनवात के तहत में २६ मज़ामीन दिलचस्प पैराए में लिखे गए हैं। लिखाई-छपाई अच्छी है, काग़ज़ सफ़ेद चिकना है, रिसाला की अशायत के पाकीज़ा मक़ासिद इख़्तिसार के साथ हस्ब ज़ैल हैं :—

(१) उलूम व फ़नून की नसर व शाअत करना (२) सोसाइटियों की इस्लाह करना (३) निसवाँ हक़ूक़ की हिमायत करना (४) बच्चों की परवरिश व पुरदाख़्त के लिए औरतों की तरबियत करना (५) जानवरों के साथ हमदर्दी करना (६) सैयासी व अख़लाक़ी बीमारियों का बेहतरीन इलाज तजवीज़ करना (७) शादी बेवगान की तरदीह के असबाब मुहैय्या करना (८) कमसिनी की शादी व बरबादी व मसारिफ़ बेजा का रोकना।

ऐसी सूरत में बिला ख़ौफ़ व मलामत के मैं यह कह सकता हूँ कि यह रिसाला जहाँ क़ौम व मुल्क के बेचिराग़ हिदायत है, वहाँ अतफ़रादी हैसियत से इसकी सैयासी दुनिया का अच्छा रहनुमा और मज़हबी दुनिया का बेहतरीन पेशवा है।

* * *

हक़ीक़त (उर्दू दैनिक)

इलाहाबाद के जदीदुलशेवा उर्दू रिसाला 'चाँद' का पहिला नम्बर हमारे पेश-नज़र है। जैसा कि ख़्याल था, यह अपने हिन्दी हमअसर व हमनाम के साइज़ पर वैसे ही एहतमाम और ज़ाहिरी शान के साथ निकला है, जिसमें तक़रीबन तीन दर्जन तसावीर और फ़ोटो हैं। तसवीरों के इन्तख़ाब में हर मज़ाक़ को मलहूज़ रक्खा गया है और इब्तदा में प्रोफ़ेसर सैयद ज़ामिनअली साहब, एम० ए० (इलाहाबाद) की 'दुआइए' नज़्म से मज़ामीन का इफ़्तताह किया गया है। नसर के मज़ामीन में पण्डित कृष्णप्रसाद कौल का "महज़ूब की बड़" और सैयद मुहम्मद हफ़ीज़ साहब बी० ए० का मज़मून "सिस्टर निवेदिता" और दो-एक अफ़साने क़ाबिल मुताला हैं।

* * *

शोला (उर्दू साप्ताहिक)

तक़रीबन् सात साल से इस नाम का रिसाला 'चाँद' हिन्दी ज़बान में हिन्दुस्तान के मशहूर शहर इलाहाबाद से शाया होता है। रिसाला मज़कूर के कारकुनान ने सन् ३० से इस रिसाले का एक माहवारी उर्दू-एडीशन भी शाया करने का मुसम्मिम अज़्म कर लिया है। चुनाचः इसका पहला उर्दू-एडीशन इस वक्त हमारे सामने मौजूद है।

रिसाला की तबात, काग़ज़ की नफ़ासत, तहरीर की लताफ़त, मज़ामीन की नौयिअत, तरतीब की जिद्दत और तसावीर की मज़रत ऐसी है कि मुल्क के अक्सर सहायक़ व जरायद मशहूर अहले-क़लम और लायक़ व फ़ायक़ अदीब इसके मुतल्लिक़ लिखेंगे ; और ऐसा कुछ लिखेंगे जो अर्सा दराज़ तक पढ़ने वालों के दिलों से

महो न होगा। लिहाज़ा इस ख़्याल से कि अदबी मैदान में मुल्क के नामवर अहले-क़लम के दोश-बदोश दौड़ते वक़्त कहीं ठोकर न खा जायँ, हम लफ़्ज़ी और रसमी तारीफ़ से गिरेज़ करते हुए रिसाला 'चाँद' की सिर्फ़ एक बातनी माअनवी ख़ूबी की निस्वत कुछ अर्ज़ करना चाहते हैं।××जिसमें अगर एक हिन्दू बुज़ुर्गों के ज़रीन इक़बाल रिसाले की शान व शौकत को बढ़ा रहे हैं तो दूसरी हादी इस्लाम के बेशक़ीमत पन्द व नसाएह इसकी ख़ूबियों में चार चाँद लगा रहे हैं। अगर एक जगह पटियाला के हिन्दू-राजा के क़ाबिल-नफ़रत करतूत और शर्मनाक राज़ों का भण्डा फोड़ा जाता है, तो दूसरी जगह मुसलमानों के एक नामवर हीरो शेरे-मैसूर यानी टीपू सुल्तान के बहादुराना कारनामे सफ़हात की रौनक़ बढ़ाते हैं। कहीं पूरियाँ बनाने की तरकीब दर्ज है तो किसी जगह क़ोर्मा बनाने का बयान है। इस पर तुर्रा यह कि ज़बान भी वह पसन्द की गई है, जो न मुसलमानों की मिल्कियत है और न हिन्दुओं की। हक़ीक़त में तमाम मुल्क की मुश्तरका और वाहिद ज़बान है। हम निहायत सदक़ दिली से 'चाँद' और उसके क़ाबिल व लायक़ एडीटर की ख़िदमत में इस दरिया दिली सईउलनज़री और बेताअस्सुबी पर मुबारकबाद का नाचीज़ हदिया पेश करते हैं और दुआ करते हैं कि कारकुनान रिसाला अपने मक़सद में कामयाब हों !!

* * *

प्रकाश (उर्दू साप्ताहिक)

'चाँद' (हिन्दी) इलाहाबाद ने सहाफ़त की दुनिया में जो शोहरत हासिल कर रक्खी है, वह किसी से छिपी नहीं। उसके सञ्चालकों ने 'चाँद' का उर्दू-संस्करण निकालना भी शुरू कर दिया है। इसका पहला पर्चा हमारे सामने है। पर्चा हर तरह से क़ाबिले-तारीफ़ और क़ाबिले-क़द्र है। मआनवी ख़ूबियों के साथ रिसाला की ज़ाहिरी शान भी दिलकुश है। तसावीर के लिहाज़ से भी इसकी शान बन आई है। इसमें चालीस के क़रीब ब्लॉक की तसवीरें हैं, जिनमें से तीन रंगीन हैं। हज्म सवा सौ से ज़्यादा सफ़हा का उर्दू 'चाँद' के क़ाबिल एडीटर मुन्शी कन्हैयालाल एम० ए०, एल्-एल्० बी० को हम इस कामियाब कोशिश पर दिल से मुबारकबाद अर्ज़ करते हैं और उम्मीद रखते हैं कि 'चाँद' इससे भी ज़्यादा ख़ूबियों के साथ निकलेगा और मक़बूलियत में हिन्दी 'चाँद' से पीछे नहीं रहेगा।

* * *

अकाली (उर्दू दैनिक)

अर्सा आठ साल से इलाहाबाद से एक हिन्दी का माहवार रिसाला 'चाँद' जारी है, जो 'सोशल-रिफ़ॉर्मर' के तौर पर हिन्दू सोसाइटी की बेशबहा ख़िदमत सरअञ्जाम दे रहा है, ख़ास कर बेवाओं की हालत के सुधारने के लिए ज़बरदस्त मज़ामीन शाया करता रहता है। अलावा बरीं हिन्दू-सोसाइटी की दीगर रसूम बद के इन्सदाद के लिए भी अच्छा काम कर रहा है! मजलिसी इस्लाह के साथ ही साथ मुल्की इस्लाह के लिए भी रिसाला हाज़ा सरअत से गामज़न है। इस रिसाला ने कुछ अर्सा से जो ख़ास नम्बर शाया करने शुरू किए हैं, उसने इसकी शोहरत को और भी बुलन्द कर दिया है। चुनाचः इसका 'फाँसी-अङ्क' छप कर शाया होते ही ज़ब्त कर लिया गया था। अब उसके बाद इसने

'मारवाड़ी-अङ्क'

शाया किया, जो अपनी नज़ीर आप था। कुछ अर्सा हुआ कारकुनान 'चाँद' ने इसे उर्दू में शाया करने का एलान किया था। चुनाचः उर्दू के 'चाँद' का पहला पर्चा ज़ेरअदारत बाबू कन्हैयालाल एम० ए०, एल्-एल्० बी० एडवोकेट शाया हो गया है, जिसका पहला नम्बर 'रिव्यु' के लिए मौसूल हुआ है। इसके सरसरी मुताला से कहा जा सकता है कि रिसाला उर्दू-दुनिया में भी बहुत हरदिल-अज़ीज़ी हासिल कर जायगा। मज़ामीन, नज़्म और तस्वीरों के लिहाज़ से 'चाँद' दूसरे उर्दू रिसाइल से हर्गिज़ कम नहीं। अशेव ज़ेर तनक़ीद में 'मजज़ूब की बड़', 'बहादुर टीपू', 'हिन्दू-लॉ में औरतों के हक़ूक़', 'दुबे जी की चिट्ठी', 'घण्टा नहीं बजेगा' वग़ैरह मज़ामीन के अलावा कई दर्जन रङ्गीन व सादे तसावीर नीज़ कार्टून दिए गए हैं। रिसाला की उठान को देख कर इसकी कामयाबी यक़ीनी नज़र आती है। उम्मीद है, उर्दूदाँ पब्लिक ख़ुसूसन हिन्दू-सोसाइटी में यह रिसाला बहुत हरदिल-अज़ीज़ी हासिल करेगा। लिखाई-छपाई, काग़ज़, उम्दा; चन्दा सालाना आठ रुपया और फ़ी एक रुपया मुक़र्रर है, जो ज़ख़ामत और तसावीर के मुक़ाबले में ज़्यादा नहीं कहा जा सकता। शायक़ीन मैनेजर साहब रिसाला चाँद (उर्दू) इलाहाबाद से तलब करें।

* * *

अदब (उर्दू मासिक) लखनऊ

हिन्दी 'चाँद' इलाहाबाद ने उर्दू का एडीशन हस्ब वादा निकाल दिया। इसमें शक नहीं कि इसके पेशे-नज़र जो मक़सद हैं, वह निहायत अहम हैं। हमारी मआशरी (सामाजिक) हालत क़ाबिल रहम है। इसके इस्लाह की शदीद ज़रूरत है। ख़ुदा करे, वह अपने इस मक़सद में कामयाब हो। 'चाँद' हर हैसियत से आस्मान-कमाल पर सही मानों में महरो-माह बन कर चमके !!

* * *

झङ्ग सियाल (उर्दू साप्ताहिक) लाहौर

इससे पहले इलाहाबाद से हिन्दी ज़बान में रिसाला 'चाँद' शाया हो रहा है, जिसने हिन्दी-दुनिया में एक तहलक़ा मचा दिया है। मगर उर्दू-दाँ पब्लिक इस हिन्दी 'चाँद' से ज़्यादा फ़ायदा नहीं उठा सकती थी, और जिसकी असल ज़रूरत थी। 'चाँद' कारपरदाज़ान ने उर्दू-दाँ पब्लिक की ज़रूरत को महसूस करके इस साल के शुरू से उर्दू ज़बान में भी 'चाँद' नाम का माहवारी रिसाला जारी कर दिया है। इसमें कुछ शक नहीं कि उर्दू ज़बान में पहले भी अच्छे अच्छे रिसाले शाया हो रहे थे; मगर 'चाँद' दरअसल एक नई जिद्दत के साथ मैदान में आया है। इसके मज़ामीन, कार्टून और तसावीर अपने अन्दर निराली शान रखती हैं। सर-वर्क़ बड़ा ही ख़ूबसूरत बनाया गया है। हज्म काफ़ी से ज़्यादा है और हर क़िस्म के मज़ामीन बहम पहुँचाने की कोशिश की गई है। चन्दा सालाना आठ रुपया है। साल भर में 'चाँद' के साइज़ की बारह किताबें बहम पहुँच जाना आठ रुपए में सस्ता सौदा है। अंरनूद इल्म अदब की तरक़्क़ी चाहने वालों को बिला झिझक 'चाँद' के ख़रीदार बन जाना चाहिए।

* * *

कामयाबी (उर्दू मासिक) देहली

पञ्जाब ने मुतआद्दिद दीदः ज़ेब और बातस्वीर माहाना रिसाले निकाल कर ज़बान उर्दू की तरक़्क़ी को चार चाँद लगा दिए थे। सूबा मुतहहदा को ज़बान की ख़िदमत में पञ्जाब से पीछे रह जाना नागवार हुआ और हिन्दी ज़बान के एक माहवार रिसाले के कारकूनों ने उर्दू की ख़िदमत भी अपने सिर लेकर निहायत आला पैमाने पर एक माहवार रिसाला निकालने के इन्तज़ामात मुकम्मिल कर लिए। हिन्दी रिसाले का नाम 'चाँद' था, वही उर्दू रिसाले के लिए भी पसन्द किया गया है। अभी तक हमारी नज़र से सिर्फ़ उसका एक नम्बर गुज़रा है। जहाँ तक ज़ाहिरी हुस्न का तआल्लुक़ है, हम कह सकते हैं कि वह आप ही अपना नज़ीर है। मज़ामीन भी दिलचस्प, कारामद और मुफ़ीद हैं। मुल्क के मुस्तनद और क़ाबिल अदीबों को इस पर्चे की जानिब ख़ास तवज्जुह करने की ज़रूरत है, ताकि यह पर्चा जल्द से जल्द तरक़्क़ी करके यह साबित कर सके कि उर्दू सिर्फ़ मुसलमानों की ज़बान नहीं है, बल्कि सूबा मुतहहदा के हिन्दुओं की मादरी ज़बान भी उर्दू के सिवा और कुछ नहीं है। हम आस्माने-उर्दू के इस 'चाँद' का सच्चे दिल से ख़ैर-मुक़द्दम करते हैं और हमारी दिली दुआ है कि वह इस्म बामुसम्मी साबित हो।

* * *

ख्वाजा हसन निज़ामी का 'मुनादी' (उर्दू साप्ताहिक)

यह रिसाला एक मुद्दत से हिन्दी ज़बान में शाया हो रहा था और सूबा मुतहहदा का एक मशहूर और कामयाब रिसाला होने की वजह से इसे ख़ास शोहरत और मक़बूलियत हासिल थी। अब कारपरदाज़ान रिसाला ने इसका उर्दू-एडीशन भी शाया करना शुरू कर दिया है, जिसका पहला नम्बर हमारे सामने है। बिला शुबह इस रिसाले में मुल्क के मशहूर इन्शापरदाज़ों और लायक़ अदीबों के मज़ामीन ज़ेब औराक़ हैं, जिनमें इल्मी, अदबी, मआशरी और हर क़िस्म के मज़ामीन नज़र आते हैं। नज़्म का हिस्सा भी बहुत मुवस्सर और बहुत बुलन्द पाया है। ख़ूबी यह है कि इतनी बड़ी ज़ख़ामत और कसरत व तनूअ मज़ामीन के बावजूद तसावीर का भी ख़ास अहतमाम है और हमें इस रिसाले में कमो-बेश बीस-पच्चीस खुशनुमाँ, रङ्गीन और सादा तसावीर नज़र आती हैं। जिन्होंने रिसाला के हुस्न में पर लगा दिए हैं और उसकी दिलफ़रेबी और दिलकुशी में इज़ाफ़ा हो गया है। फिर रिसाले में यह इल्तज़ाम भी रक्खा गया है कि इससे मर्द और औरत—दोनों अपने-अपने मज़ाक और दिलचस्पी के एतबार से लुत्फ़न्दोज़ हो सकें !!

पर

वज्राघात!!

कठिन संकट का समय

२५,००० रुपयों की अपील!!

'चाँद' के प्रेमियों की कठिन परीक्षा!

'चाँद' के प्रेमी दुःख से यह समाचार सुनेंगे कि उनके प्यारे 'चाँद' पर कठिन सङ्कट का समय अन्ततः आ ही पड़ा। गत आठ वर्षों में हमने अपने जीवन और मृत्यु के बीच में 'चाँद' को रख लिया था। हम इसी के लिए जी और मर रहे थे। हमें इस बात का गर्व था कि हमारे परिश्रम की हमें दाद मिली! पर आज स्थिति कुछ और ही है!! जिन मित्रों के सहयोग, सहायता और प्रेम ने 'चाँद' का प्रचार आज १५,००० से अधिक की संख्या में पहुँचाया है, उनके प्रति कृतज्ञता के शब्द मुख पर लाने का यह समय नहीं है—हमें केवल इस बात की प्रसन्नता ही नहीं, बड़ा गर्व है कि 'चाँद' से उन्हें जिस सेवा की आशा थी, उसमें बहुत हद तक उसे सफलता हुई। 'चाँद' ने आज समाज में आग लगा दी है, आज उसका सारा पाप धायँ-धायँ करके जल रहा है और साथ ही जल रहा है उन पापियों का हृदय, जो उसके सेवा-मार्ग में रोड़े बिछाने का निन्दनीय प्रयत्न करते आ रहे हैं—उन पापियों का हृदय—जो सदियों से इस अभागे देश को इस बुरी तरह मथेड़ रहे हैं!

आज तक 'चाँद' पर आई हुई आपत्तियों पर हमें उतना आश्चर्य नहीं होता, जितना इस बात पर होता है कि आज तक इतने गर्व के साथ वह जीवित कैसे है? 'चाँद' के सुधारों का मार्ग ज़रा टेढ़ा है और यह भी सत्य है कि टेढ़े मार्ग सदा टेढ़े ही होते हैं! इस बार आपका प्यारा 'चाँद' ज़रा चोट खा गया है—धोखे से नहीं, यह उसके विशेष साहस, सद्भावना और समाज का एक नम्र शुभ-चिन्तक होने का अवश्यम्भावी फल था! अस्तु—

जब से 'चाँद' का 'फाँसी-अङ्क' प्रकाशित हुआ, तभी से गवर्नमेण्ट की निगाह में वह काँटे के समान खटकने लगा। उसे तुरन्त ज़ब्त करके गवर्नमेण्ट ने इस पर पहिला प्रहार किया! इसके बाद ही

दिनों बाद संयुक्त प्रान्तीय गवर्नमेण्ट ने आज्ञा निकाल कर 'चाँद' का स्कूल तथा कॉलेजों में जाना रोक कर अपनी कलुषित दमन-नीति का निन्दनीय परिचय दिया !! इस आज्ञा के प्रकाशित होने के थोड़े ही दिनों के भीतर इसी प्रकार की घोषणा मध्य-प्रान्त और बेरार की गवर्नमेण्ट ने भी निकाल कर अपने अधीनस्थ स्कूल तथा कॉलेजों में 'चाँद' का जाना रोक दिया !!! इन आज्ञाओं के विरुद्ध देश के सारे समाचार-पत्रों ने एक स्वर से गवर्नमेण्ट के इस निन्दनीय कार्य की आलोचना तथा घृणा प्रगट की, प्रान्तीय कौन्सिलों एवं बड़ी व्यवस्थापिका सभा तक में अनेक प्रश्न उठाए गए, पर यह सारा प्रयत्न अरण्य-रोदन मात्र साबित हुआ। लोकमत को ठुकराना बृटिश शासन-प्रणाली का एक अन्यतम आदर्श है, ऐसी हालत में हो ही क्या सकता था, मौन होकर हमें यह भयङ्कर अन्याय भी सहन करना पड़ा !!

इसके बाद 'भारत में अङ्गरेज़ी राज्य' नामक एक ऐतिहासिक ग्रन्थ-रत्न का प्रकाशन इस संस्था द्वारा किया गया। वह किन नीच साधनों द्वारा डाकखाने में ही ज़ब्त कर लिया गया—आज देश का प्रत्येक बच्चा इस भयङ्कर अन्याय से पूर्णतः परिचित है। प्रान्तीय गवर्नमेण्ट की इस निर्मम हत्या के विरुद्ध इलाहाबाद के हाईकोर्ट में अपील की गई—अपनी इच्छा से नहीं, बल्कि 'देश-पूज्य' नेताओं तथा भारतीय समाचार-पत्रों की राय से ! कुछ प्रतिष्ठित वकीलों ने, जो दुर्भाग्य से देश के परम पूज्य नेता माने जाते हैं—हमसे बिना कुछ लिए मुक़दमा लड़ने का वचन दिया। उनके आश्वासन पर ही हाईकोर्ट में अपील दायर की गई, पर ठीक समय पर सब अलग हो गए !! यह एक ऐसी दुःखप्रद कहानी है, जिसे इस समय प्रगट न करने में ही देश का कल्याण है। अस्तु—

चूँकि अपील दायर हो चुकी थी, इसलिए इसका लड़ना हमारे लिए आवश्यक हो गया, नहीं तो "स्वतन्त्र"-जैसे देश के शुभचिन्तक पत्रों को यह कहने की गुंजाइश हो जाती कि "सहगल महोदय सरकार से मिल गए हैं, तभी ऐसा किया गया" जैसा कि बेचारा पहित कह चुका है। सारांश यह है कि अन्त में हज़ारों स्वाहा करके हमें इस अपील की पैरवी करनी ही पड़ी। अपील जीतने की ओर प्रान्तीय गवर्नमेण्ट द्वारा की गई नादिरशाही की खिल्ली उड़ाने की हमें पूर्ण आशा थी, पर साथ ही हम पर इतना भयङ्कर अन्याय एवं अत्याचार किया जायगा, इस बात की आशा कल्पना के परे थी। पाठकों ने सुना ही होगा कि अपील ख़ारिज होने के अतिरिक्त, क़ानून की एक नई धारा बना कर हमें गवर्नमेण्ट के खर्च-स्वरूप ४,०५०) रु० (चार हज़ार पचास रुपए) देने की आज्ञा हुई है और प्रेस तथा कार्यालय को कुड़क करने की धमकी दी जा रही है !

इधर यह दुर्घटना हुई, उधर कलकत्ते का मारवाड़ी-समाज (केवल कलकत्ते का नाम इसलिए लिया जा रहा है कि वहीं के कुछ सुधारक-नामधारी मारवाड़ियों का दिल सब से अधिक दुखा है !!) 'मारवाड़ी-अङ्क' के प्रकाशन से एक बार ही कुपित हो उठा है और आज 'चाँद', इस संस्था तथा इन पंक्तियों के लेखक के विरुद्ध जो आन्दोलन उठाया गया है उससे पाठकगण पूर्णतः परिचित हैं, इसलिए विशेष कहना व्यर्थ है ! ऐसे-ऐसे नीच और कलुषित साधनों का आश्रय लिया गया है, जिसकी सविस्तार चर्चा 'चाँद' के शीघ्र ही प्रकाशित होने वाले दूसरे 'मारवाड़ी-अङ्क' में की जायगी, जिसकी सूचना अन्यत्र दी जा रही है !

एक हाल ही की नई दुर्घटना भी है, इसे भी हम पाठकों को बतला देना अपना कर्तव्य समझते हैं। चार पुस्तकें—

(१) विवाह-विज्ञान
(२) यौवन विज्ञान
(३) गुप्त चिट्ठी—और
(४) स्त्री को चिट्ठी

आज से सात वर्ष पूर्व (सन् १९२३ में) कलकत्ते के एक 'शिशिर पब्लिशिङ्ग हाउस' नामक कार्यालय से प्रकाशित हुई थीं, जिन्हें भारत के लग-

अब सारे पुस्तक-विक्रेता बराबर विज्ञापन देकर बेच रहे हैं। इस संस्था में भी ये चारों पुस्तकें पिछले सात वर्षों से बिक रही थीं। गवर्नमेण्ट ने आज तक इस पर कभी आपत्ति नहीं की। इस संस्था द्वारा कलकत्ते के एक मारवाड़ी—श्री० आर० डी० बाहिती—की समस्त पुस्तकें तथा उनका अधिकार गत वर्ष ख़रीद लिया गया था (जिसके विरुद्ध भी मुक़दमा चल रहा है), उसी स्टॉक के साथ कुछ प्रतियाँ इन पुस्तकों की भी हमें लेनी पड़ी थीं। पाठकों को सुन कर आश्चर्य होगा, बङ्गाल गवर्नमेण्ट ने इन पुस्तकों को अश्लील समझ कर गत मास हम पर कलकत्ते में भारतीय दण्ड-विधान की २९२ वीं धारा के अनुसार अभियोग चला दिया है, जिसकी दो पेशियाँ हो चुकी हैं ; केस अभी चल रहा है !

गत होली के दिन (१६ मार्च, १९३०) को हमारे यहाँ कलकत्ते से फिर तलाशी आई और मालूम हुआ कि बङ्गाल गवर्नमेण्ट ने उपरोक्त धारा के अनुसार ही "मारवाड़ी-अङ्क" के विरुद्ध भी हम पर केस चला दिया है, जिसकी एक पेशी हो चुकी है। चूँकि मामला विचाराधीन है, इसलिए हम इन दोनों केसों पर अपनी ओर से कोई टिप्पणी प्रकाशित करना असङ्गत समझते हैं। हमारा उद्देश्य केवल पाठकों को इस संस्था पर आई हुई आज की आपत्तियों से परिचित कराना मात्र है। इन मुक़दमों का फ़ैसला होने पर हम पाठकों को सप्रमाण यह बतलाने का प्रयत्न करेंगे कि आख़िर समाज के प्रति बङ्गाल गवर्नमेण्ट को ऐसी असाधारण सहानुभूति दिखलाने की आवश्यकता क्यों प्रतीत हुई और किन-किन साधनों द्वारा हम पर ये केस चलाए गए। अस्तु—

उपरोक्त घटनाओं के उल्लेख का कारण 'चाँद' के प्रेमियों को यह बतलाना है कि सुधार-प्रिय विचारों के कारण उस पर चारों ओर से कैसे-कैसे भीषण प्रहार हो रहे हैं, और ऐसी स्थिति में हमारे लिए यह जान लेना परमावश्यक है कि समाज तथा देश की सहानुभूति कहाँ तक हमारे साथ है ? 'चाँद' की हैसियत और प्रतिष्ठा एक रईस की हैसियत और प्रतिष्ठा से सर्वथा भिन्न है—यह बात 'चाँद' के प्रेमियों को विस्मरण न करना चाहिए !! रात-दिन खाना, पीना, सोना हराम करके 'चाँद' के लिए पसीना—और आवश्यकता पड़ने पर ख़ून—बहाना हमारा कर्तव्य है, जिसके लिए हम प्रति क्षण तैयार हैं, परन्तु सोने की छड़ी की चोट सहना, हम स्वीकार करते हैं, हमारी शक्ति के बाहर की बात है !

'फाँसी-अङ्क' की ज़ब्ती से जो धक्का हमें पहुँचा था, वह हमने गर्व-पूर्वक सहन किया, परन्तु 'भारत में अङ्गरेज़ी राज्य' नामक पुस्तक के प्रकाशन में 'चाँद' का सर्वस्व लगा हुआ था। न्याय के लिए हमने भीख तक माँगने की विडम्बना की, उसका ठीक ही फल आज हमें मिला है ! इन पंक्तियों का लेखक स्वयं किस रोज़ ज़ब्त कर लिया जाय, यह कोई नहीं कह सकता !!

एक ओर यह प्रश्न है, दूसरी ओर मारवाड़ी-समाज के घृणास्पद पतन के प्रति खरी कहने के उपलक्ष में एक अभियुक्त की भाँति १४ अप्रैल को कलकत्ते की अदालत में हमें फिर जाना पड़ेगा ! यह है समाज तथा देश की तुच्छ सेवा का पुरस्कार !! जबकि देश-द्रोही भारत माता की गोद में आज चैन की बंसी बजा रहे हैं !!!

हमें बुढ़िया के मरने का उतना भय नहीं है, जितना इस बात का, कि मौत ने घर देख लिया, इसलिए इन किसी भी मामलों को उपेक्षा की दृष्टि से देखना हमारे लिए ही नहीं, देश तथा समाज के लिए घातक सिद्ध हो सकता है, अतएव इन मामलों को न्याय की अन्तिम सीढ़ी तक पहुँचाना हमारा मुख्य कर्तव्य हो गया है और इच्छा रखते हुए भी हम इनकी उपेक्षा नहीं कर सकते ! यहाँ प्रश्न हमारे व्यक्तित्व का नहीं, किन्तु उन लाखों और करोड़ों भारतवासियों के व्यक्तित्व का प्रश्न है, जिनके विचारों को परिमार्जित करने का श्रेय आज सौभाग्य से हमें प्राप्त है। 'चाँद' जिए या मरे, यह हमारा चिन्तनीय विषय नहीं है ; हमारा चिन्तनीय विषय केवल यह है कि अब तक 'चाँद'

जीवित रहे, वह अपनी नीति पर सिंह की भाँति दहाड़ता रहे !!

चूँकि 'चाँद' हमारे प्राण और पाठकों के पवित्र प्रेम के सहयोग का मधुर फल है, इसलिए 'चाँद' के प्रत्येक प्रेमी का इस समय कर्तव्य ही नहीं, धर्म हो गया है कि वह यथाशक्ति उसकी सहायता कर, अपने औचित्य का पालन करे ! इस समय इस संस्था द्वारा प्रकाशित पुस्तकें ख़रीद कर, 'चाँद' के ग्राहक बन कर अथवा बना कर ही नहीं, बल्कि अधिक से अधिक आर्थिक सहायता भेज कर प्रेमी पाठकों को इस संस्था की सहायता करनी चाहिए। 'भारत में अङ्गरेज़ी राज्य' के मुक़दमे ने जैसी भयानक परिस्थिति उत्पन्न कर दी है, वैसी परिस्थिति में किसी भी प्रकाशक के लिए केवल अपने पैरों पर खड़े रह सकना एक बार ही असम्भव है। अब तक इस मुक़दमे में लगभग आठ हज़ार रुपए ख़र्च हो चुके हैं और इस समय भी हमारे ऊपर जो मुक़दमे चल रहे हैं तथा भविष्य में जिनके चलाए जाने की सम्भावना है, उनमें कितना ख़र्च होगा—इसका अनुमान नहीं लगाया जा सकता। आज से केवल एक ही वर्ष पहले 'भारत में अङ्गरेज़ी राज्य' के प्रकाशन में लगभग १३,०००) रुपयों का घाटा हमें हो चुका है !

अब तक हमने इतनी भयङ्कर आर्थिक क्षति—मुँह से बिना एक बार आह निकाले हुए—सहन की है, परन्तु इन अन्धाधुन्ध चलाए जाने वाले मुक़दमों का व्यय सहन करना और ऊपर से गवर्नमेण्ट को हज़ारों रुपए ख़र्च भी देना हमारी परिमित शक्ति के बाहर की बात है ! ऐसी दशा में उन सज्जनों का—जिन्हें यह विश्वास हो कि 'चाँद' जैसे एक निर्भीक पत्र के अस्तित्व से हमारी पतित जाति को पुनरुज्जीवन लाभ करने में थोड़ी भी सहायता मिल सकती है—यह अत्यन्त आवश्यक कर्तव्य है कि इस विपत्ति-काल में यथाशक्ति आर्थिक सहायता देकर वे हमें अपने सिद्धान्त पर हिमालय की भाँति अटल और शेषनाग की भाँति अविचल रहने में सहायता प्रदान करें।

हम इस अपील से संस्था के लिए एक पैसे का लाभ हराम समझते हैं—हम केवल चाहते हैं उस भयङ्कर क्षति की पूर्ति करना, जो पिछले २½ वर्षों से हमें इन मुक़दमों के सम्बन्ध में उठानी पड़ी है अथवा पड़ेगी और जिसके लिए आज हम अपने को सर्वथा अयोग्य पा रहे हैं।

इस मद में जितना दान अथवा अन्य सहायता हमें प्राप्त होगी, उनका विवरण प्रत्येक मास के 'चाँद' में छपता रहेगा—दानी-सज्जनों तथा देवियों के शुभ नाम भी धन्यवाद सहित-प्रकाशित होते रहेंगे। जो लोग किसी कारण से अपना नाम प्रकाशित न कराना चाहें, उन्हें इस बात की सूचना देनी चाहिए।

जब से 'चाँद' का प्रकाशन प्रारम्भ हुआ है, हमने आर्थिक सहायता की आज तक कभी याचना नहीं की, इसलिए प्रस्तुत अपील को हमारी परिस्थिति की दारुणता तथा हमारे सिद्धान्त की अटलता का ही प्रमाण समझना चाहिए !!!

विनीत,

सञ्चालक और सम्पादक 'चाँद'

इस भयङ्कर आयोजन में हाथ बटाना प्रत्येक देशवासी का कर्तव्य है

क्रान्ति की पुनरावृत्ति

फिर मारवाड़ी-अङ्क

भयानक भण्डाफोड़

सहयोग और सहानुभूति की भिक्षा !

विद्वेष अथवा पक्षपात का चश्मा न लगा कर 'चाँद' को पढ़ने वाले पाठक—जिनकी संख्या लाखों ही नहीं, आज करोड़ों कही जा सकती है—इस बात को सम्भवतः अस्वीकार न करेंगे कि 'चाँद' का प्रकाशन एकमात्र व्यक्तियों एवं परिवारों की मङ्गल-कामना की दृष्टि से किया गया था। 'चाँद' ने अपने बाल्यकाल से भारतीय समाज की जो भी थोड़ी-बहुत सेवा की है, वह विस्मरण करने की वस्तु नहीं है। 'चाँद' ने अपने जीवन के प्रथम दिवस से जिस मूक-क्रान्ति का आवाहन किया था, आज उसका फल समाज के सामने प्रत्यक्ष है ! 'चाँद' के 'मारवाड़ी अङ्क' ने अविद्या और दुर्भाग्य की घनघोर नींद में सोती हुई मारवाड़ी जाति पर आघात किया—और हम इसे स्वीकार करते हैं बड़ा कस कर आघात किया—इतना कस कर, कि बहुत से पत्र-पत्रिकाओं को उसकी पीठ सहलानी पड़ी !

मारवाड़ के प्रति की गई हमारी इस ठोस सेवा के लिए, जब कि हम उससे कृतज्ञता की आशा रखते थे, नीच दुराग्रह का परिचय हमें दिया गया है ! जब कि जयपुर, उदयपुर, बीकानेर, जैसलमेर, प्रतापगढ़, जोधपुर, मेवाड़ तथा अजमेर आदि मारवाड़ के प्रमुख स्थानों से मारवाड़ी-अङ्क सम्बन्धी हमारे पास प्रशंसा के हज़ारों पत्र आए हैं, जब कि महाराजा बीकानेर जैसे सुधार-प्रिय नरेश ने 'चाँद' को पुरस्कृत कर—उसकी इस सेवा के लिए दाद देकर, उसे उत्साहित किया—वहाँ कलकत्ते के कुछ 'सुधारक'-नामधारी मारवाड़ियों तथा उनके चाटुकार पत्रों ने जी भर कर 'चाँद' पर कीचड़ उछालने का व्यर्थ-प्रयत्न किया है। कुछ सुधारक-नामधारी मारवाड़ियों की ओर से—झूठ-सत्य की विवेचना छोड़ कर—जैसा निन्दनीय आन्दोलन 'चाँद' के विरुद्ध उठाया गया है, उससे पाठकों को 'चाँद' की नीयत पर सन्देह करने की सम्भावना हो सकती

है। हम फिर भी इस बात की सर्वथा उपेक्षा करते आ रहे थे, पर अब अधिक उपेक्षा करना हमारे लिए असम्भव हो गया है। 'मारवाड़ी-अङ्क' को प्रकाशित हुए आज ६ मास हो गए, किन्तु 'चाँद' के विरुद्ध आन्दोलन शान्त नहीं हुआ, बल्कि नीच से नीच उपायों द्वारा यह आन्दोलन आज भी बड़े ज़ोरों से चलाया जा रहा है। कलकत्ते के कुछ सुधारक-नामधारी मारवाड़ियों ने 'चाँद' की 'हस्ती मिटा देने' की प्रतिज्ञा कर ली है और इसे खुले शब्दों में स्वीकार भी किया गया है।

कैसे आश्चर्य और दुःख का विषय है कि धर्म की आड़ में सैकड़ों माँ-बहिनों का सर्वस्व लूटने वाला गोविन्द-भवन का नर-पिशाच हीरालाल क्षमा के योग्य और हम अपराधी? मारवाड़ी-समाज की हमसे केवल यह शिकायत है कि हमें क्यों जगाते हो! और जातियों को पहले क्यों नहीं जगाते!!

ऐसी हालत में हमारा भी यह कर्त्तव्य हो गया है कि हम अपनी स्थिति पाठकों की दृष्टि में साफ़ कर सकें—हम बड़ी गम्भीरता से इस आवश्यकता का अनुभव कर रहे हैं और अपने इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए 'चाँद' का पुनः एक 'मारवाड़ी-अङ्क' शीघ्र ही प्रकाशित करने का प्रयत्न किया जा रहा है। इस विशेषाङ्क का सम्पादन करेंगे वही

प्रोफ़ेसर चतुरसेन जी शास्त्री

पहिले 'मारवाड़ी-अङ्क' के प्रकाशन के समय कलकत्ते के अनेक लम्बी नाक वाले 'प्रतिष्ठित' मारवाड़ियों के रहस्यपूर्ण जीवन-सम्बन्धी टोकरों सामग्री सम्वाददाताओं ने हमारे पास भेजने की कृपा की थी (इस सिलसिले में हम यह बात स्पष्ट बतला देना चाहते हैं कि यदि हम इन्हें प्रकाशित भी कर दिए होते तो हमें किसी भी क़ानूनी कार्रवाई का लेश-मात्र भय न था, क्योंकि इतने अधिक प्रमाण हमारे पास प्रस्तुत हैं!!) किन्तु जान-बूझ कर हमने ऐसा करना, इसलिए अनुचित समझा था कि यदि इनका प्रकाशन हो गया, तो उन अभागे सेठों के सामने—जिनके पापपूर्ण जीवन की भयङ्कर पोल खुलती—केवल दो मार्ग शेष रह जायँगे।

(१) कलकत्ता छोड़ कर कहीं भाग जायँ—

(२) आत्म-हत्या कर डालें।

क्योंकि ये सारी घटनाएँ इतनी लज्जापूर्ण हैं, जिन्हें पढ़ कर कोई भी व्यक्ति—जिसे समाज का ज़रा भी भय है अथवा जिसमें आत्म-सम्मान के रक्त का एक भी विन्दु शेष है—वह इन दो बातों के अतिरिक्त कुछ कर ही नहीं सकता! हम मारवाड़ी-समाज को हृदय की सारी पवित्रता एकत्र कर फिर यह बतला देना चाहते हैं कि 'मारवाड़ी-अङ्क' के सुयोग्य सम्पादक महोदय ने बड़ी सावधानी से इस प्रकार की सैकड़ों भयानक एवं लज्जापूर्ण घटनाओं की वास्तविकता पर पर्दा डाला था—कार्टूनों एवं सङ्केतों द्वारा समाज के नेताओं का ध्यान इन भयानक पापों की ओर आकृष्ट किया था। यदि मारवाड़ी-समाज में ज़रा भी ग़ैरत होती तो वह इनसे अनमोल शिक्षा ग्रहण कर सकता था, पर उसके दुर्भाग्य ने उसे ऐसा नहीं करने दिया!! बजाय इसके कि वह चेते, लज्जित हो और अपनी सारी शक्ति लगा कर अपनी वास्तविक स्थिति को सुधारने का प्रयत्न करे, इस अभागी जाति के नेताओं ने समाज की पीठ ठोक कर उसे और भी व्यभिचारी, उच्छृङ्खल और असंयमी बनाने का कलुषित प्रयत्न किया है; कुछ समाचार-पत्रों ने भी हमारे इस पुनीत प्रयत्न के विरुद्ध—थोड़े से चाँदी के सफ़ेद टुकड़ों के कारण—अथवा अपना बड़प्पन बघारने की नीयत से, जो गीदड़ों के स्वभाव का परिचय दिया है—हमने भी उसे सर्वथा झूठा साबित करने का निश्चय कर लिया है!

हमसे बारम्बार कहा गया है कि 'मारवाड़ी-अङ्क' में मारवाड़ी-समाज के सद्गुणों, उनकी दानशीलता और उनकी पवित्रता की चर्चा ज़रा भी नहीं की गई है। हमारे पास इसका केवल एक ही

स्पष्ट है और वह यह कि इस विशेषाङ्क में मारवाड़ियों की जो कुछ भी अच्छाइयाँ और प्रशंसा के शब्द लिखे गए थे, उसे केवल सम्पादकीय शिष्टाचार एवं हमारा सौजन्य मात्र समझना चाहिए। हमारी तो यह निश्चित-धारणा है (जिसका प्रमाण पाठकों को इस विशेषाङ्क के प्रकाशन द्वारा और भी स्पष्ट हो जायगा) कि आज का "अधिकांश मारवाड़ी-समाज विद्या से वञ्चित, ढकोसलों का पोषक और कायरता का अवतार है! यों तो व्यभिचार प्रत्येक समाज में होता है, किन्तु इस अभागे समाज की व्यभिचार-लीला अपनी पराकाष्ठा पर पहुँच चुकी है"—इतना ही नहीं, हमारी स्पष्ट धारणा तो यह है कि आज का अधिकांश मारवाड़ी-समाज इस अभागे देश के गले में लटका हुआ ठोस लोहे का वह गोला है, जो उसकी उन्नति में बाधक हो रहा है!! आज देश की स्वतन्त्रता के युद्ध में साधक नहीं, अधिकांश मारवाड़ी-समाज अपनी जहालत के कारण बाधक हो रहा है, इसकी सविस्तार चर्चा भी 'चाँद' के इस विशेषाङ्क में सप्रमाण की जायगी। इस अङ्क में इसके अतिरिक्त निम्नलिखित बातों पर भी प्रकाश डाला जायगा :—

(१) पिछले दस वर्षों के भीतर इस समाज के अत्याचारों से पीड़ित होकर कितनी अभागिनी महिलाओं ने आत्म-हत्या करके शरीर से अपनी आत्मा का उद्धार किया?

(२) पिछले दस वर्षों के भीतर केवल कलकत्ते के भीमकाय प्राङ्गण में कितनी कुल-ललनाओं ने पारिवारिक अत्याचारों से त्राण पाने की एकमात्र लालसा से वेश्या-वृत्ति का आश्रय ग्रहण किया; और कितनी महिलाएँ गुप्त व्यभिचार में प्रवृत्त हुईं? उनके नाम, पते और बयान भी दिए जायँगे!

(३) पिछले दस वर्षों में कितनी मारवाड़ी-महिलाओं ने नर-पिशाच, किन्तु 'प्रतिष्ठित' कहे जाने वाले 'सुधारकों' के अत्याचार को न सह कर, गुप्त व्यभिचार का आश्रय लिया, कितने गर्भपात हुए, किस प्रकार वे छिपाए गए, किस प्रकार भगाई हुई स्त्रियाँ वापस लाई गईं, इस कुकर्म में कितना व्यय किया गया, किन-किन साधनों को काम में लाया गया, किन-किन मित्रों की सहायता ली गई और घर लाकर किस प्रकार उनको विष देकर मारा गया और किन-किन हतकण्डों से इन पातकों से अपना पीछा छुड़ाया गया—ये सारी बातें सप्रमाण इस अङ्क में नाम और पूरे पते सहित प्रकाशित की जायँगी और इन्हें झूठा साबित करने के लिए समाज के नेताओं और 'चाँद' के 'बहिष्कारकों' को चुनौती दी जायगी!!

(४) समाज के कुछ 'नेताओं' के गुप्त व्यभिचार की पोल भी इस अङ्क में खोली जायगी! किस स्त्री से किस पुरुष का सम्बन्ध था या है, यथाशक्ति ऐसे लेख नाम तथा पते के अतिरिक्त—सचित्र प्रकाशित किए जायँगे और इन बातों को झूठा प्रमाणित करने के लिए उन्हें चुनौती दी जायगी।

(५) कुछ मारवाड़ियों के—विशेषकर कुछ मारवाड़ी 'नेताओं' के 'जुआ-चोरी' के साधनों (जिसे शिष्ट भाषा में 'बिज़िनेस' कहा जाता है) पर भरपूर प्रकाश डाला जायगा; इसी सिलसिले में इस बात पर भी प्रकाश डाला जायगा कि किस प्रकार यह मक्कार लाखों पर हाथ साफ़ करके, कुछ सौ अथवा 'हज्जार' दान देकर अपनी दानशीलता की डींग मारते हैं और किन-किन साधनों से आज वे 'नेता' बन रहे हैं, इस अङ्क में इस बात की भी सप्रमाण चर्चा की जायगी!

(६) इस विशेषाङ्क में इस बात पर ख़ास तौर से प्रकाश डाला जायगा कि किस प्रकार सार्वजनिक चन्दों की धरोहर लगा कर कुछ मारवाड़ी 'नेता' अपना स्वार्थ साधन कर रहे हैं और किस प्रकार इन हतकण्डों द्वारा अपने 'बिज़िनेस' की उन्नति कर अपना स्वार्थ साधन किया जा रहा है और किन-किन चालों द्वारा वे देशवासियों की मूर्खता का अनुचित लाभ उठा रहे हैं! इन सब बातों पर भी इस विशेषाङ्क में भरपूर और सप्रमाण प्रकाश डाला जायगा।

(७) इस विशेषाङ्क में कलकत्ते के कुछ मारवाड़ियों की 'रखेली' स्त्रियों की, उनके चाटुकारों की, उन 'ग्वालों' के—जो दिन-दहाड़े इनका सर्वनाश कर चुके हैं, अथवा कर रहे हैं—बयान छापे जायँगे, जिनमें इन सेठों के नाम, समाज में उनकी प्रतिष्ठा और उनके साधनों पर भरपूर प्रकाश डाला जायगा !

(८) कलकत्ते इत्यादि के कुछ 'प्रतिष्ठित' मारवाड़ियों द्वारा की हुई अब तक की बेईमानियाँ, उनके 'व्यापार' का रहस्य, अदालत के फ़ैसले (जिनमें बहुत कड़ी आलोचनाएँ हुई हैं) और इन बातों को छिपाने के लिए किए गए सारे प्रयत्नों का सप्रमाण भण्डाफोड़ इस विशेषाङ्क में किया जायगा, × × × इत्यादि-इत्यादि ।

सारांश यह कि समाज के घुन-रूपी कुछ मारवाड़ी-पिशाचों का खुल्लमखुल्ला भण्डाफोड़ करने का हमने निश्चय कर लिया है—चाहे इसका परिणाम हमारे लिए कितना ही घातक सिद्ध क्यों न हो—चाहे इस अनुष्ठान में हमें मृत्यु तक का आलिङ्गन ही क्यों न करना पड़े, पर हम पाठकों को इस बात का विश्वास दिलाना चाहते हैं कि हमारा प्रयत्न देश के एक शुभचिन्तक का प्रयत्न था—हमारी आत्मा का रोदन सारे देश का रोदन था और हमारी नीयत (जिस पर आज कुछ मूर्ख सन्देह कर रहे हैं) दूध के समान उज्ज्वल और प्रकाश के समान पवित्र थी !! जो भाई-बहिनें हमारे इस अनुष्ठान में सहायक होना चाहें उनका हम अपार उपकार मानेंगे । जो भाई अथवा बहिनें इस विशेषाङ्क के लिए सामग्री भेज कर पुरस्कार की आशा रखती हों, उन्हें मुँह-माँगा पुरस्कार दिया जायगा । और हर हालत में सम्वाददाताओं का नाम गुप्त रक्खा जायगा !! जीवन और मृत्यु के इस भयङ्कर संग्राम में हम देशवासियों के सहयोग की भिक्षा माँगते हैं !!!

यह विशेषाङ्क कब प्रकाशित होगा, इस सूचना की प्रतीक्षा कीजिए !! 'चाँद' का यह विशेषाङ्क कम से कम २५,००० की संख्या में छपेगा ! बिना नई मैशीनों के आए इसका छपना असम्भव है, इसलिए पाठकों को सम्भवतः दो-तीन मास इसकी प्रतीक्षा करनी पड़े !

☞ बिना अभी से 'चाँद' के स्थायी ग्राहक-श्रेणी में नाम लिखाए इस विशेषाङ्क का मिलना सर्वथा असम्भव समझना चाहिए !!

आध्यात्मिक स्वराज्य हमारा ध्येय, सत्य हमारा साधन और प्रेम हमारी प्रणाली है। जब तक इस पावन अनुष्ठान में हम अविचल हैं, तब तक हमें इसका भय नहीं कि हमारे विरोधियों की संख्या और शक्ति कितनी है।

मौन-रोदन

[श्रीमती विद्यादेवी जी जैतली]

स्वप्नों के धुँधले प्रकाश में—
कितनी बार हुए दर्शन !
पाती रही किसी विधि अब तक
आशा द्वारा आश्वासन !!

पर अब सह न सकेगा मेरा—
व्यथा-तप्त यह हृदय वियोग !
होगा फिर न कभी जीवन में
सम्भवतः तुमसे संयोग !!

सूनी आँखों में कितनी निशि,
नाथ ! बिताई हैं मैंने !
एक बार फिर भी न कभी तुम—
आए हा ! दर्शन देने !!

मोह-जाल में मुझे फँसा कर
निर्मोही क्यों आप बने ?
छोड़ गए क्यों मुझे नाथ हा !
विरह-वह्नि में यों तपने ?
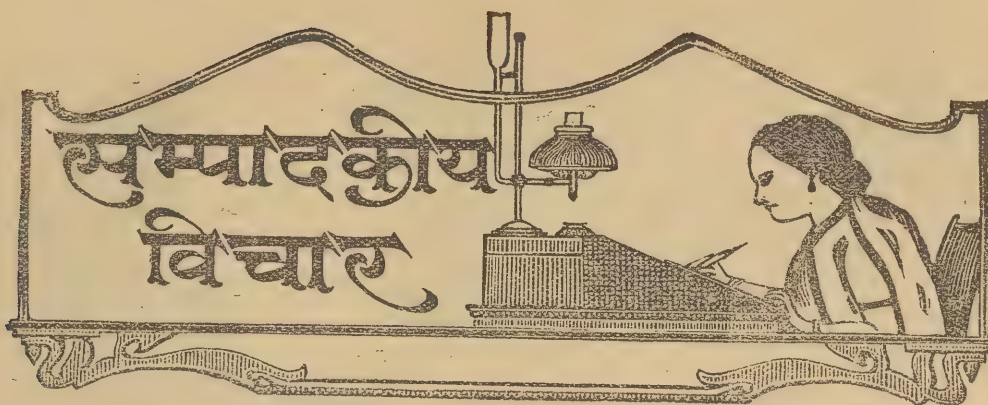
मई, १९३०

हिन्दू-समाज और तलाक़

अभागे हिन्दू-समाज ने अपने भीतर ऐसी स्त्रियों के एक विशाल समूह की सृष्टि कर रक्खी है, जो वास्तव में न अविवाहिता हैं, न विवाहिता, और जो न विधवा ही हैं। हिन्दुओं के बहुत से बड़े-बड़े और प्रतिष्ठित घरों तक की अनेक लड़कियाँ आज केवल नाम-मात्र के लिए विवाहिता हैं, परन्तु वास्तव में विवाहित जीवन का सुख उन्हें प्राप्त नहीं है। इसका कारण है हिन्दुओं के वर्तमान वैवाहिक क़ानून की भ्रष्टता। जो क़ानून समाज में रहने वाले सभी स्त्री-पुरुषों के जीवन को सुखमय और शान्तिमय बनाने के उद्देश से रचा गया है, वही क़ानून इन अभागिनी अबलाओं के लिए दुःख और अशान्ति का सब से बड़ा कारण बन गया है!

वर्तमान हिन्दू-लॉ के अनुसार एक हिन्दू पुरुष एक साथ कितनी पत्नियाँ और कितनी उपपत्नियाँ ग्रहण कर सकता है, इसकी कोई सीमा नहीं है। मुस्लिम-लॉ के अनुसार एक मुसलमान पुरुष अधिक से अधिक चार पत्नियाँ रख सकता है, और उपपत्नियाँ जितनी चाहे। उपपत्नी रखने के विषय में हिन्दू और मुसलमान, दोनों जातियों के पुरुष क़ानून की दृष्टि से पूर्ण स्वतन्त्र हैं। वे अनेक पत्नियों के जीवित रहते हुए भी चाहे जितनी उपपत्नियाँ रख सकते हैं, इस विषय में क़ानून बाधक नहीं हो सकता। बौद्धों को भी एक से अधिक पत्नी रखने का अधिकार है, परन्तु केवल उसी अवस्था में जब कि प्रथम पत्नी बाँझ हो, झगड़ालू हो अथवा किसी अन्य कारण से अयोग्य हो। इस दृष्टि से विचार करने से हिन्दुओं का वर्तमान वैवाहिक क़ानून ही सब सेनिकृष्ट प्रमाणित होता है, क्योंकि मुस्लिम और बौद्ध धर्मों में पुरुषों की विषय-वासना पर अङ्कुश रखने का कुछ विधान किया भी गया है, परन्तु हिन्दू-धर्म में इस प्रकार का कोई विधान नहीं पाया जाता। इस अभागे समाज में स्त्रियों के अधिकार और हिताहित की किञ्चिन्मात्र भी परवा किए बिना, पुरुष चाहे जितनी स्त्रियों का पाणिग्रहण कर लेने के लिए स्वतन्त्र है।

दूसरी ओर हिन्दू-समाज में स्त्रियों को इतना भी अधिकार नहीं है कि वे पति द्वारा अनुचित रूप से सताए जाने, अपमानित किए जाने, त्याग दिए जाने, पति

के संन्यासी हो जाने अथवा उसके दुश्चरित्र, नपुंसक या असमर्थ होने पर उससे सम्बन्ध-विच्छेद करके अपना दूसरा विवाह कर सकें। हिन्दू-समाज में तलाक़ की प्रथा नहीं है। हिन्दू-धर्म के अनुसार विवाह-सम्बन्ध एक आजीवन न टूटने वाला सम्बन्ध समझा जाता है, और चाहे कैसी भी परिस्थिति क्यों न उत्पन्न हो जाय, एक बार विवाह हो जाने पर न पति पत्नी को तलाक़ दे सकता है, न पत्नी पति को। इस विषय में हिन्दू-लॉ इतना कठोर है कि पति या पत्नी दोनों में से किसी एक के अन्य धर्म स्वीकार कर लेने या जाति-च्युत हो जाने पर भी उनका सम्बन्ध-विच्छेद नहीं हो सकता। यदि दोनों पक्ष एक दूसरे से स्वतन्त्र होकर व्यभिचार करने लगें—यहाँ तक कि यदि पति के यहाँ से भाग कर पत्नी वेश्या हो जाय—तो भी उनका वैवाहिक सम्बन्ध नहीं टूट सकता; उस समय भी क़ानून की दृष्टि में वे एक दूसरे के पति-पत्नी ही बने रहते हैं! इससे प्रत्यक्ष है कि यद्यपि हिन्दुओं के विवाह-सम्बन्ध को एक धार्मिक एवं आजीवन न टूटने वाला सम्बन्ध समझा जाता है, तथापि इस सम्बन्ध का क़ानून निरी विडम्बना मात्र है। और कुछ नहीं तो कम से कम धर्म की ही रक्षा के लिए वैवाहिक क़ानून और धर्म के बीच सामञ्जस्य स्थापित कर देना अत्यन्त आवश्यक है। इस आवश्यकता की पूर्ति शीघ्र होनी चाहिए।

विवाह को धार्मिक सम्बन्ध ठहराने में प्राचीन ऋषियों और स्मृतिकारों का यही अभिप्राय मालूम होता है कि स्त्री और पुरुष दोनों अपनी-अपनी प्रवृत्तियों का संयम करें; स्त्री केवल एक ही पुरुष के साथ, और पुरुष केवल एक ही स्त्री के साथ सम्भोग करके सन्तुष्ट हो जावे; अधिक की कामना न करे। प्राचीन ऋषियों का यह अभिप्राय कदापि नहीं रहा होगा कि पति और पत्नी अपने-अपने कर्त्तव्यों से च्युत हो जाने पर भी—यहाँ तक कि एक दूसरे को त्याग देने या एक दूसरे से स्वतन्त्र होकर व्यभिचार करते रहने पर भी—एक दूसरे के पति-पत्नी ही कहलाते रहें! परन्तु ठीक यही परिस्थिति है, जो वर्तमान हिन्दू-लॉ ने उत्पन्न कर रक्खी है। विवाह की धार्मिकता इस बात में है कि पति-पत्नी आजीवन एक-दूसरे के प्रति अपने कर्तव्य का पालन करते रहें। संसार में जितने भी नाते और सम्बन्ध हैं, सब का वास्तविक आधार कर्त्तव्य-पालन ही है। कर्त्तव्य से च्युत होते ही मनुष्य धर्म से च्युत हो जाता है, क्योंकि कर्त्तव्य और धर्म में कोई भेद नहीं है। कर्त्तव्य ही धर्म है। हिन्दुओं के पवित्र धर्म-ग्रन्थों में मनुष्य के विभिन्न प्रकार के कर्त्तव्यों का ही विधान किया गया है। अतः धर्मानुसार कोई पुरुष किसी स्त्री का पति तभी तक रह सकता है, जब तक वह पत्नी के प्रति अपने कर्त्तव्य का पालन करता रहे; पत्नी भी तभी तक धर्मपत्नी है जब तक वह प्रेम और निष्ठा के साथ पति की सेवा करे। परन्तु हिन्दू-लॉ इस विषय में इतना त्रुटिपूर्ण, इतना भ्रष्ट है कि पति-पत्नी के सदा के लिए धर्म-च्युत—सदैव के लिए पारस्परिक कर्त्तव्य से विमुख—हो जाने पर भी वह उन्हें पति-पत्नी ही मानता रहता है! यहाँ तक कि यदि वे एक दूसरे से विरक्त होकर पृथक हो जायँ और नियमानुसार अपना सम्बन्ध-विच्छेद कर लेना चाहें तो भी क़ानून उन्हें ऐसा करने की अनुमति नहीं देता!

इसका स्वाभाविक परिणाम यह होता है कि जिन दम्पतियों में आपस में नहीं बनती, वे कार्यतः तो एक-दूसरे से पृथक हो जाते हैं, पर क़ानून की दृष्टि में वे पति-पत्नी ही बने रहते हैं! पति अपने कर्त्तव्य से विमुख हो जाता है और पत्नी अपने कर्त्तव्य से मुँह मोड़ लेती है, पर क़ानून के अनुसार यही समझा जाता है कि वे एक-दूसरे के प्रति अपने कर्त्तव्यों का भली-भाँति पालन कर रहे हैं!! और इसलिए न्यायालय इस विषय में उनका कष्ट दूर करने से साफ़ इन्कार करता है!!! पुरुषों को एक या एक से अधिक पत्नियों के जीवित रहते हुए भी नया विवाह कर लेने का अधिकार है। इसलिए इस क़ानून से पुरुषों की तो विशेष हानि नहीं हुई है, परन्तु स्त्रियों की स्थिति को इस अधूरे क़ानून ने अत्यन्त दुर्बल बना दिया है। उन्हें अपने जीवन की सफलता और समृद्धि, सुख और शान्ति पर कोई अधिकार ही नहीं रह गया है। उनके जीवन का सुखमय या दुःखमय होना पूर्ण रूप से पुरुषों की कृपा पर निर्भर है। स्त्रियों की ज़रा-ज़रा सी बात पर—उनके नगण्य अपराधों और काल्पनिक दोषों पर—पुरुष उन्हें छोड़ कर दूसरा विवाह कर लेते हैं। पहिली स्त्री आजन्म अपने दुर्भाग्य पर आँसू बहाने के लिए छोड़ दी जाती है। नई स्त्री से अधिक प्रेम किया जाता है, उसे अधिक प्रतिष्ठा तथा आराम मिलता है और उसके सामने ही बेचारी पहिली स्त्री के साथ नौकरों से भी बदतर सलूक किया जाता है। ऐसी कष्टमय दशा में भी क़ानून के अनुसार

पहिली स्त्री न तो अपने पति से अलग हो सकती है और न उसे त्याग कर दूसरा विवाह ही कर सकती है !!!

इस विषय में हिन्दू स्त्रियों की क़ानूनी स्थिति को स्पष्ट कर देना आवश्यक है। हिन्दू-लॉ में स्त्री एक प्रकार से अपने पति की सम्पत्ति समझी गई है। शायद इसीलिए प्राचीन काल से 'कन्या-दान' देने की प्रथा चली आ रही है। कन्या का पिता अपने दामाद को जिस प्रकार अन्न, वस्त्र, द्रव्य, गाय, घोड़े आदि दान देता है, उसी प्रकार अपनी कन्या भी दान देता है। यह 'दान' शब्द इस बात का परिचायक है कि हिन्दू-समाज में कन्याओं को जड़ पदार्थों की श्रेणी में रक्खा गया है, उनकी चेतनता को स्वीकार नहीं किया गया है। आधुनिक क़ानून के अनुसार भी स्त्रियाँ अपने पति की सम्पत्ति ही समझी जाती हैं, क्योंकि कई अत्यन्त आपत्तिजनक अवस्थाओं के अतिरिक्त उन्हें पति से अलग रहने का अधिकार नहीं है। यदि पति कोढ़ी हो या इसी प्रकार के अन्य किसी घृणित और असाध्य रोग से पीड़ित हो, यदि पति घर में कोई उपपत्नी या वेश्या रख ले, यदि पति अपनी पत्नी को इतना मारता-पीटता हो कि पत्नी के लिए उसके साथ रहना भयपूर्ण हो, अथवा यदि पति विधर्मी हो जाय तो पत्नी उससे अलग रह सकती है। परन्तु केवल इस कारण से कि पति ने दूसरा विवाह कर लिया है, अथवा वह वेश्यागामी है, उसकी पत्नी उससे पृथक नहीं हो सकती। इस विषय में स्त्रियों के अधिकार इतने कम हैं कि यदि कोई स्त्री विवाह के पहले अपने पति से इस आशय का प्रतिज्ञा-पत्र भी लिखवा ले कि उसका पति उसके जीवित रहते दूसरा विवाह नहीं करेगा अथवा यदि दूसरा विवाह कर लेगा तो उसे अलग रहने देगा, तो भी पति के दूसरा विवाह कर लेने पर वह उससे अलग नहीं हो सकती, क्योंकि वर्तमान क़ानून के अनुसार ऐसा प्रतिज्ञा-पत्र लिखाना जायज़ नहीं है।

इस क़ानून का स्पष्ट अर्थ यह हुआ कि पति चाहे अपनी पत्नी का सम्मान करे या अपमान, चाहे वह सदाचारी हो या दुराचारी, पत्नी के लिए हर हालत में उसके पास रहना अनिवार्य है। दूसरी ओर पत्नी चाहे कितनी ही सदाचारिणी क्यों न हो, चाहे वह कितनी ही रूपवती और गुण वाली क्यों न हो, पति उससे विरक्त हो सकता है, उसे सदा के लिए छोड़ कर अपना दूसरा विवाह भी कर ले सकता है। इसके लिए न्यायालय पति को सज़ा नहीं दे सकता, परन्तु वही न्यायालय पत्नी को दूसरा विवाह करने से रोक सकता है ! पत्नी भी चाहे तो अपनी स्वाभाविक इच्छाओं की तृप्ति के लिए व्यभिचार कर सकती है, परन्तु वह नियमानुसार विवाह करके गृहस्थ-जीवन का सात्विक सुख नहीं भोग सकती ! भला ऐसे भ्रष्ट क़ानून का धर्म से क्या सम्बन्ध हो सकता है ? विवाह के धार्मिक महत्व को नष्ट कर देने का उत्तरदायित्व बहुत अंशों में इस अधूरे क़ानून ही पर है। यदि हिन्दुओं का विवाह वास्तव में एक धार्मिक संस्कार है और हिन्दू पुरुष तथा स्त्री वास्तव में एक-दूसरे के सहधर्मी और अर्द्धाङ्ग हैं तो यह नितान्त आवश्यक है कि उन दोनों के लिए दाम्पत्य, ब्रह्मचर्य, सदाचार और पवित्रता के एक ही नियम बनाए जायँ। इसका क्या अर्थ हो सकता है कि दाहिने अङ्ग के लिए जो बात धर्म है वही बात बाएँ अङ्ग के लिए अधर्म समझी जाय ? क्या धर्म और सदाचार का कोई भी प्रेमी यह बता सकता है कि यदि पुरुषों के अनेक विवाह करने से धर्म नष्ट नहीं होता तो स्त्रियों के अनेक विवाह करने से धर्म कैसे नष्ट हो जायगा ?

इस ग़ैरक़ानूनी क़ानून ने हिन्दुओं के पारिवारिक जीवन को कलह और अशान्ति का घर बना रक्खा है। इस क़ानून से हिन्दू स्त्री और पुरुष दोनों का जीवन किस प्रकार दुःखमय बन जाता है, इसके कुछ उदाहरण यहाँ देना असङ्गत न होगा। आज से कुछ वर्ष पूर्व की बात है, बनारस की एक लड़की की शादी दस वर्ष की अवस्था में सनातनधर्म के नियमानुसार परतापगढ़ ज़िले के एक नवयुवक से हुई। लड़की ससुराल जाकर कुछ महीने बाद अपने मैके लौट आई। जब उसका पति उसे दुबारा ले जाने के लिए आया तो लड़की ने पुनः ससुराल जाने से इन्कार किया और उसने अपने पति के चरित्र पर कई गम्भीर दोषारोपण किए। यह सुन कर उसका पति वापस लौट गया और घर जाकर उसने दूसरा विवाह कर लिया। तब से लड़की बराबर अपने पिता के घर रही। जब उसकी अवस्था बीस वर्ष के क़रीब हुई तो उसके पिता ने पुनः उसके पति से प्रार्थना की कि वह उस लड़की को अपने साथ रख ले, पर सब व्यर्थ हुआ। उसके पति ने यद्यपि उसे अपने पास रखना स्वीकार नहीं

किया, तथापि उसने यह विश्वास दिलाया कि यदि उस लड़की की शादी दूसरी जगह कर दी जाय तो इसमें उसकी ओर से कोई आपत्ति नहीं की जायगी। परन्तु वैवाहिक क़ानून के वर्तमान रूप में रहते हुए उसका ऐसा विश्वास दिलाना व्यर्थ था।

यह एक ऐसी दशा थी जिसमें पति और पत्नी दोनों ने कार्यतः तलाक़ दे दिया था। पति को अपनी त्यागी हुई स्त्री के पुनर्विवाह में भी कोई आपत्ति नहीं थी। लड़की भी अपनी दूसरी शादी हो जाना अवश्य पसन्द करती होगी। परन्तु वर्तमान हिन्दू-लॉ की त्रुटियों के कारण ऐसी लड़कियों का पुनर्विवाह नहीं हो सकता। क़ानून की दृष्टि में वे सधवा हैं, यद्यपि स्वयं अपनी दृष्टि में तथा अपने पति की दृष्टि में वे सधवा नहीं हैं! वास्तव में ऐसी अभागिनियों की दशा विधवाओं से भी बदतर है। विधवाओं को पुनर्विवाह करने का अधिकार है, परन्तु ये सधवा-रूपी विधवाएँ इस अधिकार से भी वञ्चित हैं!! क्या धर्म और सदाचार की रक्षा के लिए यह आवश्यक नहीं है कि विधवा-विवाह की भाँति ऐसी नाम-मात्र की सधवाओं के पुनर्विवाह को भी क़ानून-सङ्गत माना जाय?

इस प्रकार पति द्वारा त्यागी हुई स्त्रियों के अनेक उदाहरण दिए जा सकते हैं, परन्तु इससे यह न समझ लेना चाहिए कि वर्तमान क़ानून से केवल स्त्रियों की ही हानि है और पुरुषों को इससे लाभ ही लाभ है। इस क़ानून के कारण पुरुषों की अवस्था कभी-कभी स्त्रियों की अपेक्षा अधिक करुणाजनक हो जाती है। अभी हाल ही में बम्बई के एक विद्यार्थी ने रेल के नीचे कट कर जान दे दी थी। उसके पास एक चिट्ठी मिली थी, जिसमें लिखा था :—

"मैं हज़ार कोशिश करके भी अपने अभिभावकों को नहीं समझा सका। मैं उनका सामना करने में असमर्थ हूँ। इसलिए मुझे जो उचित मालूम होता है, वही कर रहा हूँ। कम उम्र में मेरा जो विवाह हुआ है उससे मेरे जी में यही इच्छा उत्पन्न हुई है, कि उस बालिका का दूसरा विवाह कर दिया जाय।"

पति के जीवित रहते किसी भी अवस्था में हिन्दू-स्त्री का दूसरा विवाह नहीं हो सकता। इसलिए बेचारे नवयुवक विद्यार्थी ने आत्म-हत्या करके पत्नी के पुनर्विवाह का मार्ग साफ़ कर दिया। यह भी एक उपाय है, असमर्थ और नपुंसक पुरुषों के लिए लज्जा और ग्लानि से छुटकारा पाने का। परन्तु क्या हिन्दू-धर्म की रक्षा के लिए यह आवश्यक है कि इस प्रकार अप्रौढ़ विद्यार्थियों और कमज़ोर पुरुषों का बलिदान किया जाय? यदि हिन्दू-समाज में तलाक़ की प्रथा होती तो उपरोक्त विद्यार्थी को आत्म-हत्या करने के लिए विवश नहीं होना पड़ता—और न विवश होना पड़ता उस बनारस वाली लड़की को आजीवन विवाहित वैधव्य की चिता में धायँ-धायँ करके जलने के लिए!

परन्तु तलाक़ का नाम सुनते ही हमारे बहुत से भाइयों का हृदय धर्म-नाश की आशङ्का से काँप उठता है। ऐसे मामलों में बहुत से व्यक्ति कोई व्यावहारिक उपाय बताने के बदले कोरे उपदेश देने लगते हैं। कोई कहते हैं—"चाहे कैसी भी विपत्ति क्यों न पड़ जाय, स्त्री को पतिव्रत-धर्म से कदापि मुँह न मोड़ना चाहिए।" कोई साहब फ़र्माते हैं—"यदि कन्या के माता-पिता पहले से ही ख़ूब देख-भाल कर विवाह करें तो ऐसे झगड़े क्यों पैदा हों? विवाह करने के पहले वर और कन्या की भी सम्मति ले लेनी चाहिए।" यदि माता-पिता इस 'चाहिए' में भूल कर दें तो इसके लिए लड़के-लड़कियाँ आजन्म कष्ट क्यों भोगें? और इन महान उपदेशों से विरोध किसे है? तलाक़ का प्रश्न तो वहाँ उठता है जहाँ ये सारे उपदेश विफल हो जाते हैं—जहाँ इन सारे उपदेशों के अनुसार कार्य करने पर भी झगड़े उठ खड़े होते हैं। माता-पिता अधिक से अधिक जो कर सकते हैं, वह यही है कि वे वर-कन्या की अच्छी से अच्छी जोड़ी मिला कर विवाह करें। परन्तु मनुष्य भविष्यवेत्ता नहीं है; मनुष्य से भूल होना सम्भव है। आज जो वर-कन्या एक-दूसरे के अनुकूल जँचते हैं, वही आगे चल कर प्रतिकूल सिद्ध हो सकते हैं। ऐसी अवस्था में यदि भविष्य में उनमें आपस में न पटे और वे एक-दूसरे का परित्याग कर दें तो क्या समाज को उनका दुःख दूर करने की चेष्टा नहीं करनी चाहिए? क्या घर को आग से बचाने की भरपूर चेष्टा करने पर भी उसमें आग लग जाय तो उसे नहीं बुझाना चाहिए? मनुष्य से भूल हो सकती है, और इसलिए मनुष्य को अपने पास भूल की दवा रखनी चाहिए। तलाक़ वह अस्त्र

है, जिसका प्रयोग उस समय किया जा सकता है जब भूल को सुधारने का और कोई उपाय न रह जाय।

जिन दम्पतियों का एकत्र रहना सर्वथा असम्भव हो गया हो, उनका सम्बन्ध-विच्छेद न करा कर, उन्हें संयम और त्याग का उपदेश देना किस प्रकार निरर्थक है, यह निम्न-लिखित उदाहरण से प्रत्यक्ष हो जायगा। वैशाख बदी २, सम्वत् १९८९ के 'हिन्दी-नवजीवन' में महात्मा गाँधी लिखते हैं:—

एक नौजवान के पत्र का सार इस तरह है :—

"पन्द्रह वर्ष के एक नौजवान का ब्याह सत्रह वर्ष की एक युवती के साथ हुआ है। युवती अपने नामधारी पति से नाराज़ है। पति तो बड़ा होने पर इच्छानुसार दूसरा ब्याह कर सकता है, लेकिन युवती क्या करे? माता-पिता और समाज की दृष्टि से तो उसकी अपनी कोई इच्छा हो ही नहीं सकती। दूसरे यह युवती अशिक्षित है; इस वजह से वह पुनर्विवाह का विचार भी नहीं कर सकती। अगर वह कुछ करना चाहती है तो सिर्फ़ अनीति। ऐसी युवती क्या करे? उसका रक्षक कौन हो?"

महात्मा जी इसका उत्तर देते हैं :—

ऐसे मामलों में जो कुछ मुझे सूझता है सो तो यों है। अगर कोई रिश्तेदार ऐसी युवती की मदद करना चाहे तो उसे दृढ़तापूर्वक उसकी मदद करनी चाहिए। किशोर होते हुए भी अगर इस युवती का पति समझदार है तो उसे चाहिए कि वह अनिच्छापूर्वक किए गए युवती के साथ के अपने इस सम्बन्ध से लाभ उठा कर उसे पढ़ाए, ख़ुद उसे अपनी बहन समझे और उसके लिए योग्य पति ढूँढ़ दे। मैं जानता हूँ कि पन्द्रह वर्ष के किशोर से इतनी बुद्धिमानी की आशा नहीं की जा सकती। लेकिन इस समय इस उम्र के भी परोपकारी बालक मेरी नज़रों में हैं और इसी आधार पर मैंने ऊपर की बात लिखी है। तीसरा मार्ग है, लोकमत को सुशिक्षित बनाने का—जिन्हें ऐसे बेजोड़ विवाहों का पता चले, वे उन्हें प्रकट तो ज़रूर ही कर दें। यह करते हुए भी अगर सङ्कट-ग्रस्त बाला की रक्षा न हो सके तो भी यह निश्चित ही है कि धीरे-धीरे ऐसी घटनाएँ कम होती जायँगी।

इस उत्तर के विषय में कम से कम जो बात कही जा सकती है, वह यह है कि यह उत्तर नितान्त अव्यावहारिक एवं असन्तोष-जनक है। जब महात्मा जी के समान व्यवहार-कुशल व्यक्ति भी ऐसे मामलों में उपदेश देने में इतने अव्यावहारिक हो सकते हैं तो साधारण आदमियों की तो बात ही क्या? महात्मा जी स्वयं इस बात को स्वीकार करते हैं कि 'पन्द्रह वर्ष के किशोर से इतनी बुद्धिमानी की आशा नहीं की जा सकती।' फिर भी जब वह 'पन्द्रह वर्ष के किशोर' को ऐसा उपदेश देते हैं तो इसका स्पष्ट आशय यही है कि वह इस समस्या को हल करने में अपनी असमर्थता स्वीकार करते हैं। हमें सब से बड़ा आश्चर्य इस बात पर होता है कि महात्मा जी क़ानून के पण्डित होते हुए भी कैसे यह कहते हैं कि वह किशोर अपनी पत्नी के लिए दूसरा योग्य पति ढूँढ़ दे? प्रथम पति के जीवित रहते उस युवती का दूसरा विवाह हो कैसे सकता है? वर्तमान क़ानून के अनुसार वह चाहे तो व्यभिचार कर सकती है, चाहे तो किसी की उपपत्नी बन सकती है, पर विवाह करके किसी अन्य पुरुष की धर्मपत्नी नहीं बन सकती। क्या क़ानून का कोई मर्मज्ञ इस विषय पर प्रकाश डालने की चेष्टा करेगा?

महात्मा जी स्वीकार करते हैं—"हिन्दू-संसार में ऐसी करुण कथाओं के अगणित उदाहरण मिल सकते हैं।" फिर भी वह कहते हैं—"यह सम्भव नहीं कि ऐसी बातों का प्रतिकार शीघ्र ही किया जा सके। कई बातें ऐसी हैं, जिन्हें इस समय सिवा सह लेने के दूसरा चारा नहीं है।" 'ऐसी बातों को सह लेने' का अर्थ है अनीति और दुराचार को सह लेना। हम जानना चाहते हैं कि वह समय कब आने वाला है जब 'ऐसी बातों को सह लेना' ज़रूरी नहीं रह जायगा? क्या लोकमत पूर्णतया शिक्षित हो जाने पर? यह निरा भ्रम है। लोकमत चाहे कितना ही शिक्षित क्यों न हो जाय, लोगों से भूलें हुआ ही करेंगी। भूल करना मनुष्य का स्वभाव है। भूलों से छुटकारा पाने का केवल एक ही उपाय है और वह यह कि उन्हें सुधारने का क़ानून बना लिया जाय। लोक-

मत कभी भी इतना शिक्षित हो सकेगा कि मनुष्य को क़ानून की आवश्यकता न पड़े, इसकी आशा नहीं की जा सकती।

अब एक दूसरा उदाहरण लीजिए। ता० ३ अक्टूबर सन् १९२९ ई० के 'हिन्दी-नवजीवन' में महात्मा जी लिखते हैं :—

नीचे एक भाई के लम्बे पत्र का सारांश दे रहा हूँ, जिसमें उन्होंने अपनी विवाहिता बहिन के दुःखों का वर्णन किया है :—

"थोड़े समय पहले मेरी बहिन का ब्याह एक ऐसे व्यक्ति के साथ हो गया, जिसके चरित्र से हम अनजान थे। यह व्यक्ति बाद में इतना लम्पट और विषयी साबित हुआ है कि अनन्त व्यभिचार और विषय-भोग करते हुए भी उसकी वासना तृप्त नहीं होती। मेरी अभागिनी बहिन को ब्याह के बाद शीघ्र ही पता चला कि उसके स्वामी दिन-दिन निर्बल होते जा रहे हैं। उसने उन्हें समझाया। लेकिन वह उसके इस औद्धत्य को सह न सके और उसे 'सबक़ सिखाने' की ग़रज़ से उसके सामने ही व्यभिचार करने लगे। वह उसे बेतों से मारते, खड़ी रखते, औंधी टाँगते और भूखों मरने को विवश करते हैं। एक बार अपने स्वामी की व्यभिचार-लीला का प्रत्यक्ष दर्शन करने के लिए बहिन एक खम्भे से बाँध दी गई, जससे वह भाग न सके! मेरी बहिन का हृदय टूक-टूक हो गया है। उसकी निराशा की हद नहीं। उसके सन्ताप को देख कर हमारा हृदय जल उठता है। लेकिन हम लाचार हैं। कृपा कर कहिए, हम या हमारी बहिन क्या करें?"

महात्मा जी की सम्मति में इस विपत्ति से छुटकारा पाने का उपाय 'अत्यन्त सरल' है। वह लिखते हैं :—

प्रस्तुत मामले में जिस उपाय से काम लेना चाहिए, वह अत्यन्त सरल है।

इस सङ्कटग्रस्त बहिन के दुःख को देख कर रोने या अपनी लाचारी का अनुभव करने के बजाय उस के भाई और दूसरे रिश्तेदारों को चाहिए कि वे उसकी रक्षा करें, उसे यह समझावें, सिखावें तथा विश्वास दिलावें कि एक पापी—दुराचारी पति की ख़ुशामद करना या उसकी सङ्गति की आशा रखना उसका कर्त्तव्य नहीं है। यह तो स्पष्ट ही है, उसका पति उसकी ज़रा भी चिन्ता नहीं रखता—तनिक भी पर्वाह नहीं करता। अतएव क़ानूनी बन्धन को तोड़े बिना ही वह अपने पति से अलग रह सकती है और अपने आप यह अनुभव कर सकती है कि उसका ब्याह कभी हुआ ही नहीं।

यह उत्तर महात्मा जी के ही योग्य है। वह स्वयं साधु हैं और शायद संसार के अन्य लोगों को भी वह अपने ही समान इन्द्रिय-संयम करने में समर्थ समझते हैं। महात्मा जी के इस सम्बन्ध के सभी उत्तरों में यह गुण या दोष होता है कि वे व्यक्ति-विशेष के सामने ऊँचे आदर्श तो रख देते हैं, पर सामाजिक बुराई की जड़ को स्पर्श नहीं करते। जहाँ व्यवस्था ही भ्रष्ट है, वहाँ कितने आदमियों से इस प्रकार के संयम और त्याग की आशा की जा सकती है? संयम और त्याग कुछ इने-गिने लोग ही कर सकते हैं, पर साधारण जनता क्या करे? यदि साधारण स्त्रियाँ यह समझने में समर्थ होतीं कि 'उनका ब्याह कभी हुआ ही नहीं' तो शायद महात्मा जी के नाम ऐसे पत्रों के लिखे जाने की कभी नौबत ही नहीं आती। परन्तु इस प्रश्न का एक दूसरा पहलू भी है, जिससे महात्मा जी अपरिचित नहीं हैं। वह लिखते हैं :—

एक और प्रश्न रह जाता है; वे युवती स्त्रियाँ जो अपने क्रूर पति का साथ छोड़ कर अलग होती हैं, या जिन्हें पति स्वयं घर से निकाल देते हैं, जो तलाक़ से मिलने वाली सुविधा प्राप्त नहीं कर सकतीं, अपनी-अपनी विषयेच्छा को कैसे तृप्त करेंगी? मेरे विचार में यह कोई इतना गम्भीर प्रश्न नहीं है; क्योंकि जिस समाज ने युगों से तलाक़ की प्रथा को त्याज्य मान रक्खा है, उस समाज की स्त्रियाँ एक बार वैवाहिक जीवन का कटु अनुभव पा लेने पर दुबारा विवाह करना ही नहीं चाहतीं।

जिस विषयेच्छा की तृप्ति के लिए विश्व का एक-एक कण विकल है, जो विषयेच्छा संसार के सभी लौकिक और पारलौकिक कर्मों का मूल है, जिस विषयेच्छा की भित्ति पर समाज का सम्पूर्ण प्रासाद खड़ा है, उसकी तृप्ति का प्रश्न महात्मा जी के विचार में 'कोई इतना गम्भीर प्रश्न नहीं है'! अत्यन्त प्राचीन काल के तप-निधान योगियों से लेकर, आधुनिक युग के अग्रगण्य वैज्ञानिकों तक का कथन है कि मनुष्य में जितने भी गुण या अवगुण हैं, मनुष्य के जितने भी अच्छे या बुरे—ऊँच या नीच—कर्म हैं, सबके केन्द्र में काम-वासना या मैथुनेच्छा का ही विलास हो रहा है। मनुष्य की सभी वासनाएँ—ऐश्वर्य, मान, प्रतिष्ठा, यश आदि की विविध, अगणित वासनाएँ—काम-वासना के ही परिवर्तित स्वरूप मात्र हैं। यदि मनुष्य के हृदय में काम-वासना का वेग न रह जाय तो न धर्म की आवश्यकता रहे, न स्वराज्य की ज़रूरत। सत्याग्रह और असहयोग की लड़ाई लड़ कर महात्मा जी वास्तव में करोड़ों व्यक्तियों के लिए भोग-विलास के ही साधन एकत्र करने का प्रयत्न कर रहे हैं। अतः बुद्धिमानी इस वासना की प्रबलता को अस्वीकार करने या इसके वेग का दमन करने में नहीं है, बल्कि बुद्धिमानी इस बात में है कि इस वासना की तृप्ति का यथोचित उपाय किया जाय, जिससे समाज में शान्ति और सन्तोष का सञ्चार हो। उपनिषद् ने कहा है—'एकाकी न रमते'—मनुष्य अकेले में सुख नहीं पाता। प्रकृति की चारों ओर की शक्तियों के घात-प्रतिघात में मनुष्य का जीवन विपद्-सङ्कुल हो जाता है। इस विपद से मुक्त होने के लिए ही मनुष्य समाज की शरण लेता है। अतः समाज का प्रधान कर्त्तव्य है कि वह व्यक्तियों के भोग और तृप्ति का यथोचित प्रबन्ध करके उनके जीवन को सुदृढ़, शान्तिमय, सर्वाङ्ग-सुन्दर एवं सबल बनावे। यदि समाज इस आवश्यक कार्य का सम्पादन न करे तो उसकी कोई आवश्यकता ही नहीं रह जाती। समाज में विभिन्न रुचि के मनुष्य रहते हैं। इन सभी रुचियों का सुचारु नियमन करना ही समाज का ध्येय है। स्वयं समाज की सम्पन्नता और सबलता के लिए भी यह आवश्यक है कि उसमें सब प्रकार की रुचि, प्रवृत्ति, स्वभाव वाले व्यक्तियों का समावेश हो। कुछ लोग साधारण काम-भाव को त्याग कर राष्ट्र की सेवा कर सकते हैं, परन्तु अधिकांश लोगों को राष्ट्र की सेवा के लिए ही एक साथी, एक सहधर्मी, एक अभिन्न-हृदय सहचर की आवश्यकता होती है। अतः समाज में दोनों प्रकार के मनुष्यों की गुञ्जायश होनी चाहिए। यदि कुछ लोग प्रथम पति या पत्नी के मर जाने पर आजन्म ब्रह्मचर्य का पालन कर सकें तो इससे बढ़ कर उत्तम बात ही कौन सी हो सकती है? परन्तु जो लोग इतना कठोर संयम करने में असमर्थ हों और साथ ही व्यभिचार के कीच में भी नहीं फँसना चाहते हों, उनके पुनर्विवाह का प्रबन्ध तो अवश्य ही होना चाहिए। ऐसा न होने से उन व्यक्तियों का जीवन वासना के वेग के कारण प्रायः नष्ट हो जा सकता है। यदि यह वेग बहुत ही प्रबल हुआ तो वे समाज के बन्धन को तोड़ कर व्यभिचार करेंगे, अन्यथा वे एक ओर अपनी वासना की प्रबलता के साथ और दूसरी ओर समाज के कठिन नियम-पाश के साथ युद्ध करते-करते थक कर परेशान हो जाएँगे और अन्त में नाना प्रकार की मानसिक व्याधियों के शिकार बन जाएँगे। इसमें न व्यक्ति का हित है, न समाज का मङ्गल। अतः जो स्त्रियाँ अपने पति से पृथक होकर काम-वासना का दमन करने में असमर्थ हों, उनके पुनर्विवाह का क़ानून जारी कर देने में ही समाज का सच्चा हित और व्यक्ति का वास्तविक कल्याण है।

बहुत लोगों का विचार है कि तलाक़ की प्रथा भारतीय संस्कृति के प्रतिकूल है। परन्तु यह विचार भी सर्वथा निर्मूल ही मालूम होता है। जिस समय भारतवर्ष उन्नति के शिखर पर था, उस समय भारतीय समाज में तलाक़ की प्रथा का होना प्रमाणित होता है। भारतवर्ष के प्रायः सभी प्रमुख व्यवस्थापकों—मनु, पराशर, नारद, अत्रि, कात्यायन, वशिष्ठ आदि—ने विशेष-विशेष दशाओं में स्त्री के पुनर्विवाह की आज्ञा दी है, यद्यपि उन्होंने 'तलाक़' शब्द का प्रयोग नहीं किया है। इस विषय में पराशर का वचन विशेष रूप से उल्लेख-योग्य है। पराशर का मत है :—

> नष्टे मृते प्रव्रजिते क्लीवे च पतिते पतौ।
> पञ्चस्वापत्सु नारीणां पतिरन्यो विधीयते॥
>
> —पाराशर स्मृति ४–२८

अर्थात्—पति के भूल जाने, मर जाने, संन्यासी हो जाने, नपुंसक होने या जातिच्युत हो जाने—इन पाँच

आपत्तियों में स्त्री के लिए दूसरा पति ग्रहण करने का विधान किया गया है।

यह श्लोक प्राचीन काल में भारत में तलाक़-प्रथा के प्रचलित रहने का सब से ज़बर्दस्त प्रमाण है। परन्तु कुछ लोगों का कहना है कि पराशर अत्यन्त प्राचीन ऋषि हैं, इसलिए परवर्ती काल में भी उनके वचन का यथावत पालन करना उचित नहीं है। यदि इस तर्क को माना जाय तो आजकल मनु के वचनों का तो कदापि नहीं पालन करना चाहिए, क्योंकि मनु मानव जाति के आदि व्यवस्थापक हैं। भला बीसवीं शताब्दी में इतनी पुरानी व्यवस्था की दुहाई देने से क्या लाभ? परन्तु पुरानी चाल के पण्डित इस बात को स्वीकार नहीं करते। जहाँ उनके मत का समर्थन होता है, वहाँ वे मनुस्मृति के श्लोक उद्धृत करने में कोई हानि नहीं समझते। दूसरी बात यह है कि पराशर के बहुत पीछे होने वाले नारद ने भी तो स्त्रियों के पुनर्विवाह का बड़े ज़ोरों से समर्थन किया है। नारद का वचन है :—

अष्टौ वर्षाण्युदीक्षेत ब्राह्मणी प्रोषितं पतिम्।
अप्रसूता तु चत्वारि परतोऽन्यं समाश्रयेत् ॥

—नारद-स्मृति १२-९८

अर्थात्—ब्राह्मणी (स्त्री) परदेश गए हुए पति की प्रतीक्षा आठ वर्ष तक करे; यदि वह बिना बच्चे वाली हो तो चार वर्ष तक प्रतीक्षा करे; इसके बाद (यदि पति न आवे तो) अन्य (पति) का आश्रय ले।

अनुदार विचार वाले पण्डित यह कह कर इन श्लोकों से छुटकारा पा जाने की चेष्टा करते हैं कि पराशर और नारद ने यह विधान उन लड़कियों के लिए किया था, जिनका केवल वाग्दान (सगाई) हुआ हो, पर विवाह न हुआ हो। उक्त श्लोकों में ऐसी कोई बात नहीं, जिसका ऐसा अर्थ लगाया जा सके; प्रत्युत नारद की व्यवस्था का तो स्पष्ट आशय यह है कि बच्चे वाली स्त्री परदेश गए हुए पति की प्रतीक्षा आठ वर्ष तक करे और बिना बच्चे वाली चार वर्ष तक। यदि पण्डितों के तर्क को स्वीकार किया जाय तो यह भी मानना पड़ेगा कि नारद के समय में अविवाहिता स्त्रियों के भी बच्चे हुआ करते थे! इसलिए यह तर्क सर्वथा सारहीन है। इन श्लोकों के विरुद्ध एक दलील यह भी दी जाती है कि पराशर और नारद की व्यवस्थाएँ कलियुग के लिए नहीं हैं। यह दलील शायद सब से कमज़ोर है, क्योंकि पराशर ने स्वयं घोषित किया है कि उनकी व्यवस्था विशेष कर कलियुग के लिए ही है। इस विषय में "कलौ पाराशराः स्मृता" तो प्रसिद्ध ही है। इसलिए यदि पक्षपात छोड़ कर विचार किया जाय तो मानना पड़ेगा कि वर्तमान काल के लिए पराशर के वचन सब से अधिक माननीय और उपयोगी हैं।

अब मनु की व्यवस्था सुनिए :—

प्रोषितो धर्मकार्यार्थं प्रतीक्ष्योऽष्टौ नरः समाः।
विद्यार्थं षट् यशोऽर्थं वा कामार्थं त्रींस्तु वत्सरान् ॥

—मनुस्मृति ९-७६

अर्थात्—स्वामी धर्म-कार्य के लिए विदेश गया हो तो आठ वर्ष, विद्या या यश के निमित्त गया हो तो छः वर्ष, और विषय-वासना से गया हो तो तीन वर्ष तक उसके आगमन की प्रतीक्षा करे।

यद्यपि इस श्लोक का वास्तविक अभिप्राय यही है कि प्रतीक्षा-काल समाप्त होने पर स्त्री दूसरा विवाह कर ले, तथापि यह बात इसमें स्पष्ट रूप से नहीं कही गई है। मनुस्मृति की भाषा-टीका लिखने वाले एक चतुर लेखक ने इस श्लोक का अर्थ लिखने के बाद अपनी ओर से लिख दिया है—'पीछे वह (स्त्री) स्वयं पति के पास जाय'! ज़रा सोचने की बात है कि जब पति का पता ही न हो तो स्त्री जाय किसके पास? इसी तरह एक देवी जी कहती हैं—'आजकल रेल-तार के ज़माने में पति भूल ही कैसे सकता है?' ख़ैर, न भूले तो अच्छा ही है, लेकिन यदि भूल जाय तो क्या करना चाहिए? इसी प्रश्न का उत्तर मनु ने उपरोक्त श्लोक में दिया है। इस विषय में यह जो शङ्का की जाती है कि इस श्लोक से स्त्रियों के पुनर्विवाह का प्रत्यक्ष रूप से समर्थन नहीं होता, उसका समाधान मनु के ही निम्न-लिखित दो श्लोकों से पूरी तरह हो जाता है। मनु कहते हैं :—

या पत्या वा परित्यक्ता विधवा वा स्वेच्छया।
उत्पादयेत्पुनर्भूत्वा स पौनर्भव उच्यते ॥

—मनुस्मृति ९-१७५

अर्थात्—यदि कोई स्त्री पति द्वारा त्याग दी जाने पर या विधवा हो जाने पर स्वेच्छापूर्वक दूसरे पुरुष की भार्या

बन जाय, और उससे लड़का पैदा करे तो वह लड़का उस पुरुष का पुनर्भव पुत्र कहलाता है।

इस श्लोक से बिलकुल स्पष्ट है कि विधवा स्त्रियों और पति द्वारा त्यागी हुई स्त्रियों को पुनर्विवाह करने का अधिकार था। अगले श्लोक से यह बात और भी स्पष्ट हो जाती है :—

सा चेदक्षतयोनिः स्याद्गतप्रत्यागतापि वा ।
पौनर्भवेन भर्त्रा सा पुनः संस्कारमर्हति ॥

—मनुस्मृति ९-१७६

अर्थात्—वह स्त्री (जिसका वर्णन ऊपर के श्लोक में किया जा चुका है—जो पति द्वारा त्यागी जाने पर दूसरे पुरुष की भार्या बन गई हो) यदि अक्षत योनि हो और अपने दूसरे पति को छोड़ कर पुनः पहिले पति के पास लौट आवे तो पहिले पति के साथ विधिपूर्वक उस स्त्री का पुनः विवाह हो सकता है।

इस श्लोक से स्त्रियों के पुनर्विवाह के विषय में तो कोई शङ्का रह ही नहीं जाती; प्रत्युत इससे यह भी प्रमाणित होता है कि स्त्रियों के न केवल दो, बल्कि तीन विवाह तक धर्मानुसार हो सकते हैं; (१) प्रथम पति के साथ, (२) प्रथम पति से त्यागी जाने पर दूसरे पति के साथ, और (३) दूसरे पति से अलग होने पर पुनः प्रथम पति के साथ।

यह तो हुई मनु की व्यवस्था। इसी प्रकार अत्रि, कात्यायन, वशिष्ठ आदि के ग्रन्थों से भी स्त्रियों के पुनर्विवाह के पक्ष में अनेक अकाट्य प्रमाण और युक्तियाँ दी जा सकती हैं। इन प्रचुर प्रमाणों और शास्त्रीय वचनों से यह बात निश्चयात्मक रीति से प्रमाणित हो जाती है कि (१) पति के खो जाने, (२) उसके मर जाने, (३) संन्यासी हो जाने, (४) नपुंसक होने, (५) जाति-च्युत हो जाने, और (६) पति द्वारा त्याग दी जाने पर—इन छः आपत्तियों में—स्त्री का पुनर्विवाह पूर्णतया धर्म-सङ्गत है। इनमें से प्रथम आपत्ति में स्त्री के पुनर्विवाह—अर्थात् विधवा-विवाह की प्रथा तो हिन्दू-समाज में प्रचलित हो गई है, परन्तु अन्य पाँच आपत्तियों में भी इसे शीघ्र ही प्रचलित करने की आवश्यकता है। ये पाँचो आपत्तियाँ भी स्त्री के लिए प्रथम आपत्ति की अपेक्षा किसी भी प्रकार कम दुःखदायी नहीं हैं। यदि विधवा-विवाह करने से धर्म की हानि नहीं होती तो क्या न्याय और धर्म का कोई भी प्रेमी बता सकता है कि इन शेष पाँच आपत्तियों में भी—जो स्त्री के सुख की दृष्टि से पति के मरण-तुल्य ही हैं—स्त्रियों का पुनर्विवाह करने से धर्म पर सङ्कट कैसे टूट पड़ेगा ? जिस समय पहले-पहल विधवा-विवाह का क़ानून बनाने के लिए आन्दोलन किया गया था, उस समय उसका भी वैसा ही प्रबल विरोध हुआ था, जैसा आजकल तलाक़ का विरोध किया जा रहा है। परन्तु धन्य है विधवाओं के उस अनन्य हितैषी, उदार-हृदय पण्डित ईश्वरचन्द्र विद्यासागर को, जिनके दीर्घ प्रयत्न के फल-स्वरूप सन् १८५६ ई० के १५ वें क़ानून के अनुसार विधवाओं का विवाह क़ानून-सङ्गत मान लिया गया। आशा है, कोई ऐसा ही देश-सेवक, कर्मयोगी शेष पाँच आपत्तियों में भी स्त्रियों के पुनर्विवाह का क़ानून बनवा कर भारतीय देवियों को अनेक दुःखों और यन्त्रणाओं से शीघ्र ही मुक्त कर देगा।

यह धारणा अत्यन्त भ्रामक और निराधार है कि तलाक़ का क़ानून बनते ही हिन्दुस्तान अमेरिका बन जायगा और हिन्दुस्तानी स्त्रियाँ बिना सोचे-समझे अपने-अपने पति को तलाक़ देकर, अमेरिका की कुछ थोड़ी सी विलासिनी युवतियों की भाँति स्वेच्छाचारिणी बन जायँगी। यह दलील ऐसे लोगों की गढ़ी हुई है, जिन्होंने बिना कुछ सोचे-समझे समाज-सुधार के हर एक प्रयत्न को बदनाम कर देने का ठेका अपने ऊपर ले रक्खा है। ऐसे लोग न तो किसी विषय की गहराई में उतरते हैं और न वे यही समझते हैं कि परिस्थिति कहाँ तक नाज़ुक हो गई है। संसार के किसी भी क़ानून अथवा विधान का प्रभाव विभिन्न देशों अथवा व्यक्तियों पर एक ही कदापि नहीं हो सकता। भारतवर्ष की संस्कृति और भारत-वासियों का स्वभाव अमेरिका की संस्कृति और अमेरिकनों के स्वभाव से सर्वथा भिन्न है। अतएव यह कभी सम्भव नहीं है कि भारतवर्ष पर तलाक़ के क़ानून का वही प्रभाव पड़े जो अमेरिका या रूस पर पड़ा है। तलाक़ की प्रथा आजकल संसार के प्रायः सभी सभ्य देशों में प्रचलित है, परन्तु अन्य देशों में इसका वही परिणाम क्यों नहीं होता जो अमेरिका या रूस में हो रहा है ? इसका कारण है उन देशों की परिस्थिति, वहाँ के निवासियों का स्वभाव, उनके रहन-सहन की प्रणाली, उनके कर्त्तव्य और सदा-

चार की कल्पना आदि का अमेरिका या रूस वालों की कल्पना से विभिन्न होना। अमेरिका या रूस की सामाजिक, आर्थिक और आध्यात्मिक परिस्थिति ऐसी है कि वहाँ तलाक़ का क़ानून हो या न हो, स्त्री-पुरुष एक-दूसरे को तलाक़ देंगे और अवश्य देंगे। यही बात भारतवर्ष में भी हो रही है। इस देश में तलाक़ का क़ानून न होते हुए भी लोग कार्यतः अपनी स्त्रियों को तलाक़ दे ही दिया करते हैं। क़ानून उनका क्या कर लेता है? दूसरी ओर रूस और अमेरिका में भी ऐसे स्त्री-पुरुष हैं, जो आजीवन एक साथ प्रेम से रहते हैं और एक-दूसरे को तलाक़ देने की बात कभी स्वप्न में भी नहीं सोचते। अतः जिन लोगों का चरित्र शुद्ध है, उन्हें तलाक़ के क़ानून से घबराने की ज़रूरत नहीं; और जो लोग दुराचारी हैं वे चाहे तलाक़ का क़ानून बने या न बने, दुराचार करेंगे ही। क्या भारतवर्ष में ऐसे लोग नहीं हैं जो क़ानून की आँखों में धूल झोंक कर अपनी पत्नियों को त्याग देते हैं, और लाखों रुपए ख़र्च करके वेश्याओं के पैरों से ठोकर खाने में अपना सौभाग्य समझते हैं? भारतवर्ष में इस क़ानून की आवश्यकता इसलिए नहीं है कि तलाक़ को सस्ता बना दिया जाय, ताकि जिसके मन में जब आवे तभी तलाक़ दे दे, बल्कि इसकी सच्ची आवश्यकता यह है कि क़ानून न रहते हुए भी जो निरपराध स्त्रियाँ त्याग दी जाती हैं; उन्हें आजन्म दुःख भोगने से बचाया जा सके। इसलिए इस विषय में हिन्दुस्तान का क़ानून रूस या अमेरिका के क़ानून से सर्वथा भिन्न होगा। रूस में आजकल यह क़ानून है कि स्त्री या पुरुष दोनों में से कोई एक व्यक्ति रजिस्ट्रेशन ऑफ़िस में जाकर सूचना दे आता है कि वह तलाक़ देना चाहता है, इसके लिए कारण भी नहीं दिखाना पड़ता और तलाक़ मञ्जूर हो जाता है। परन्तु हिन्दुस्तान में तो केवल थोड़ी सी इनी-गिनी आपत्तियों में ही— जैसे, पति के कोढ़ी या नपुंसक होने, उसके संन्यासी हो जाने, खो जाने, जाति-भ्रष्ट हो जाने अथवा उसके स्त्री को त्याग देने आदि की दशा में—तलाक़ की प्रथा जारी करने का आन्दोलन किया जा रहा है। इसका आन्तरिक उद्देश्य दुराचार फैलाना नहीं, बल्कि न्याय, धर्म और मनुष्यता की रक्षा करना है। ऐसी अवस्था में एक ऐसे मङ्गलमय प्रयत्न को बिना सोचे-समझे बदनाम करने की चेष्टा करना क्या मानव-जाति के विरुद्ध घोरातिघोर अपराध नहीं है?

मुस्कान

[श्री० माहेश्वरीसिंह जी 'महेश']

थिरक रहा यौवन-मदिरा में—
मदमाता तेरा शृङ्गार।
ऋतुपति की सूनी गोदी में
मचल रहा है तेरा प्यार॥

आशा की इस भग्न कुटी पर
होता है तेरा आह्वान।
जर्जर वीणा के तारों से
खनक रहा है तेरा गान॥

लता-वल्लियाँ झूम रही हैं,
चिटक रही कलिका चुपचाप।
मतवाला अलि खेल रहा है,
पवन लगाता रह-रह थाप॥

रङ्ग-बिरङ्गी साड़ी पहने—
प्रकृति दिखाती अपना मान।
उथल-पुथल मच गया विश्व में
लख तेरी मञ्जुल मुस्कान॥

प्रबुद्ध

[आचार्य श्री० चतुरसेन जी शास्त्री]

वृद्ध महाराज शुद्धोदन आज विशेष प्रसन्न-वदन दिखाई पड़ रहे थे। वे प्रासाद के भीतरी अलिन्द में एक स्फटिक मणि की पीठ पर बैठे थे। उन्होंने सम्मुख कुछ दूर पर खड़े हुए प्रतिहार को पुकार कर कहा—अरे! देख तो, युवराज सिद्धार्थ अभी मृगया से लौटे या नहीं?

प्रतिहार ने आगे बढ़ और धरती पर बल्लम टेक कर कहा—परम परमेश्वर, परम वैष्णव, महाभट्टारक पादीय महाराजाधिराज की जय हो! भट्टारक पादीय महाकुमार अभी-अभी मृगया से लौटे हैं, और वे वायु-मण्डप में विश्राम कर रहे हैं।

"अच्छा-अच्छा, महानायक प्रबुद्धसेन और महामात्य विजयादित्य को तो यहाँ भेज दो।"

प्रतिहार ने नत-मस्तक हो प्रस्थान किया। महाराज ने चँवरवाहिनी को सङ्केत से निकट बुला कर कहा—जा, राजमहिषी से कह दे कि आज ही तो भाण्ड-वितरण का दिन है, सभी राजकुमारियाँ आ गई होंगी। वे स्वयं उनकी शुश्रूषा करें, ऐसा न हो कि किसी को खिन्न होने का अवसर मिले।

महानायक प्रबुद्धसेन ने स्थिर भाव से सम्मुख खड़े होकर और खड्ग को उष्णीष से लगा कर पुकारा—परम परमेश्वर, परम वैष्णव × × ×

महाराज ने बीच ही में हँस कर कहा—हुआ, महानायक, आज सभी सेना सज्जित रहनी चाहिए। ज्योंही कुमार सिद्धार्थ अन्तिम भाण्ड वितरण करें, त्योंही जय-घोष और सैनिक-अभिवादन होना चाहिए। आज ही कुमार सिद्धार्थ सेना को पताका प्रदान करेंगे।

महानायक ने नत-मस्तक होकर कहा—महाराज की जय! समस्त सेना सज्जित होकर भट्टारक पादीय महाराज कुमार के अन्तिम भाण्ड-वितरण की प्रतीक्षा कर रही है।

महामात्य विजयादित्य ने नत-जानु होकर महाराज का अभिवादन किया। महाराज ने प्रफुल्ल-वदन होकर कहा—महामात्य! अब तो समय समुपस्थित है, फिर विलम्ब क्यों? सभी राजकुमारियाँ आ तो गईं? तुम कुमार सिद्धार्थ को तृतीय अलिन्द में ले आओ, वहीं भाण्ड-वितरण किया जायगा। हाँ, तुम कुमार के सर्वथा निकट रहना और उनकी गति-विधि का सूक्ष्म निरीक्षण करते रहना। नेत्रों का तारतम्य और ओष्ठप्रस्फुर, गूढ़ मनोगत भावों को प्रदर्शित कर देगा। ज्योंही तुम देखो, कुमार किसी कन्या के प्रति आकर्षित हुए हैं, त्योंही तुम शङ्ख-ध्वनि करना, और पुरोहित को शुभ-सम्वाद देकर मेरे निकट भेज देना। इतना कह कर महाराज हँस दिए।

वृद्ध महामात्य भी हँसे। उन्होंने कहा—जो आज्ञा, परन्तु कोली राजकन्या यशोधरा अभी तक नहीं आई हैं। वह......

बीच में ही एक दण्डधर ने उपस्थित हो, उच्च स्वर से जयनाद करके कहा—कोली राजकन्या भट्टारक पादीय महाराज कुमार से भाण्ड-प्रसाद पाने की अभिलाषा से द्वार पर उपस्थित हैं।

महाराज ने हठात् खड़े होकर कहा—जाओ-जाओ, राजमहिषी से कहो कि वे राजनन्दिनी का यथेष्ट स्वागत करें।

महामात्य ने नत-मस्तक होकर कहा—तो अब मैं जाता हूँ।

"शुभं ते पन्थानः स्युः!"

महाराज फिर अलिन्द में अकेले रह गए। उस समय न जाने कितनी सुखद स्मृतियाँ उनके हृत्पिण्ड को विकसित कर रही थीं।

२

वायु-मण्डप की एक स्वच्छ शिला पर राजकुमार सिद्धार्थ विषण्ण-वदन बैठे थे। उनके शरीर पर केवल एक उत्तरीय और अधोवस्त्र था। वे मानो किसी गहन चिन्ता में मग्न थे। बसन्त की मृदुल वायु उनके काक-

पक्ष को लहरा रही थी। कुसुम-गुच्छ झूम-झूम कर सौरभ बिखेर रहे थे। तप्त स्वर्ण के समान उनकी शरीर-कान्ति उन महीन वस्त्रों से बिखरी पड़ती थी। उनका मुख, चिन्तन की गम्भीर भावना के कारण प्रस्फुटित कैशोरावस्था की उत्फुल्लता से रहित हो गया था; पर उसका अप्रतिभ सौन्दर्य कुछ और ही रङ्ग ला रहा था। उनका सुडौल गर्दन, विशाल वक्षस्थल, प्रलम्ब बाहु, और केहरी जैसी ठवन असाधारण थी। सुकोमल हृद्गत भाव, सुकुमार देह और पुंसत्व का उद्‌गम एक अलौकिक मिश्रण बना रहा था। वे शिला-खण्ड पर बैठे दोनों हाथों में जानु देकर सम्मुख पुष्करिणी में खिले एक कमल-पुष्प पर बारम्बार मत्त भ्रमर का प्रणय-आक्रमण देख रहे थे। परन्तु उस विनोद का कुछ प्रमाद उनके हृदय पर था—यह नहीं कहा जा सकता। उनकी दृष्टि भ्रमर पर थी अवश्य, पर वे किसी गूढ़ जगत में विचर रहे थे। कभी-कभी उनके होंठ फड़क उठते और कोई अस्फुट शब्द-ध्वनि उनमें से निकल जाती थी। वे इतने मग्न थे कि कब कौन उनके निकट आ खड़ा हुआ है, यह उन्हें ज्ञात ही नहीं हुआ।

पीछे से स्पर्श पाकर उन्होंने चौंक कर देखा और सम्भ्रान्त भाव से खड़े होकर आगत वृद्ध पुरुष को प्रणाम करते हुए बोले—आर्य की उपस्थिति का मुझे कुछ भी भान नहीं हुआ।

वृद्ध महापुरुष ने हँस कर कहा—होगा कैसे, तुम स्वयं उपस्थित रहो तब न? क्षण भर भी एकान्त हुआ, और तुम गम्भीर चिन्तन में मग्न हुए। कुमार! क्या प्रतापी शाक्य वंश के एक मात्र उत्तराधिकारी के लिए यह उचित है?

"आर्य, क्षमा कीजिए। मैं भविष्य में इसका ध्यान रक्खूँगा; परन्तु × × × आज मेरी परीक्षा हो गई न?"

"आशातीत, तुम्हारे जैसे अन्यमनस्क शिष्य से मुझे इतनी आशा न थी, सभी कहते थे कि कुमार लक्ष्य-वेध न कर सकेंगे। तुम अभ्यास ही कब करते थे? परन्तु आज तुम्हारा हस्त-लाघव देख कर मैं गद्‌गद हो गया। कुमार! मैं धन्य हुआ। तुम शाक्य वंश के दीपक होगे। मैं भविष्य-वाणी करता हूँ—तुम अप्रतिभ योद्धा × × ×" वृद्ध पुरुष ने कुमार के कन्धे पर स्नेह से हाथ रख कर उपरोक्त वचन कहे।

कुमार ने बीच ही में बात काट कर कहा—आर्य! पुरजन फिर तो मेरी परीक्षा की हठ न करेंगे?

"कभी नहीं, वे पूर्ण सन्तुष्ट हैं, सर्वत्र ही तुम्हारी अप्रतिभ शस्त्रकला की चर्चा हो रही है। पर तुम क्या विशेष थके हुए हो?"

"तनिक भी नहीं।"

"तब यह एकान्त-सेवन क्यों? यह गम्भीर चिन्तन क्यों? और यह विषण्ण मुख-मुद्रा क्यों?"

"आर्य अत्यन्त स्नेह के कारण ऐसा विचार करते हैं। परन्तु × × × अरे! महामात्य इधर ही आ रहे हैं—आर्य! हमें आगे बढ़ कर अमात्यवर का अभिवादन करना चाहिए।"

दोनों व्यक्ति वायु-मण्डप के द्वार तक बढ़ आए। महामात्य ने हँस कर कहा—महाभट्टारक पादीय महाराज कुमार जी, जय हो! आप आज आखेट में विजय प्राप्त कर आए हैं। इस सुसमाचार से अन्तःपुर में विशेष उल्लास हो रहा है; महिषी की इच्छा है कि आज सभी राजकुमारियाँ समुपस्थित हैं, कुमार उन्हें अपने हाथों से रत्न-भाण्ड प्रदान कर प्रतिष्ठित करें।

कुमार ने सलज्ज भाव से कहा—माता की जैसी आज्ञा। तीनों व्यक्ति धीरे-धीरे प्रसाद की ओर चल दिए।

३

उषा की आलोकित रश्मि-रेखा की तरह सबके अन्त में राजनन्दिनी यशोधरा ने कक्ष में प्रवेश किया, मानो उन्हें देखते ही कुमार सिद्धार्थ का चिर-निद्रित यौवन जाग्रत हो उठा। वह धीरे-धीरे सौरभ, आलोक और शोभा बिखेरती हुई व्यासपीठ तक पहुँच कर कुमार के सम्मुख खड़ी हो गईं; वह सिमट रही थीं और झुक रही थीं, न जाने अविकसित यौवन के भार से अथवा लज्जा के भार से; वह सम्मुख खड़ी होकर भूमि पर दृष्टि गड़ाए पद-नख से धरती पर बिछे स्फटिक-प्रस्तर पर रेखा खींचने का व्यर्थ प्रयास कर रही थीं।

कुमार चित्र-लिखित से देखते रह गए। वे जाग्रत भी प्रसुप्त से थे। कुमार के निकट खड़े अमात्यवर ने कहा—कुमार! राजनन्दिनी को भाण्ड प्रदान करो।

कुमार ने घबरा कर इधर-उधर देखा और अस्त-व्यस्त

स्वर में कहा—शुभ्रे ! तुमने अति विलम्ब किया, भाण्ड तो सभी वितरण हो चुके ।

राजनन्दिनी क्षण भर उसी तरह खड़ी रहीं, फिर उन्होंने ऋजुप्रणाम करके लौटने का उपक्रम किया ।

कुमार असंयत होकर आगे बढ़े और कण्ठ से मणि-माला निकाल कर उन्होंने कुमारी के गले में डाल दी । कुमारी ने दृष्टि उठा कर कुमार के प्रदीप्त स्वर्ण-मुख की ओर देखा । वे पत्ते की तरह काँपने लगीं और उनका मुख प्रस्वेद से भीग गया । कुमार जड़वत खड़े थे । हठात् महामात्य ने ज़ोर से शङ्ख-ध्वनि की और क्षण भर में भुशुण्डिकाएँ गर्ज उठीं, उसके बाद ही विविध वाद्य-ध्वनि से राजप्रासाद गुञ्जायमान हो गया ।

कुमार ने विचलित होकर कहा—आर्य ! यह क्या हुआ ? पर उन्होंने देखा, कक्ष में वे हैं और पुष्प-भार से झुकी हुई लतिका के समान राजनन्दिनी यशोधरा हैं । उन्होंने साहस करके कहा—राजनन्दिनी क्या प्रतिदान की अभिलाषा रखती हैं ?

कुमारी के अधरोष्ठ में एक क्षीण हास्य-रेखा और कपोलों पर लाली आई और गई । उन्होंने नत-जानु होकर कुमार को अभिवादन किया और चली गईं ।

४

क्या हम प्रेम की व्याख्या करें ? उस प्रेम की, जहाँ शरीर, सम्पत्ति का माध्यम नहीं है ; जहाँ केवल प्राणों में प्राणों का लय है ; जो नेत्र-पटल पर नहीं तौला जाता ; केवल आत्मा जिसमें विभोर होती है ; जो जीवन से मृत्यु तक और मृत्यु से परे भी वैसा ही पारिजात-कुसुम की तरह अक्षय विकसित रहता है ; वासना का जहाँ सम्पर्क नहीं; भोग और तृप्ति का जहाँ प्रसङ्ग नहीं ; अभिलाषा और अरुचि दोनों ही जहाँ नहीं ; जहाँ सुख नहीं, आनन्द है ; जहाँ कुछ भी प्राप्त करने की अभिलाषा नहीं—सब कुछ प्राप्त है ।

इस पृथ्वीतल पर दाम्पत्य जीवन में यह प्रेम किस महाभाग ने प्राप्त किया ???

गौतम ने यशोधरा का अञ्चल खींच कर कहा—गोपा प्रिये ! अब बस करो, चङ्गेरी तो भर चुकी । अब इन पुष्पों को लताओं में इसी तरह विकसित छोड़ दो । ये कल तक तो खिले रह सकेंगे ? देखो, जिन डालियों के पुष्प तुम तोड़ चुकी हो, वे कितनी अशोभनीय हो गई हैं ?

"होने दो, आर्यपुत्र ! ये कल फिर फूलों से लद जायँगी । यह तो प्रकृति का स्वभाव है ? आप व्यर्थ ही इतना विवाद करते हैं ।"

"व्यर्थ ? नहीं प्रिये ! इन कुसुम-लतिकाओं के प्रति तुम्हारा आचरण नितान्त निष्ठुर है । अभी प्रातःकाल तो तुम इन्हें अपने हाथों सींच रही थीं—क्या इसीलिए ?"

"और नहीं तो क्या ? आर्यपुत्र क्या मुझे ऐसी ही निःस्वार्थ समझे बैठे हैं ? मैंने सींचा है तो फूल भी चुनगी । यह तो जगत की गति ही है । और यह निष्ठुर आचरण क्या इतना ही ? अभी तो मैं सूची से गूँथ कर माला बनाऊँगी । ये यूथिका, चम्पा और कुन्द क्या योंही अस्त-व्यस्त चङ्गेरी में पड़े रहेंगे ? जैसे आर्यपुत्र के विचार पड़े रहते हैं ?"

"उलाहना मत दो प्रिये ! तुम्हें तो उदार होना ही चाहिए । तुम राजनन्दिनी हो, हाय-हाय ! क्या तुम इन कोमल पुष्पों को सुई से विद्ध भी करोगी ?"

"आर्यपुत्र! देखते रहें, मैं एक-एक को विद्ध करूँगी ? मैं राजनन्दिनी हूँ, पालन करना, कर-ग्रहण करना और दण्ड-भय से शासन और सुव्यवस्था बनाए रखना मेरा कर्त्तव्य है । जल-सिञ्चन करके मैंने पालन किया, पुष्प-चय करके कर-ग्रहण कर रही हूँ, और अब सूत्री-शस्त्र के बल से सुव्यवस्थित करके माला बनाऊँगी । फिर आर्यपुत्र के वक्षस्थल पर वह सुशोभित होगी । और मेरे परिश्रम का वेतन मुझे प्राप्त होगा ।"—इतना कह कर गोपा हँस पड़ी ।

महाराज कुमार सिद्धार्थ ने उसे दृढ़ता से पकड़ कर कहा—पर मैं विद्रोह करूँगा, अब मैं तुम्हें अधिक यह कर-शोषण नहीं करने दूँगा, प्रिये ! चाहो तो मुझे दण्ड दो ।

"अच्छी बात है ! मैं तुम्हें बाँध कर डाले देती हूँ ।" इतना कह कर गोपा ने अपने दृढ़ भुजा-पाश में कुमार को बाँध लिया ।

महाराज कुमार के अन्तस्तल में सदैव जाग्रत प्रबुद्ध सत्ता उस मद से क्षण भर को मूर्च्छित हो गई । उन्होंने पत्नी-श्रेष्ठ को प्रगाढ़ आलिङ्गन करके चुम्बन किया ।

गोपा ने हँस कर कहा—आर्यपुत्र ! स्मरण रक्खें कि

यह अनुग्रह वेतन में न काटा जाय, पुरस्कार मात्र समझा जाय !

राजकुमार हँस पड़े। उन्होंने कहा—गोपा प्रिये ! उस दिन तो तुम इतनी चपला न थीं, जिस दिन भाण्ड-वितरण × × ×

"आर्यपुत्र के पास इसी बात का क्या प्रमाण है कि मैं वही बालिका हूँ ?"

"वही तो हो प्रिये ? यह नेत्र और यह अधरोष्ठ, इन्हें क्या मैं भूल जाऊँगा ? ओह, इन्हीं ने तो मुझे ठगा।"—राजकुमार मानो एक गम्भीर चिन्तन में पड़ गए।

गोपा ने व्याजकोप से कहा—आर्यपुत्र को भ्रम हुआ है। वे थीं राजनन्दिनी यशोधरा—कोल-कुमारी, और मैं हूँ भगवती गोपा—शाक्य सिंहासन की युवराज्ञी।

"अच्छा-अच्छा प्रिये ! अब चलो, प्रासाद में चलें, सूर्य अस्त हो रहा है ; तुम्हें शीत का भय है।"

"जो आज्ञा आर्यपुत्र !"

५

"अर्द्ध रात्रि तो कब की व्यतीत हो गई। त्रिशिरा नक्षत्र आकाश के मध्य भाग में आ गया। आर्यपुत्र क्या अभी शयन न करेंगे ?"

"ओह प्रिये ! तुम अभी तक जाग रही हो ?"

"सारा संसार मोहमयी निद्रा में शयन कर रहा है।"

"हाय ! यह कैसे दुःख का विषय है ?"

"कैसा घोर अन्धकार है !"

"पर मेरा हृदय प्रकाशित है।"

"मेरे प्रभु ! इतने निकट होने पर भी मैं उस प्रकाश की एक किरण भी नहीं देखती।"

"मैं उसे संसार के प्राणिमात्र को दिखाने की बात ही सोच रहा हूँ।"

"इस स्तब्ध अन्धनिशा में ?"

"अन्धनिशा तो मानव-हृदय में ओत-प्रोत है। तुम समझती हो, जब सूर्योदय होगा तब वह छिन्न-भिन्न हो जायगी ?"

"मैं मूर्ख स्त्री और क्या सोचूँगी ?"

"नहीं गोपा, आत्म-प्रतारणा की आवश्यकता नहीं ; पर इस बात को तो सोचो। मानव-आत्मा न जाने कब से उसी प्रकार सो रही है, जैसे इस समय संसार, और वह उसी प्रकार अन्धकार में व्याप्त है, जैसे इस समय पृथ्वी। यह निद्रा और अन्धकार कुछ समय में दूर हो जायगा, उषा का उदय होगा, जगत सुन्दर हो जायगा, प्रकृति भाँति-भाँति के रङ्ग का श्रृङ्गार करेगी, आलोक से आकाश और भूलोक शोभायमान होगा, आह ! कैसी सुन्दर बात है, परन्तु मानव-हृदय का अन्धकार और सुषुप्ति तब भी दूर न होगी। यह अक्षय अन्धकार, यह चिर मोह-निद्रा मनुष्य पर शाप है। मनुष्य-जाति के इस दुर्भाग्य पर तुम्हें करुणा नहीं आती ?"

"और इस अनन्त मानव-समुदाय में अकेले आर्य-पुत्र जाग्रत हैं ?"

"प्रिये ! व्यंग्य क्यों करती हो ?"

"अच्छा, आर्यपुत्र ! इस अन्धकार में जाग्रत होकर किस सौभाग्य की आशा करते हैं ? इस अन्धकार में तो जाग्रत पुरुष की अपेक्षा सुख से सोए पुरुष ही अधिक भाग्यशाली हैं ?"

कुमार ने उत्तेजित होकर गोपा का हाथ पकड़ लिया, कहा—किन्तु, यदि उनका कभी प्रभात न हो तो ? उस निद्रा का कभी अवसान न हो तो ?

गोपा विचलित हुई, निरुत्तर हुई। वह पति के निकट बैठ कर कुछ सोचने लगी।

सिद्धार्थ ने कहा—प्रिये ! यदि मैं अपने हृदय के प्रकाश की रेखा से इस अन्धकार को छिन्न-भिन्न कर सकूँ ? जाग्रत होकर मानव-समाज सुन्दर आलोक देखे तो, गोपा ? क्या हमारा जीवन धन्य न होगा ?

"अवश्य।"—गोपा ने दृढ़ता से कुमार का हाथ पकड़ कर कहा।

"तब इसके लिए हृदय विदीर्ण करना पड़ेगा।"

"विदीर्ण ???"

सिद्धार्थ कुछ न बोले। दोनों महाप्राण आन्दोलित हो रहे थे। "हृदय विदीर्ण करना होगा ?" गोपा का माथा घूमने लगा। वह ज़ोर से कुमार का आलिङ्गन करके रोने लगी। वह बहुत कुछ कहना चाहती थी, पर कुछ कह न सकती थी ; वह बहुत दिन से एक आशङ्का को मन से दूर करने की चेष्टा कर रही थी, पर कर नहीं सकती थी। कुमार के भाव को वह कुछ समझ न सकी, पर 'हृदय विदीर्ण' होने की भावना वह सह न सकी—वह पति के वक्षस्थल पर गिर कर फूट-फूट कर रो उठी।

एक बार महाराज कुमार की अन्तर्हित प्रबुद्ध सत्ता फिर मूर्च्छित हुई। उन्होंने गोपा को गाढ़ आलिङ्गन करके बारम्बार उसका चुम्बन किया।

धीरे-धीरे दोनों प्राणी शयन-कक्ष की ओर चले गए।

६

"देखो प्रिये, वह क्या हो रहा है ?"—कुमार ने मुर्भा कर डाली पर झुके हुए एक पुष्प की ओर सङ्केत करके कहा।

गोपा ने देखा और वह आश्चर्य-चकित हो कुमार की तरफ़ देख कर बोली—आर्यपुत्र का अभिप्राय क्या है ?

"अभी कुछ देर पूर्व सूर्य की किरणों ने इस पुष्प को छुआ, यह खिल पड़ा। सूर्य तो अस्त हो रहा है, और यह मुर्भा रहा है; अब यह सूख कर झड़ जाएगा।" यह कह कर उन्होंने पत्नी की ओर देखा।

गोपा कुमार की मुख-मुद्रा को एकटक देख रही थी। कुमार ने फिर कहा—"गोपा प्रिये! मनुष्य का जीवन भी ऐसा ही है। उनकी दृष्टि गोपा के मुख से हट कर एक बार दोलायमान हुई और फिर वह दूर क्षितिज पर डूबते हुए सूर्य पर अटक गई। मुख पर कुछ हास्य की रेखा आई, पर वह गई नहीं। वे जड़वत वैसे ही बैठे रहे।

गोपा घबरा गई। उसने कहा—आर्यपुत्र अब और क्या विचार रहे हैं ?

कुमार ने चौंक कर कहा—ओह, कुछ भी तो नहीं, प्रिये! आज मैं नगर में गया था। वहाँ मैंने राजपथ पर एक पुरुष देखा, वह एक लाठी के सहारे बड़े कष्ट से चल रहा था, उसके नेत्र इतने विभ्रम थे कि उनकी अपेक्षा नेत्र न होते तो हानि न थी; दाँत सभी गिर गए थे, उससे उसका मुख तो विकृत हो ही गया था, वाणी भी अस्पष्ट हो गई थी, उसकी खाल काली होकर लटक गई थी, और हड्डियाँ चमक रहीं थीं, उसका अङ्ग-अङ्ग काँप रहा था। वह बड़े चाव से मेरी ओर देख रहा था, मैं उसके निकट गया। उसने काँपते-काँपते ऊपर हाथ उठा कर मेरा अभिवादन किया, और कहा—"कुमार! एक दिन मैं तुमसे भी अधिक सुन्दर था और एक दिन तुम भी ऐसे ही हो जाओगे।" मैंने सोच कर देखा, प्रिये! उसका कथन सत्य हो सकता है।

गोपा कुमार की ओर देखती रही; उसके हाठ काँप कर रह गए।

कुमार बोले—कुछ आगे चलने पर एक और हृदय-द्रावक दृश्य देखा। एक पुरुष को लोग उठा कर लिए जा रहे थे। मैंने उन्हें रोक कर पूछा—यह क्या है ? उन्होंने कहा—यह मर गया है। मैंने उसे देखा, वह न हिल सकता था, न बोल सकता था—उसमें प्राण नहीं था। वे उसे भस्म करने को ले जा रहे थे। एक ने कहा—अन्त में सभी को ऐसा होना पड़ेगा।

राजकुमार हठात उठ खड़े हुए। उन्होंने शून्य दृष्टि से आकाश की ओर देखा। उनके हृदय को मानो कोई ज़ोर से मन्थन कर रहा था। उन्होंने कातर कण्ठ से गुनगुना कर कहा—यह कैसी भयानक दशा है! राजा और रङ्क यहाँ विवश हैं! क्या इस दुःख से छूटने का कोई उपाय ही नहीं है? फिर ये सुख, राजप्रासाद, धन और अधिकार विडम्बना मात्र हैं? जब ये चिरस्थायी ही नहीं, जब उस अवश्यम्भावी अवस्था के प्रतिकार में ये समर्थ ही नहीं, तब ?? उन्होंने ज़ोर से पुकार कर कहा—गोपा प्रिये! तब ?

गोपा कुमार की मुख-मुद्रा और भावभङ्गी से डर गई। उसने त्रस्त स्वर में कहा—आर्यपुत्र, क्या सोच रहे हैं ?

"प्रिये! कोई गूढ़ वस्तु कहीं छिपी है ?"

"इस राजसम्पदा से, अधिकार सत्ता से भी अधिक ?"

"हाँ।"

"इस यौवन, सौन्दर्य और आनन्द से भी अधिक ?"

"हाँ।"

"आपकी इस चिर-किङ्करी से भी अधिक ?"

"ओह, गोपा प्रिये, ठहरो! वह गूढ़ वस्तु हमें प्राप्त करनी चाहिए।"

"और वह है कहाँ ?"

"मैं उसे ढूँढूँगा, वह मनुष्य मात्र के दुःख को दूर करने की तालिका होगी।" उनके होंठ फड़कने लगे, और नेत्र उन्मीलित हो गए!

गोपा एक बार कम्पित हुई। उसने कुमार का हाथ पकड़ कर उठाया और कहा—आर्यपुत्र! नगर-निरीक्षण तो आपने किया, अब मेरी सारिका का निरीक्षण भी

कीजिए। देखिए, यह आपकी तरह मेरा नाम लेकर पुकारना सीख गई है। आज आपको उस मयूर के जोड़े को स्वयं भोजन कराना होगा। इसके सिवा आज आप अन्धकार-निरीक्षण न कर सकेंगे? अभी से शयन-कक्ष में रहना होगा।

बहुत चेष्टा करने पर उसके होठों पर हास्य आया। कुमार ने अन्यमनस्क होकर कहा—अच्छा प्रिये! तुम्हारी ही बात रहे।

७

"पुत्र? हे भगवान! यह नया बन्धन और उत्पन्न हुआ! गोपा क्या कम थी? वह आनन्द और हास्य का मधुर अमृत एक क्षण भी मुझे नीरस नहीं रहने देना चाहता, परन्तु जो स्वभाव से नीरस है, वह सरस होगा कैसे? गोपा के प्रेम-पाश को तोड़ने में मैं कितना बल लगा चुका, वह टूटा नहीं, अब यह पुत्र? अरे! कैसा सुन्दर है यह, केवल एक बार देखने के लिए मैंने समस्त संयम नष्ट कर दिया। वह स्वर्ण की दीप्त कान्ति धारण करने वाला अर्द्धनिमीलित नेत्र, छोटा सा मुख, मानो मेरी ही एक सजीव छाया—मुझसे पृथक, परन्तु मेरे प्राणों की एक कोर! मैंने प्राण दिया और गोपा ने शरीर। गोपा के समान ही सुन्दर और प्रिय, कोमल और रुचिर। अरे! वह मेरा पुत्र है। हम दोनों के प्राण और शरीर जिस महा-योग में एक राशि पर आए, वह इन्द्रियातीत आनन्द का आदान-प्रदान जिस क्षण हुआ, उसकी ऐसी स्थायी स्मृति? गोपा! जादूगरनी, यह क्या किया? उस एक क्षण के करोड़वें हिस्से की आनन्द-लहर को तूने ऐसा स्थिर बना दिया? मैंने उसे गोद में उठाया। गोपा का वह मूक अनुरोध और वह अप्रतिभ उल्लास! गोपा के नेत्रों में मानो उसके प्राण ही आ गए थे। उसने उसे मेरी गोद में दिया और मेरे चरण चुम्बन किया—यह इतनी विनय क्यों? तब गोपा प्रिया अब मातृभाव में आप्लावित हुई? अच्छा ठहरो, उसके नेत्र कैसे थे? गोपा ने कहा, ठीक मेरे जैसे? अरे। कहीं मैंने ही तो जन्म नहीं ले लिया? नहीं तो उस अबोध बालक पर मेरी इतनी ममता क्यों होती? मेरा उसका परिचय कब का है?"

राजकुमार को कोमल शैया पर नींद न आई। चुप-चाप उठ कर उपवन में टहलने लगे। उनके विचारों में फिर उत्तेजना उत्पन्न होगई। वे पुत्र की बात को सोचते-सोचते चिन्ता में मग्न हो गए—ऐं! यह कैसा सुख, यह कैसा सौभाग्य, जिसमें निद्रा का भी नाश हो गया? सारा संसार तो सो रहा है। यही तो चिन्तनीय विषय है, जो सुख है वह भी दुःख का मूल है। कोई भी ऐसा मनुष्य नहीं जो मानव-जीवन की इस कठिन व्याधि का उपाय जानता हो।—राजकुमार एक जामुन के वृक्ष के नीचे बैठ कर जीवन, मरण और उत्पत्ति के विचार में लीन हो गए।

उस अभेद्य अन्धकार में मानो उनके दिव्य चक्षु खुल गए। उनसे उन्होंने देखा—संसार का सुख दुखदाई, मृत्यु अनिवार्य और भवितव्य है, पर यह जान कर भी लोग अज्ञान के अन्धकार में ही अपना जीवन व्यतीत करते हैं, और सत्य की खोज नहीं करते! कुमार का हृदय अगाध दया से भर गया।

हठात राजकुमार ने देखा, सम्मुख वृक्ष के नीचे एक गम्भीर महापुरुष खड़े हैं। कुमार ने पूछा—तुम कौन हो? और कहाँ से आते हो?

"मैं श्रमण हूँ, बुढ़ापे के दुःखों और रोगों की पीड़ा और मृत्यु के भय से मैं घर-द्वार का परित्याग करके निकला हूँ; मैं मुक्ति का अन्वेषक हूँ; क्योंकि संसार के सब पदार्थ नाश हो जाते हैं, केवल सत्य ही सदा साथ रहता है। प्रत्येक वस्तु बदलती रहती है, कोई पदार्थ स्थिर नहीं है। मैं अक्षय आनन्द को चाहता हूँ। मैंने संसार त्याग दिया है। मैं भिक्षा माँग कर खा लेता हूँ। मैंने इन्द्रियों को वश में कर लिया है, मैं अपने उद्देश्य में तत्पर हूँ।"

"मैं भी इन्द्रियों के विषयों की निस्सारता को अच्छी तरह समझ गया हूँ। मुझे भोग से घृणा हो गई है। मेरा जीवन मुझे शून्य दीखता है। क्या तुम कह सकते हो कि इस अशान्त जगत में कहीं शान्ति मिल सकती है?"

"जहाँ उष्णता है वहाँ शीतलता भी है। पर महान सुख के लिए महान परिश्रम भी करना होगा। पाप-विद्ध व्याकुल आत्मा को उस कल्याण-मार्ग का शोध करना चाहिए, जो निर्वाण की ओर जाय। निर्वाण-सरोवर में स्नान करने से सारे पाप धुल जाएँगे।"

"आह! तुम्हारा सुसमाचार शुभ है। मेरे पिता और पत्नी मुझे राजकार्य में लगाना चाहते हैं। वे घराने

की कीर्ति के इच्छुक हैं, वे कहते हैं—यह समय धर्मजीवी बनने के उपयुक्त नहीं।"

"याद रक्खो कुमार! धर्म-पालन के लिए, सत्य की खोज के लिए, परमानन्द की प्राप्ति के लिए, कोई समय अनुपयुक्त नहीं।"

"महाश्रमण! धर्मान्वेषण का समय आ गया, मैं उन सब बन्धनों को तोड़े डालता हूँ, जो धर्म-प्राप्ति में बाधक हैं।"

राजकुमार ने एक बार उच्च अट्टालिका की ओर देखा। श्रमण ने कहा—कुमार सिद्धार्थ! तुम्हारी जय हो! तुम महान हो! तुम तथागत हो! देखो, सत्य को पराकाष्ठा तक पहुँचाना। जिस प्रकार सूर्य सब ऋतुओं में स्थिर होकर अपने नियमित मार्ग पर चलता है, उसी प्रकार तुम भी सत्य-पथ पर अटल रहना। तुम 'बुद्ध' होगे, तुम लक्षावधि मनुष्यों की बुद्धि को शुद्ध करोगे, तुम जगत के पथ-प्रदर्शक होगे।

सिद्धार्थ ने देखा—महापुरुष यह कहते-कहते अन्तर्धान हो गए।

वे उठ खड़े हुए। उन्होंने कहा—मैंने सत्य का साक्षात कर लिया। मैं अब सङ्कल्प सिद्ध करूँगा। मैं सब बन्धनों को तोड़ूँगा। मैं बुद्ध-पद प्राप्त करूँगा।

वे धीरे-धीरे गम्भीर चिन्तन करते हुए अलिन्द की ओर लौटे।

८

माता और पुत्र सुख-नींद में बेसुध सो रहे थे। गोपा के अरुण अधर पर हास्य की रेखा फैल रही थी, और उनके बीच कुन्द-कली के समान दाँत चमक रहे थे। 'वह किस सुख-स्वप्न को देख रही है?'—कुमार क्लान्त-भाव से खड़े-खड़े यही सोचने लगे। गोपा का एक हाथ शिशु के वक्ष पर था। उस सुगन्धित कक्ष में शिशु का छोटा, किन्तु अति प्रतिभावान मुख दीप्त हो रहा था। सिद्धार्थ का हृदय भर आया। उन्होंने प्रण किया—मैं सङ्कल्प पर स्थिर रहूँगा। फिर भी उनके नेत्रों से अश्रुधारा बह चली। वे बोले—और यह शोकावेग कितना दुर्धर्ष है? इस धारा के वेग को रोकना कितना कठिन है? कुमार आगे बढ़ कर शय्या के पास घुटनों के बल बैठ गए। एक बार उन्होंने शिशु का मुँह चूमने का उपक्रम किया, पर जागने के भय से वे वैसे ही बैठे रहे। गोपा की सुख-निद्रा पर उनकी दृष्टि थी। अश्रु वेग से उमड़ रहे थे। अन्त में उन्होंने हृदय में वह साहस सञ्चित किया, जो पृथ्वी पर कभी किसी तरुण ने नहीं किया था। वे धीरे से उठे। उन्होंने दोनों हाथों की मुट्ठी बाँध कर आकाश में स्तब्ध तारागणों की ओर देखा, और फिर एक दृष्टि गोपा के स्निग्ध यौवन और शिशु के अज्ञात मोह पर डाली और चल दिए।

पृथ्वी पर अन्धकार छा रहा था। उन्होंने फाटक पर आकर देखा, चन्न उपस्थित है।

"चन्न, क्या तुम जाग्रत हो?"

"परम परमेश्वर महाभट्टारक पादीय युवराज × ×"

"चन्न, एक घोड़ा तो ले आओ।"

"जो आज्ञा।"

तारों के क्षीण प्रकाश में वह महान राजकुमार राज-पाट, सुख-भोग और ऐश्वर्य पर लात मार कर महान प्रकाश की खोज में जा रहा था।

* * *

"चन्न! बस, अब आवश्यकता नहीं। तुम घोड़ा लेकर राजधानी चले जाओ।"

"स्वामिन! मैं आपको प्राण रहते न छोड़ूँगा।"

"चन्न! लो, ये बहुमूल्य वस्त्र भी तुम ले जाओ। अब कहो—तुम्हारा स्वामी कौन है?"

"महायुवराज! यह सम्भव ही नहीं।"

"ठहरो।" युवराज ने तलवार से अपने सुन्दर केश-गुच्छ काट कर तलवार चन्न के सम्मुख रख कहा—तो इसे भी सँभालो।

चन्न धरती पर गिर कर रोने लगा। वह बोला—प्रभु! मैं कदापि-कदापि न जाऊँगा।

"चन्न! वत्स! हठ मत करो। शोक भी मत करो, आनन्दित हो। मैं सत्य की खोज में जा रहा हूँ। मैं जगत को आनन्द प्रदान करूँगा। जाओ वत्स! पिता जी और गोपा को धैर्य प्रदान करो।"

एक आन्तरिक तेज से दीप्तमान पुरुष की तरह सिद्धार्थ चल दिए। चन्न पछाड़ खाकर गिर पड़ा। सिद्धार्थ के नेत्र सत्य के प्रचण्ड उत्साह से देदीप्यमान हो रहे थे। उनका यौवन-सौन्दर्य उस पवित्र तेज में परिवर्तित हो गया था जो उनके श्रीमुख पर दृष्टिगोचर हो रहा था!

९

राजगृह महानगरी जनपूर्ण हो रही थी। प्रतापी विम्बिसार वहाँ के सम्राट थे। जब मध्याह्न काल होता—गृहस्थ भोजन कर चुकते—वीतरागी सिद्धार्थ भिक्षा-पात्र हाथ में लिए नगर की गलियों में भिक्षा माँगने निकलते। वह प्रभावान मुख-मण्डल, विनम्र गति, पृथ्वी पर झुके हुए नेत्र और ओष्ठ-सम्पुट से मृदु-ध्वनि में निकलने वाला 'कल्याण' शब्द नगरवासियों के लिए अपूर्व था। वे प्रत्येक घर से एक ग्रास भोजन ग्रहण करते थे, और बारह ग्रास लेकर नगर के बाहर चले जाते थे। जनपथ और राजपथ पर उनके पीछे भीड़ लगी रहती। बाल-वृद्ध उनके लिए मार्ग छोड़ देते, उनके भिक्षा-पात्र में ग्रास डाल कर कृतार्थ होते, और सोचते कोई महान मुनि नगर में आए हैं।

सम्राट विम्बिसार ने सुन कर गुप्तचरों द्वारा जाना कि शाक्य वंश का राजपुत्र राज-पाट त्याग वनवासी हुआ है। वह राजकीय वस्त्र पहन, स्वर्ण-मुकुट सिर पर धारण कर, अमात्यों के सहित उससे मिलने आया। मुनि सिद्धार्थ वृक्ष के नीचे गम्भीर मुख-मुद्रा किए बैठे थे। विम्बिसार ने प्रणाम कर कहा—आपके हाथ में राज्य-रश्मि शोभा देती है, भिक्षा-पात्र नहीं। आपका तारुण्य इस तपस्या के योग्य नहीं। श्रेष्ठ और ज्ञानी पुरुषों को शक्ति-सम्पन्न होना चाहिए। धर्म खोकर धनी होना उत्तम नहीं, पर धन, धर्म और बल को प्राप्त कर जो इन्हें दूरदर्शिता से भोग करे वह मेरा गुरू है।

मुनि सिद्धार्थ ने आँख उठा कर सम्राट को देखा और कहा—राजन! आप धार्मिक और विवेकी हैं, आपका कथन सत्य है; पर मैं सारे बन्धनों से पृथक हो चुका हूँ, क्योंकि मैं मोक्ष का जिज्ञासु हूँ। जिसे उस सच्चे ज्ञान की अभिलाषा है उसे उन सब बातों से विरक्त हो जाना चाहिए जो उसके चित्त को अपनी ओर खींचती हैं। उसके लिए काम, क्रोध, लोभ, मोह, अधिकार और वासनाओं का त्याग करना परम आवश्यक है। मैंने वैभव की असारता को समझ लिया है, और अब मैं अमृत के धोखे विष-पान नहीं करूँगा। सम्राट! आप मुझ पर करुणा करने का कष्ट न उठाइए। करुणा के पात्र वे हैं जो संसार की चिन्ता में दिन-रात व्याकुल रहते हैं; जिनके हृदय में न शान्ति है और न मन में एकाग्रता। हे राजन! कहिए तो एक राजा और भिक्षुक की मृतक देह में क्या अन्तर है?

सम्राट विम्बिसार ने बद्धाञ्जलि होकर प्रणाम किया और कहा—हे त्यागी! आप धन्य हैं! आपकी मनोकामना पूर्ण हो! परन्तु आप पूर्ण बुद्ध होने पर एक बार मुझे अपना शिष्य स्वीकार कर कृतार्थ अवश्य करें।

मुनि सिद्धार्थ ने सम्राट की प्रार्थना को स्वीकार किया और चल दिए।

१०

"हे विद्वानो! क्या आप ही प्रसिद्ध दार्शनिक और तत्ववेत्ता आराद और उदरक हैं? मैं आपसे आत्मा के विषय की जिज्ञासा करने आया हूँ?"

"हे मुनि! हम वही हैं। तुम्हें जो संशय हो, कहो।"

"मैं यह जानना चाहता हूँ कि आत्मा क्या है?"

"आत्मा वह है, जो देखता, चखता, सूँघता और छूता है; फिर भी वह न तुम्हारा शरीर है, न आँख, कान, नाक और न मुख। आत्मा वह है, जो त्वचा द्वारा छूता है, जिह्वा से रस लेता है, आँख से देखता, और कान से सुनता है।"

"हे विद्वानो! आत्मा की मुक्ति क्या है?"

"जिस प्रकार पक्षी पींजरे से छूट कर स्वतन्त्रता प्राप्त करता है, उसी प्रकार आत्मा सब बन्धनों और उपाधियों से छूटने पर मुक्त हो जाती है।"

"परन्तु क्या उष्णता अग्नि से भिन्न है? मनुष्य रूप, रस, वासना, संस्कार, बुद्धि, चित्त आदि का सङ्घात है; यही सङ्घात तो 'मैं' है; वही 'मैं' तो आत्मा है। तब वह भिन्न सत्ता कैसे हुई? और जब तक वह 'अहं' शेष है तब तक तुम्हारी वास्तविक मुक्ति कदापि नहीं हो सकती।"

"परन्तु मुनि! क्या तुम अपने चारों ओर कर्म-फल को नहीं देखते? वह कौन सी बात है, जिसने मनुष्यों के आचार, विचार, अधिकार, जाति और वैभव में भिन्नता उत्पन्न कर दी है? वह कर्म-फल ही तो है।"

"कर्मफल तो है ही, पर आत्मवाद का आधार क्या है? संसार में कोई काम, वस्तु, फल या विचार नहीं हो सकता, यदि उसके पूर्व उसका कारण विद्यमान न हो।

किसान जो बोवेगा, फ़सल पर वही काटेगा। परन्तु 'अहं' की भिन्न सत्ता और उसका शरीरोत्तर गमन, इसका प्रत्यक्ष प्रमाण क्या है? क्या मेरी व्यक्ति-विशेषता प्रवृत्ति और मन—दोनों का—सङ्घात नहीं है? क्या मेरे व्यक्ति-वैशिष्ट्य में शारीरिक और मानसिक दोनों शक्तियाँ सम्मिलित नहीं हैं? यदि किसी मनुष्य के अन्दर से भूख-प्यास, चलना-फिरना, रोना-हँसना आदि निकाल दिए जायँ तो फिर उसकी मनुष्यता की क्या सार्थकता रह गई? इन प्राकृतिक और दैहिक बातों के बिना मनुष्य यथार्थ में क्या है? जिस प्रकार कल का 'मैं' आज के 'मैं' का पूर्वज है, और कल के 'मैं' ने आज के 'मैं' में जन्म लिया है, एवं आज का 'मैं' कल के 'मैं' में फिर जन्म लेगा, उसी प्रकार पूर्व जन्मों का अनादि प्रवाह चल रहा है।"

"हे मुनि! तुम अभी मूर्ख हो।"

"हे विद्वानो! तुम मनन करो।"

कुमार सिद्धार्थ वहाँ से चल दिए। उस बिल्व-वन में पाँच तपस्वी कठोर तप कर रहे थे। मुनि सिद्धार्थ ने भी तप करना शुरू किया। छः वर्ष के कठोर तप से उनका शरीर सूख कर लकड़ी के समान हो गया, वे मृतप्राय हो रहे थे, परन्तु उन्होंने सोचा—खेद है कि इन उपवासों और व्रतों से मुझे कुछ भी शान्ति नहीं मिली। यह सब मिथ्या है। वे उठे, उन्होंने स्नान किया, परन्तु दुर्बलता के कारण गिर पड़े। गोप-कन्या नन्दा ने दया कर उन्हें खीर दी जिससे उनके शरीर में बल का सञ्चय हुआ। वे तपश्चर्या छोड़ कर धीरे-धीरे स्वस्थ होने लगे। अन्ततः वे वहाँ से भी चल दिए।

बोधि-वृक्ष निकट आ गया। मुनि ने उसे देखा। पृथ्वी कम्पायमान होने लगी। जगत में प्रकाश छा गया। मार—जो विषयों का पोषक, और मृत्यु का प्रेरक है, तथा सत्य का शत्रु है—आया। उसकी तीनों लुभावनी पुत्रियाँ अपनी राक्षसी सेना के साथ थीं। सम्मुख आए मार ने भयानक गर्जना की। मुनि बोधि-वृक्ष के नीचे शान्त बैठे रहे। उसकी तीनों पुत्रियों ने उन पर वाण फेंके, पर प्रबल जितेन्द्रिय के हृदय में कोई तामसी इच्छा न उत्पन्न हुई। तब समस्त दुष्ट आत्माओं ने उन पर एक साथ आक्रमण किया, पर नारकीय ज्वालाएँ सुगन्धित पवन के झोंकों में परिवर्तित हो गईं, वज्रपात ने कमल-पुष्प का रूप धारण कर लिया। मार पराजित होकर भागा। एक अलौकिक तेज दिशाओं में व्याप्त हो गया।

मुनि सिद्धार्थ ध्यान-मग्न थे। वे संसार की विपत्तियों, कष्टों और दुष्कर्मों के बुरे परिणामों को प्रत्यक्ष देख रहे थे। वे सोच रहे थे—संसार की यह कैसी विचित्र गति है! वे एकाएक बोल उठे—धर्म सत्य है, धर्म ही मनुष्यों को अज्ञान, पाप और दुःखों से बचाता है। जीवन विकास की बारह कड़ियाँ है, जिन्हें द्वादश निदान कहते हैं। सत्य चतुष्टय ये हैं—(१) दुःख (२) दुःख का कारण (३) दुःखों की समाप्ति, (४) अष्टाङ्ग मार्ग (जिन पर चलने से दुःखों का नाश होगा)। मुनि सिद्धार्थ इस सिद्धान्त को प्राप्त करके बुद्ध हो गए। वे बोले—धन्य है वह जिसने धर्म को समझ लिया! धन्य है वह जो किसी को हानि नहीं पहुँचाता! धन्य है वह जिसने पापों पर विजय प्राप्त की है! वही महापुरुष है—ज्ञानी है—बुद्ध है।

बुद्ध इन सिद्धान्तों की प्राप्ति से उदीयमान तेज से दिप रहे थे। वे शान्त और गम्भीर मुद्रा से बैठे थे। दो व्यक्तियों ने चरणों में सिर रख दिया।

"हे मनुष्यो! तुम्हारा कल्याण हो! तुम कौन हो?"

"हे प्रभु! मेरा नाम तपुस है और इसका मल्लिका; हम व्यापारी हैं। यह चावल की रोटी और शहद हमारे पास है; इसे ग्रहण कर कृतार्थ करें।"

"हे सज्जनो! मैंने तुम्हारा भोजन ग्रहण किया। बुद्ध पद प्राप्त होने पर यह मेरा प्रथम भोजन हुआ। हे धर्मात्माओ! तुम तथागत बुद्ध के प्रथम शिष्य बने। तथागत बुद्ध का कथन है—जगत का कोई अन्याय, अत्याचार, और पाप स्वार्थ से रहित नहीं। सा` दोषों का मूल स्वार्थी मन के अन्दर है। पाप न धरती में है, न आकाश में; न हवा में, न पानी में; न रात में, न दिन में; वह स्वार्थी मनुष्य के मन में है। ज्ञान तो तभी मिल सकता है जब स्वार्थ की निस्सारता और अस्थिरता का पूर्ण ज्ञान हो जाय। मनुष्य उच्च और आदर्श जीवन तभी प्राप्त कर सकता है, जब उसे यह निश्चय हो जाय कि स्वार्थ-त्याग के बिना कोई मनुष्य आत्मिक जीवन के पवित्र सुख को अनुभव नहीं कर सकता। यथार्थ सुख स्वार्थपरायणता और विषयभोग में नहीं है; कृत्रिमता और आडम्बर को दूर करने में है।

अपनी सुपुत्री सौभाग्यवती केशरबाई तथा पौत्री बचुबहिन सहित
जैन-महिला-रत्न स्वर्गीया श्रीमती मगनबाई जी ।

लाल बुझक्कड़
[लेखक—श्री० जी० पी० श्रीवास्तव,
बी० ए०, एल्-एल्० बी०]
श्री० श्रीवास्तव महोदय संसार के सबसे श्रेष्ठ हास्य-नाटककार फ़ान्स के 'मोलियर' (Moliere) की चुनी हुई रचनाओं का रसास्वादन हिन्दी-पाठकों को अनेक बार करा चुके हैं। प्रस्तुत नाटक मोलियर महोदय की चुनी हुई रचनाओं में से है। यह नाटक सर्व-प्रथम सन १६५३ या १६५५ ईस्वी में लॉयन (Lyons) नगर में, उसके बाद सन् १६५८ में फ़ान्स की राजधानी पेरिस में बादशाह के समक्ष खेला गया था और सारे विश्व ने इसकी भूरि-भूरि प्रशंसा की थी।
श्रीवास्तव महोदय ने जिस बाने में इसे हिन्दी-संसार में उपस्थित किया है, वह देखने योग्य है। हँसते-हँसते पेट न फूल जाय तो पुस्तक का दाम वापस !!! मूल्य २)
व्यवस्थापिका 'चाँद' कार्यालय, चन्द्रलोक, इलाहाबाद

इतना कह कर बुद्ध मौन हो गए। दोनों व्यापारियों ने चरणों में गिर कर कहा—हे प्रभु! हम बुद्ध की शरण हैं, हम बुद्ध के धर्म को ग्रहण करते हैं।

बुद्ध ने नेत्र उठा कर देखा, और दोनों हाथ ऊँचे करके कहा—कल्याण! कल्याण!!

११

मगध में हलचल मच गई थी। सभी की जिह्वा पर एक ही बात थी—शाक्य मुनि पतियों को बहका कर पत्नियों से पृथक करता है। वह वंशों का नाश करता है।

बुद्ध अपने प्रमुख शिष्यों सहित राजगृह में पधारे थे। भिक्षु जब नगर में निकलते, तब लोग कहते—देखें, अब किसकी बारी आती है!

शारिपुत्र मौद्गलायन, अश्वजित, आचार्य महाकश्यप, और उनके भ्राता, सभी भगवान बुद्ध के शिष्य हो गए थे। जो प्रख्यात विद्वान और तत्वदर्शी था, राजगृह का वह महाधनपति यशस भी बुद्ध की शरण जा चुका था, और उसके महाधनवान चारों मित्र, जो काशी में रहते थे, उसके अनुयायी बन चुके थे।

मगध के सम्राट बुद्ध के दर्शन को पधारे। सहस्त्रावधि मनुष्य उनके साथ थे। लाखों की सम्पदा भेंट को लाए थे। राजा के साथ उसके सभी मन्त्री और सेनानायक थे। उन्होंने देखा—जातिलों के आचार्य महाकश्यप के साथ भगवान बुद्ध बैठे हैं। सम्राट ने चकित होकर सोचा कि शाक्य मुनि ने क्या कश्यप को अपना आध्यात्मिक गुरु माना है या कश्यप गौतम का शिष्य हो गया है!

बुद्ध ने सम्राट के संशय को समझ कर कहा—कश्यप! तुमने कौन सा ज्ञान प्राप्त किया है, और वह कौन सी बात है, जिसने तुमको अग्नि-पूजा और कष्टदायक तपश्चर्या छोड़ने के लिए बाध्य किया है?

कश्यप ने कहा—अग्नि की उपासना से दुःखों और प्रपञ्चों के चक्र में पड़े रहने के अतिरिक्त और कोई लाभ नहीं हुआ। अब मैंने इसे त्याग दिया है। तपस्याओं और पशु के बलिदानों के स्थान में मैं सर्वोच्च निर्वाण की प्राप्ति में लग गया हूँ।

तब बुद्ध ने आँख उठा कर सम्राट की ओर देखा और कहा—जो अपने 'अहं' रूप को जानता है, और समझता है कि इन्द्रियाँ अपने-अपने कार्यों को किस प्रकार करती हैं, वह स्वार्थ और अहङ्कार के फेर में नहीं पड़ता और अभय शान्ति उपलब्ध करता है। संसार को 'मैं' का ख़्याल है। मेरा शरीर, मेरा धन, मेरा नाम, मेरा रूप, मेरा शत्रु, उसने मुझे गाली दी, उसने मुझे धोखा दिया, उसने मुझे बदनाम किया इत्यादि सङ्कल्प-विकल्प ही समस्त झूठे भयों और दुष्ट-भावों के उत्पादक हैं। कोई कहते हैं कि यह 'मैं' मृत्यु के पश्चात स्थिर रहता है। कोई कहते हैं, उसका अन्त हो जाता है, परन्तु वे दोनों भूल पर हैं। इन्द्रियों का पदार्थों के सन्निकर्ष से ज्ञान उत्पन्न होता है। उससे स्मृति का विकास होता है। जैसे सूर्य की शक्ति से शीशे में अव्यक्त अग्नि व्यक्त हो जाती है, उसी प्रकार इन्द्रियाँ और पदार्थों के मिलने से स्मृति आदि का क्रमशः विकास होता और चेतन शक्ति की भिन्न-भिन्न अवस्थाओं के बदलने से उस सत्ता का प्रादुर्भाव होता है, जिसे 'अहं' कहते हैं। बीज से अङ्कुर फूटता है, परन्तु अङ्कुर से बीज नहीं फूटता। दोनों एक नहीं हैं, किन्तु एक दूसरे से भिन्न भी नहीं हैं। इस प्रकार 'अहं' एक भ्रम है। 'मैं' क्षणिक है। वह क्षण-क्षण में बदलता है। जो इस तत्व को समझेगा वह काम, क्रोध, लोभ, मोह को क्षणिक परिणाम समझ, उन्हें दबाने की कोशिश करेगा। स्वार्थ की प्रबल प्रवृत्ति को रोको और फिर तुम मन की उस निश्चय अवस्था को प्राप्त करोगे जो पूर्ण शान्ति, परम पुरुषार्थ, और सत्य ज्ञान की दात्री है।

माता जिस प्रकार बच्चे के लिए प्रति क्षण आत्म-बलिदान करती है, उसी प्रकार सत्य-ज्ञाता विवेकी को शुद्ध हृदय से परहित की सदा कामना करनी चाहिए। यह भावना जितनी प्रौढ़ होगी, उतना ही निर्वाण पद निकट होगा। यही बौद्ध धर्म है।

बुद्ध जब यह उपदेश देकर शान्त हुए तब सम्राट ने नत-मस्तक होकर कहा—भगवन! जब मैं राजकुमार था, तब पाँच भावनाएँ मेरे मन में थीं; (१) मैं राजा होऊँ, वह पूरी हुई; (२) पवित्रात्मा बुद्ध मेरे ही शासन-काल में मेरे राज्य में पधारें, वह भी पूरी हुई; (३) मैं उनकी सेवा में उपस्थित होकर उनका सत्कार करूँ, यह भी पूर्ण हुई; (४) मैं भगवान का पवित्र उपदेश सुनूँ, यह भी पूरी हुई; (५) मैं भगवान के धर्म को समझ सकूँ, वह भी पूर्ण हुई। प्रभो! आपका सत्य महान है। आप उस

बात को स्थापित करते हैं, जो अब तक अस्त-व्यस्त रही है। आपने उसे व्यक्त किया, जो अब तक अव्यक्त था। आपने उन्हें मार्ग बताया, जो अब तक भटके थे। आप अन्धकार में पड़े हुओं के लिए दीपक जलाते हैं। आज मैं बुद्ध की शरण लेता हूँ। सङ्घ की शरण लेता हूँ।

बुद्ध ने कृपा-दृष्टि से सम्राट को देखा और समस्त उपस्थित मण्डल बुद्ध-धर्म में दीक्षित हो गया।

१२

कपिलवस्तु में उल्लास था। पिता का आतिथ्य स्वीकार करने भगवान बुद्ध ७ वर्ष बाद लौट रहे हैं। महाराज शुद्धोदन अपने मन्त्रिगण सहित स्वागत को आए। वे अपने पुत्र के तेज और सौन्दर्य को दूर से देख गद्गद हो गए। उन्होंने मन ही मन कहा—निस्सन्देह यह मेरा पुत्र है। कुमार सिद्धार्थ का ऐसा ही रूप-रङ्ग था। परन्तु यह महामुनि अब सिद्धार्थ नहीं रहा। वह बुद्ध है, पवित्रात्मा है, सत्य का स्वामी और मनुष्यों का शिक्षक है।

वे रथ से उतर पड़े और आनन्दाश्रु बहाते हुए बोले—आज ७ वर्ष बाद मैंने तुम्हें देखा है। क्या तुम जानते हो कि तुम्हें देखने की मुझे कितनी इच्छा थी?

प्रणाम करके बुद्ध पिता के सम्मुख बैठ गए। राजा के जी में आया कि उनका नाम लेकर पुकारें। पर साहस न हुआ। वे मानो मन ही मन कह रहे थे—पुत्र सिद्धार्थ! आ और पिता के पास पुत्र की भाँति ही रह। अन्त में उन्होंने कहा—मैं यह सारा राज-पाट तुम्हें सौंपना चाहता था; पर देखता हूँ, राज्य को तुम तुच्छ समझते हो।

बुद्ध ने कहा—पिता! आपका हृदय प्रेमपूर्ण है, पर आपका जितना प्रेम मुझ पर है, उतना ही यदि प्रजा पर भी हो तो आपको सिद्धार्थ से बढ़ कर पुत्र मिल सकते हैं। आप मेरे लिए मन से पुत्र-भाव निकाल डालिए। यदि आप अपने सम्मुख उस बुद्ध (ज्ञानी) को देखेंगे जो सत्य का शिक्षक और सदाचार का प्रचारक है तो आपको निर्वाण की शान्ति प्राप्त होगी। राजा पुत्र की यह वाणी सुन आह्लादित हो गए। वे आँसू भर कर कहने लगे—आश्चर्यजनक परिवर्तन है! इस परिवर्तन से हृदय को दुःख और व्याकुलता नहीं होती। पहले मैं शोकपूर्ण था, मानो मेरा हृदय फट जायगा, पर अब मैं प्रसन्न हूँ। तुमने जगत के लिए राज्य-सुख त्यागा। अच्छा, तुम संसार में अष्टाङ्ग मार्ग का प्रचार करो।

महाराज राजभवन में चले गए और बुद्ध एक कुञ्ज में ठहरे।

प्रातःकाल भगवान बुद्ध भिक्षा-पात्र लेकर नगर में भिक्षा के लिए चले। नगर में हाहाकार मच गया। रथ और हाथियों पर सवार होकर जो पुरुष रत्न बिखेरता था वह नङ्गे पैर घर-घर एक ग्रास अन्न माँगता है।

राजा ने कहा—वत्स बुद्ध! ऐसा न करो। मैं तुम्हारे भोजन का प्रबन्धकर दूँगा।

"पर यह हमारी धर्म-परिपाटी है।"

"पर तुम उस राजवंश के हो जिसने कभी भिक्षा नहीं माँगी।"

"मैं उस बुद्ध-वंश में हूँ, जो सदा भिक्षा-वृत्ति पर सन्तोष करता आया है।"

राजा निरुत्तर हो उन्हें राजमहल में ले आए। राजमन्त्रियों और अन्तःपुर की स्त्रियों ने बुद्ध की अर्चना की। बुद्ध ने पूछा—गोपा कहाँ है? वह क्यों नहीं आई?

एक दासी ने बद्धाञ्जलि होकर कहा—स्वामिन! वे कहती हैं, भगवान को स्वयं ही यहाँ आना चाहिए।

बुद्ध तत्क्षण उठ कर चल दिए। चार प्रमुख शिष्य उनके साथ थे। गोपा—आनन्द और प्रेम की मधुर लतिका गोपा—अपने सप्त वर्षीय पुत्र के साथ अपनी समस्त कटु स्मृतियों को कस कर छाती में छिपाए, उस महावीतरागी, अतीत प्रिय पति को धरती पर दृष्टि दिए अपने कक्ष में आती देख रही थी। द्वार के निकट पहुँच कर बुद्ध ने अपने प्रधान शिष्य शारिपुत्र मौद्गलायन से कहा—मैं तो मायापाश से मुक्त हुआ, पर यशोधरा अभी बद्ध है। उसने मुझे चिरकाल से नहीं देखा। वह वियोग से व्याकुल है। यदि मिलन-अभिलाषा अब भी पूर्ण न होगी, तो उसका हृदय फट जायगा। इसलिए मैं तुम्हें सावधान किए देता हूँ कि यदि वह मुझे छूना चाहे तो रोकना मत। शारिपुत्र मौद्गलायन ने विनम्र होकर कहा—जैसी भगवान की आज्ञा।

वह मलिन वस्त्र और धूल-धूसरित वेश, केश-विहीना यशोधरा, मूर्तिमती वियोग और विषाद की छाया, चुपचाप खड़ी एकटक देख रही थी। वह इस बात को भूल गई कि उसका पति अब जगद्गुरु और सत्य का अन्वे-

षक है। वह सम्मुख आते ही बुद्ध के पैर पकड़ फूट-फूट कर रोने लगी। जब वह प्रकृतिस्थ हुई, तब उसने श्वसुर को देखा और हट गई। राजा ने कहा—यह उसका मनोवेग नहीं है, हृदयस्थ प्रकृत प्रेम के श्रोत का प्रवाह है। जब उसे ज्ञात हुआ कि तुमने केश काट डाले हैं, तब उसने भी इसका अनुसरण किया। जब उसने सुना कि तुमने सभी भोजन त्याग दिए, तब इसने भी सब कुछ छोड़ दिया। यह मृत्पात्रों में खाती और भूमि पर सोती है। उससे बड़े-बड़े राजकुमारों ने विवाह की प्रार्थना की, तब उसने कहा—मेरे स्वामी का मुझ पर पूर्ण अधिकार है, और मैं अब भी उनके चरणों की दासी हूँ।

बुद्ध ने करुण एवं गम्भीर स्वर में कहा—हे कल्याण-बुद्धे! तुम धन्य हो! तुम बड़ी पुण्यात्मा हो! तुम्हारी पवित्रता, सुशीलता और भक्ति ने मुझे लाभ पहुँचाया है और मैं सत्य ज्ञान को उपलब्ध कर चुका हूँ। तुम्हारा हार्दिक दुःख और शोक अवर्णनीय है। परन्तु तुमने जो आध्यात्मिक सम्पत्ति अपने श्रेष्ठ और शुद्धाचरण से प्राप्त की है, वह तुम्हारे समस्त दुःखों को आनन्द में परिवर्तित कर देगी।

पुरुष-समाज

यशोधरा ने धैर्य धारण कर मन के वेग को रोका। अब वह समझ गई कि यह महापुरुष मेरा पति नहीं, जगत का महान धर्मगुरु है। उसने दृढ़ता से कहा—हे स्वामी! पिता की सम्पत्ति पर पुत्र का अधिकार होता है। यह आपका पुत्र है। आपके पास चार ख़ज़ाने हैं; उन्हें मैंने नहीं देखा; पर आप उन्हें अपने पुत्र को प्रदान करें। इतना कह कर उसने सप्तवर्षीय बालक को बुद्ध के चरणों में डाल दिया।

बुद्ध ने कहा—तुम्हारा मातृत्व धन्य है। तुम्हारे पुत्र को मैं ऐसा द्रव्य न दूँगा, जो नाशवान हो और जो उसे शोक या चिन्ता में डाले। मैं उसे चारो सत्य का भेद समझाऊँगा, यदि उसमें उन्हें धारण की योग्यता हुई।

बालक ने कहा—हे पिता! मैं योग्य बनूँगा।

"वत्स! तुम्हारा कल्याण हो! तुम मेरे साथ आओ।"

बालक को अग्रसर कर बुद्ध लौट गए। गोपा अपने उस एकमात्र हृदय-धन को भी गँवा कर ठगी सी खड़ी रह गई।

* * *

एशिया के महासाम्राज्य उस बुद्ध के सत्य-कर्म के सम्मुख झुके और वह महान धर्मात्मा पृथ्वी पर सदा के लिए अमर हो गया।

काश्मीर में एक मास

[श्री० ईश्वरचन्द्र जी शर्मा]

काश्मीर जाने का निश्चय अगले साल से ही कर रक्खा था। लाहौर में जब गर्मी अधिक पड़ने लगी तो—श्रावण के प्रारम्भ में—मैं वहाँ से रवाना हुआ। जम्बू से सीधे श्रीनगर जाने का मेरा विचार था, लेकिन जब मालूम हुआ कि अमरनाथ जाने के लिए, कितने ही यात्री पहलगाँव में ठहरे हुए हैं और दो दिन बाद वे यात्रा कर देंगे, तो यह मौक़ा छोड़ना उचित न जान पड़ा। अमरनाथ का रास्ता बड़ा दुर्गम है। इक्के-दुक्के आदमियों का वहाँ जाना बहुत आसान नहीं होगा।

जम्बू से पहलगाँव के लिए प्रस्थान किया। कुछ आगे बढ़ते ही ऊँचे-ऊँचे पर्वतों की श्रेणी दीख पड़ने लगी। मार्ग इन्हीं पर्वतों से होकर बना है। ऊपर नदी की श्वेत धारा की तरह ऊँची-नीची सड़क दूर तक चली गई है और नीचे ऊबड़-खाबड़ पर्वत-श्रेणी अपना गर्वोन्नत मस्तक उठाए न जाने किस अतीत काल से खड़ी है।

जम्बू से चल कर हमारी मोटर ऊधमपुर पहुँची। यहाँ भोजन आदि की व्यवस्था हुई। यहाँ का जीवन बड़ा सुन्दर मालूम पड़ा। यहाँ के स्त्री-पुरुष और बच्चे सभी स्वस्थ थे, सुन्दर थे। खाने-पीने की सुविधा भी काफ़ी थी। सभी चीज़ें साफ़-सुथरी और शुद्ध मिल जाती थीं। हम लोग यहाँ भोजन आदि से निवृत्त हुए तो मोटर फिर आगे बढ़ी।

बटोत होकर हमारी मोटर रामबन पहुँची। यहाँ पहुँचते-पहुँचते अँधेरा हो गया था, अतः रात यहीं बिताई गई।

दूसरे दिन बहुत सवेरे मोटर चल दी। रास्ते के अनेक पड़ावों को छोड़ते हुए हम लोग अनन्तनाग पहुँचे। मोटर यहाँ से श्रीनगर को रवाना हुई। मोटर छोड़ कर बेर डूबते-डूबते हम लोग पहलगाँव पहुँचे।

पहलगाँव

यह स्थान एक लम्बे-चौड़े मैदान में है, जिसे चारों ओर से ऊँचे-ऊँचे पहाड़ घेरे हुए हैं। पास ही लिदर नाम की नदी बहती है। वह कहीं शिलाओं से टकरा कर उछलती और कहीं वेग से गिरती हुई किसी अतल-तल में जाकर वज्र-गम्भीर ध्वनि करती है। पहाड़ों के शरीर देवदारु के लम्बे-लम्बे वृक्षों से घिरे हुए हैं। लिदर की शीतलता से सनी हुई मृदु-मन्द वायु देवदारु के वृक्षों को धीरे-धीरे झुलाती है। गर्मी के दिनों में प्रायः तीन-चार हज़ार आदमी बाहर से आकर यहाँ बसते हैं। मकान यहाँ बहुत थोड़े हैं, इससे किराए पर तम्बू लेकर लोग दूर-दूर तक यहाँ डेरा डाल लेते हैं। उस समय यहाँ सब तरह की आवश्यक चीज़ें यथेष्ट परिमाण में मिल सकती हैं। पहले तो यहाँ मकान बिलकुल ही नहीं थे; लेकिन कुछ समय हुआ—यात्रियों को यहाँ ठहरते देख कर—लकड़ी के कुछ मकान बनवा लिए गए हैं। इन मकानों का किराया एक से पाँच रुपए रोज़ तक है। यहाँ का जल-वायु स्वास्थ्य के लिए बहुत हितकर है।

सूर्यास्त के समय पर्वत के शिखरों पर गिरती हुई सूर्य की म्लान और पीली किरनें एक अपूर्व कान्ति धारण कर लेती हैं। सूर्य-किरनों की चमक नष्ट हो जाने के बाद भी उन गिरि-शिखरों पर से आँखें नहीं हटतीं। उसके बाद रात्रि धीरे-धीरे सारे संसार पर अन्धकार की काली चादर फैला देती है। तारों के प्रकाशित होते ही सारा पर्वत-प्रदेश उनके झिलमिल प्रकाश से चमक उठता है। लिदर की चञ्चल-चपल तरङ्गों में पड़ कर चन्द्रमा की स्निग्ध ज्योत्स्ना चाँदी की तरह चमचमा उठती है। वृक्ष के पत्तों के हिलने से चन्द्रमा की चितकबरी किरनें धरित्री पर टहलने लगती हैं। नदी और पर्वत, दोनों एक-दूसरे को देख कर मुस्करा पड़ते हैं।

पहलगाँव से चल कर हम लोग चन्दनबाड़ी पहुँचे। यह स्थान पहलगाँव से केवल ६ मील की दूरी पर है,

पहलगाँव का एक दृश्य

किन्तु चढ़ाई होने के कारण यहाँ पहुँचने में काफ़ी देर लगी। चन्दनबाड़ी तक की चढ़ाई में साधारणतः घबराहट नहीं होती, परन्तु आगे की चढ़ाई में साँस फूलने लगती है। दो मील ऊँची 'पिस्सू घाटी' पर चढ़ने में तो बड़े-बड़े महाप्राण भी हिम्मत हार बैठते हैं। इस घाटी पर चढ़ते समय ऐसा जी होता है कि गरुड़-वेग से उड़ कर शिखर पर पहुँच जाऊँ।

उस दिन हमारे साथ साठ-सत्तर बरस की दो-तीन बुढ़िया भी इसी घाटी पर चढ़ रही थीं। न जाने उनमें कितना बल आ गया था। मन ही मन मैंने पूछा—क्या श्रद्धा और विश्वास में इतना बल है?

घाटी पार करके हम लोग थोड़ी देर तक समतल भूमि पर बैठे; फिर आगे चल दिए। चढ़ाई देखते ही हिम्मत टूट जाती थी। जी होता कि चढ़ाई के बदले ढालुवाँ मार्ग मिलता तो अच्छा होता। अस्तु—

हम लोग आगे बढ़ते गए। बीच-बीच में शीतल वायु का एक आध झोंका आकर मन-प्राण को प्रफुल्ल कर देता था। आगे चल कर एक तालाब मिला। हम लोगों ने जी भर कर जल पिया और स्नान किया। यह तालाब 'शेषनाग' के नाम से मशहूर है। इसका पानी पीने पर मालूम पड़ने लगा मानो शरीर के रोएँ-रोएँ की थकावट और गर्मी दूर हो गई। एक ओर शिलाओं पर गिर कर इसका जल मथे हुए दूध की तरह उज्ज्वल और फेनिल हो रहा था तथा दूसरी ओर ऊँचे पर्वतों से गिरने वाले निर्झर अपने अविरत झर-झर प्रवाह से उस पार्वत्य प्रदेश को मुखरित कर रहे थे।

संस्कृत कवि कल्हण कहते हैं कि इसे सुश्रव नामक नाग ने बनाया था। वे अपनी राजतरङ्गिणी में लिखते हैं :—

दुग्धाब्धि धवलं तेन सरो दूरगिरौकृतम्।
अमरेश्वर यात्रायां जनैरद्यापि दृश्यते॥

एक शेषसर ही नहीं, किन्तु 'नीलमत पुराण' के अनुसार कई जलाशय हैं जो भिन्न-भिन्न नागों के बनाए हुए हैं।

अमरनाथ के यात्रियों से यहाँ जो कुछ आय होती है, वह पहलगाँव के पास, बटकट नामक गाँव में रहने वाले एक मुसलमान परिवार को मिलती है। इसके सम्बन्ध में कहा जाता है कि आज से ७० वर्ष पहले तक, जब हिन्दू इस स्थान को भूले हुए थे, तब इसी परिवार के

शालिमार बाग़

किसी व्यक्ति ने इसे ढूँढ़ निकाला था। इसीसे पुरस्कार-स्वरूप अब तक उसकी आय का कुछ हिस्सा उस परिवार को मिला करता है। न जाने यह बात कहाँ तक ठीक है।

अगले दिन शेषनाग से ग्यारह मील चल कर पञ्चतरणी पहुँचे। यहाँ पाँच धाराएँ बहती हैं और उनका जल अत्यन्त शीतल है। उनके जल में हाथ डालने से मालूम होता है मानो हाथ जम कर बर्फ़ हो जायगा; लेकिन कितने पुण्याभिलाषी श्रद्धालु जीव इन पाँचों ही धाराओं में स्नान करते हैं। यहाँ भी पर्वतों की चोटियों पर बर्फ़ जमी हुई थी। सूर्य की किरणें उस पर पड़ कर जब चमक उठती थीं, उस समय उनका सौन्दर्य देखने ही लायक़ होता था। पञ्चतरणी का संस्कृत नाम पञ्चतरङ्गिणी है।

यहाँ से अमरनाथ की गुफा पाँच मील है। लेकिन चढ़ाई इतनी कठिन है कि इन पाँच मीलों से ही लोगों की आत्मा काँप उठती है। यहाँ की हवा ऐसी है जो इस यात्रा को बहुत सरल बना देती है। शीतल हवा के झोंके मनुष्यों में जान डाल दिया करते हैं। हम लोग कुछ उतर कर आगे बढ़े तो चारों ओर बर्फ़ ही बर्फ़ दीख पड़ी। यहाँ से कुछ दूर और चल कर चढ़ाई शुरू होती है और लोग गुफा में जा पहुँचते हैं। विशाल और ऊँची गुफा में बर्फ़ से ढके हुए शिवलिङ्ग के दर्शन होते हैं।

गुफा की बाईं ओर एक झरना है। दर्शन से पहले इस झरना में स्नान करना पड़ता है। निरन्तर जल गिरते रहने के कारण नीचे के पत्थर सफ़ेद भस्म-राशि में परिणत हो गए हैं। स्नान करके पत्थर के इसी भस्म का तिलक लगाया जाता है। यहाँ सर्दी योंही बहुत ज़्यादा पड़ती है, उस पर निर्झर का स्नान! हेमन्त भी हेमन्त हो जाता है!

झरने के पास हम लोग देर तक बैठे रहे। जिधर ही दृष्टि जाती थी, उसी तरफ़ मोहक और आकर्षक दृश्य देख पड़ता था। थोड़ी देर में बादल घिर आए। बादलों के कुछ टुकड़े शिखरों पर मँडरा रहे थे, कुछ मध्य में लटक रहे थे और कुछ पैरों के पास झूम रहे थे। पिछले वर्ष वर्षा के कारण अनेक यात्री बड़ी कठिनता से यहाँ की
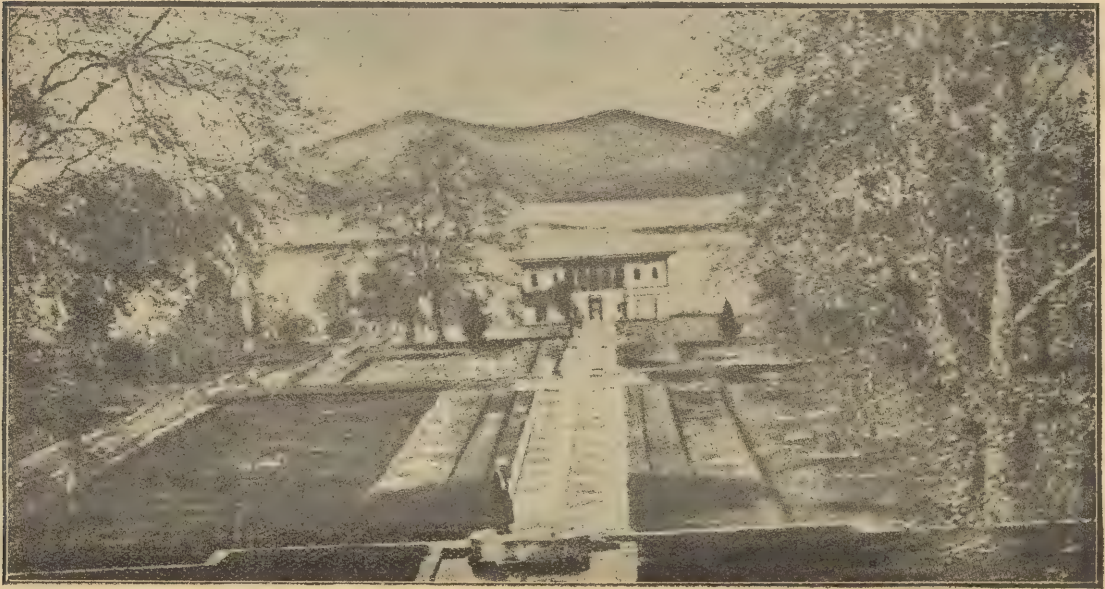
डल झील से निशात बाग़ का दृश्य

हिम-शिलाओं को पार कर सके थे। इसलिए हम लोग शीघ्र ही झरने के किनारे-किनारे नीचे उतरने लगे। क्रम से बूँदा-बाँदी भी होने लगी, लेकिन बादल ठहरे नहीं, देखते ही देखते वे आसमान में अदृश्य हो गए। आते समय जो उतार हमारी थकावट दूर करता था, लौटते समय वही बड़ा कष्टकर प्रतीत होने लगा, लेकिन चढ़ाई साधारण थी, विशेष तकलीफ़ नहीं हुई। हम लोग पर्वत की तलहटी में चले जा रहे थे और पास ही मन्थर गति से बहने वाले झरनों का मधुर झर-झर स्वर सुन पड़ता था। यह सब देख-सुन कर वह स्थान छोड़ने का जी न होता था।

दूसरे दिन हम लोग पहलगाँव के मैदान से वापस आ गए। पहलगाँव के आगे और दूसरी कोई बस्ती नहीं है। शायद अधिक बर्फ़ गिरने के कारण ही लोग यहाँ बस नहीं सकते। इस स्थान के आस-पास रहने वाले मुसलमान हैं और वे गर्मी में भी स्नान नहीं करते। जाड़ों का अभ्यास उन्हें गर्मी में भी नहीं नहाने देता। गाँव के घरों में चारों ओर बड़ी गन्दगी फैली रहती है। बिना ख़र्च के साधारण परिश्रम से ही सफ़ाई हो सकती है, लेकिन लोग ध्यान नहीं देते। खुली वायु और शुद्ध जल ही इनकी रक्षा करते हैं, नहीं तो न जाने यहाँ के लोग कब के चल बसे होते! जो यात्री यहाँ स्वास्थ्य सुधारने के लिए आते हैं, बहुधा वे भी सफ़ाई का ध्यान नहीं रखते। यहाँ के निवासी अशिक्षित और दरिद्र हैं, किन्तु जो लोग शिक्षित और धनी हैं, वे भी न जाने क्यों सफ़ाई की ओर कुछ ध्यान नहीं देते। वे लोग दूर न जाकर लिदर नदी के तट पर ही शौच जाते और उसी के जल से शुद्ध होते हैं। लोटा आदि साथ ले जाने का अभ्यास प्रायः इन्हें नहीं होता और जो लोग इसका विचार रखते हैं, ये 'आडम्बरी' कह कर उनकी हँसी उड़ाते हैं। इन सारी अव्यवस्थाओं से नदी का तट बड़ा गन्दा रहता है और वहाँ सुबह-शाम टहलने अथवा बैठने का कोई स्थान नहीं रह जाता, और इस प्रकार की गन्दगी धीरे-धीरे वहाँ के जल-वायु को दूषित बनाती और अस्वास्थ्यकर हो जाती है।

मटन

दो दिन पहलगाँव में रह कर हम मोटर से मटन पहुँचे। साधारणतः यह स्थान अच्छा है और हिन्दुओं का तीर्थस्थान माना जाता है। यहाँ एक पवित्र जलकुण्ड है,

डल-दरवाज़ा, श्रीनगर

जहाँ यात्री स्नान और श्राद्ध आदि करते हैं। काश्मीर में पग-पग पर झीलें, नहरें, झरने और कुण्ड हैं। हरिद्वार आदि तीर्थस्थानों की तरह यहाँ भी पण्डे यात्रियों के सात पुश्त का नाम सुनाने को तैयार बैठे रहते हैं। बही में नाम लिख लेने भर का ही इनका पाण्डित्य होता है।

यहाँ से दो मील दूर 'गौतमनाग' है। इस जल-स्रोत की निर्मल धारा मकई के खेतों और बाग़ों में होकर बहती है। मार्ग में दूर तक मकई के हरे-भरे खेत लहराते हैं। गाँवों में प्रत्येक घर के साथ एक-एक फुलवारी होती है। इधर अख़रोट, सेब और बई के वृक्ष बहुतायत से हैं, फलों से लदे हुए वे बड़े सुन्दर दीख पड़ते हैं।

मटन से दो मील दूर 'मार्तण्ड-मन्दिर' है, यह ऊँची जगह पर है। मटन का ही संस्कृत नाम लोग मार्तण्ड बताते हैं। कल्हण के मतानुसार इस मन्दिर और नगर को परम पराक्रमी नृपति ललितादित्य (ई० स० ६९९—७३५) ने बनवाया था। कल्हण ने लिखा है :—

> सोऽखण्डिताश्मप्राकारं प्रासादान्तर्व्यधत्त च।
> मार्तण्डस्याद्भुतं दाता द्राक्षास्फीतं च पत्तनम्।

कहा जाता है कि पहले यह मन्दिर भूमि के अन्दर दबा हुआ था और कुछ ही वर्ष हुए, खोद कर निकाला गया है। इसके चारों ओर पत्थर की दीवारें हैं जो अब टूट-फूट गई हैं। दीवारों पर अनेक देवताओं की मूर्तियाँ हैं, जिनमें प्रायः सभी विकृत हो गई हैं।

वहाँ के सम्बन्ध में विशेष रूप से जानने का कोई उपाय नहीं है। केवल मूक मूर्तियाँ, सङ्केत-मात्र से अपना थोड़ा-बहुत भूला हुआ इतिहास व्यक्त किया करती हैं।

मटन से हम लोग अनन्तनाग आए। यहाँ एक सुन्दर जल-कुण्ड है, जिसके नाम से यह स्थान प्रसिद्ध हुआ है।

इच्छाबल

आठ-दस आने में इच्छाबल के लिए मोटरें और ताँगे मिल जाते हैं। पर्वतों के निम्नभाग से निकले हुए जल को बाँध कर यहाँ एक कुण्ड बनाया गया है। इसके बीच में फ़ौवारा लगा हुआ है, जो बड़ा सुन्दर मालूम पड़ता है। पास के पर्वतों पर हरे-हरे वृक्ष-समूह लहराया करते हैं। एक ओर रङ्ग-विरङ्गी मछलियाँ पाल रक्खी गई हैं। इन्हें रेशम के कीड़ों का चूर्ण खिलाते हैं। इसके पास बसा हुआ गाँव सर के नाम से मशहूर है।

मार्तण्ड मन्दिर के भग्न-प्राचीर

इच्छाबल से हम लोग श्रीनगर के लिए चले। मार्ग में, अनन्तनाग से सोलह-सत्रह मील की दूरी पर 'अवन्तिपुर' है। इसे राजा अवन्ति वर्मा ने बनवाया था। दरिद्रता के कारण अब इस नगर की शोभा नष्ट हो चुकी है। यहाँ कई प्राचीन भग्नावशेष निकले हैं। एक मन्दिर भी भूमि खोद कर निकाला गया है जो बिलकुल टूटा-फूटा और बहुत पुराना है।

यहाँ से श्रीनगर सोलह-सत्रह मील की दूरी पर है। कल्हण इसे अशोक का बसाया हुआ बताते हैं। कहते हैं कि उस समय इस नगर में छियानबे लाख घर थे। लेकिन यह बात तो अतिशयोक्ति की पराकाष्ठा ही जान पड़ती है।

अब भी यह नगर काफ़ी फैला हुआ है। एक दिन मैं शालिमार और निशात बाग़ देखने की इच्छा से नाव पर सवार हुआ। वितस्ता नदी के दोनों तट पर श्रीनगर बसा हुआ है। वितस्ता से चल कर नाव जब डल में पहुँची तो दोनों किनारों पर उगे हुए सेव और बई के वृक्ष तथा दूर-दूर तक फैली हुई लहलहाती हरियाली देख कर तबीयत ख़ुश हो गई। डल झील मीलों लम्बी है। सन्ध्या को इसकी रौनक़ ख़ूब बढ़ जाती है। बाहर से आए हुए यात्री और यहाँ के निवासी सभी जल-क्रीड़ा करने के लिए यहाँ आते हैं और चाँदनी रात में बड़ी रात तक यहाँ चहल-पहल मची रहती है।

धीरे-धीरे नाव शालिमार बाग़ में आ लगी। रविवार के कारण वहाँ काफ़ी भीड़ थी। अनेक फलों के वृक्ष और फूलों की क्यारियाँ यहाँ की शोभा बढ़ा रही थीं। यह बाग़ जहाँगीर का बनवाया हुआ है। उन दिनों के विलास-वैभव की अब यही कहानियाँ रह गई हैं।

निशात बाग़ भी बड़ा मोहक है। इसे आसफ़ख़ाँ ने बनवाया था। इन स्थानों में मोटर द्वारा भी आया जा सकता है।

गुलमर्ग

श्रीनगर से यहाँ का किराया आठ-दस आना है। प्रायः यूरोपियन ही यहाँ अधिक रहते हैं। रहने के लिए पक्के सुन्दर मकान, खेलने के लिए लम्बे-चौड़े मैदान, घूमने के लिए पगडण्डियाँ, खाने-पीने के लिए दुकानें, सब आवश्यक वस्तुओं का प्रबन्ध यहाँ है। यात्रियों के ठहरने के लिए सिक्खों की एक धर्मशाला और होटल है। महादेव जी का एक छोटा सा मन्दिर भी है। यहाँ बड़ी ठण्ढक है। पहाड़ियों पर चमकता हुआ बर्फ़ और उन्नत

अवन्तिपुर के मन्दिर का भग्नावशेष

चीड़ के वृक्षों से सुगन्धित घने जङ्गल, दोनों की यहाँ अपूर्व शोभा है। परन्तु यहाँ के लोग बड़े दुःखी हैं। स्वर्ग-भूमि में रह कर भी यहाँ के लोग उत्कृष्ट सुखों से वञ्चित रहते हैं और ये सात-समुद्र पार के गोरे चमड़े वाले निश्चिन्त होकर खाते-पीते और अपने अभिमान में भूले रहते हैं। काश्मीर ही क्यों, सारे देश की यही दशा है।

श्रीनगर में बाढ़

एक दिन घने काले बादल चारों ओर घिर आए। धीरे-धीरे वर्षा होने लगी और निरन्तर तीन-चार दिन तक होती रही। वितस्ता का जल बढ़ने लगा। लोग शङ्का कर रहे थे कि कहीं शहर में पानी न आ जाय। अन्त में २९ अगस्त को बाढ़ आ ही गई। झेलम के तटवर्ती घरों से होकर पानी शहर में घुसने लगा। तट के कई मकानों में जल वेग से बहने लगा। बाढ़ से बचने के लिए एक फ़्लड-चैनल बनाई गई है, वह भी लगभग पूरी भर गई थी। अभी पानी आस-पास के मैदानों में फैल रहा था; पर पानी को बढ़ते देख कर शहर के दूर-दूर के मकानों में भी पानी भर जाने का डर होता था। शहर भर के लोग बाहर निकल कर वितस्ता बाज़ार और मैदानों को देख रहे थे। शहर से दूर, बाँध तोड़ दिया गया, तब जाकर रक्षा हुई। जम्बू के मार्ग के कई ग्रामों को बहुत हानि उठानी पड़ी। बाँध के टूट जाने से दूर तक मीलों लम्बे खेत पानी में डूब गए। दरिद्र किसानों पर दुःख का पहाड़ टूट पड़ा। खेतों में शिकारे चलने लगे। वर्षा के थम जाने पर दो दिन बाद कहीं पानी उतरा।

काश्मीर में जल-विप्लव प्राचीन काल से होते आए हैं। अनेक नद-नदी और तालाबों के कारण ऐसे ही यह देश जल से घिरा हुआ है; इसलिए पहाड़ों पर जल बरसते ही वितस्ता में खलबली मच जाती है। पहले सारी काश्मीर-भूमि जलमयी थी, कश्यप ने पानी सोख कर यह भूमि प्रकट की थी। जल-विप्लवों के कारण यहाँ खेती कम होती थी। राजा ललितादित्य के उद्योग से कुछ पानी बाहर हो गया था, पर पीछे राजाओं की अयोग्यता के कारण फिर बाढ़ें आने लगीं। नवम शताब्दी में अवन्तिवर्मा के राज्य में सुय्य नामक विद्वान ने वितस्ता के नए मार्ग बना कर पानी का उपद्रव दूर किया था। कल्हण ने लिखा है—उसने अपनी इच्छानुसार नदियों को इस प्रकार चलाया, जिस प्रकार मन्त्र जानने वाला नागिनियों को चलाता है। सुय्य के प्रभाव से अनेक नए ग्राम बन गए। जो उपकार धर्मात्मा सुय्य ने काश्मीर में

किया है, वह न कश्यप ने किया है और न बलराम ने। भूमि का जल से उद्धार, ब्राह्मणों को दान, पत्थरों से सेतुबन्ध और कालिय का दमन, ये सत्कर्म विष्णु ने चार जन्मों में किए, पर पुण्यराशि सुय्य ने यह सब एक ही जन्म में कर लिया। यही भाव नीचे के श्लोक में दर्शाया गया है :—

न कश्यपेनोपकृतं न यत्संकर्षणेनवा।
हेलया मण्डलेऽमुष्मिन्स्त्सुय्येन सुकर्मणा॥
भूमेर्जलादुद्धरणं द्विजक्षेत्रे तथार्पणम्।
सेतुबन्धोऽश्मभिस्तोये दमनं कालियस्यच॥
चतुर्षु सिद्धमिति यद्विष्णोः सत्कर्म जन्म सु।
सुय्यस्य तत्पुण्यराशेरेकस्मिन्नेव जन्मनि॥

वर्तमान काश्मीर-नरेश ने फ़्लडचैनल की रचना कराई है। इससे भी बहुत लाभ हुआ है। किन्तु ग्रामों की रक्षा के लिए भी कुछ प्रबन्ध होना चाहिए। ग्रामवासियों की जीविका खेती ही है। यदि बाढ़ में खेती नष्ट हो जाय तो उनके कष्टों का पार नहीं रहता।

पुराना और नया काश्मीर

शताब्दियों तक काश्मीर का शासन वहीं के राजा करते रहे। प्राचीन राजा कई बौद्ध थे और कई शैव। अशोक, कनिष्क आदि के शासन-काल में बौद्ध मत अत्यन्त प्रबल था। बौद्ध विद्वानों के तर्क ने अन्य मतों का खण्डन करके लोगों को यज्ञादि से विमुख कर दिया था। उस समय बौद्ध भिक्षुओं के सैकड़ों विहार थे जिनमें बौद्ध सिद्धान्तों की शिक्षा दी जाती थी। जलौक, दामोदर आदि नृपति शिव-भक्त थे। राज-कृपा से सुख पाकर उस समय बौद्ध भिक्षु संयम छोड़ चुके थे। किसी श्रमण ने नर नामक राजा की रानी को उड़ा लिया था। इससे क्रुद्ध होकर राजा ने हज़ारों विहार जलवा दिए। जो ग्राम विहारों की सम्पत्ति थे वे सब ब्राह्मणों को दे दिए गए। इसके बाद पुण्यात्मा मेघवाहन के राज्य में बौद्ध धर्म को फिर से जीवन मिला। बौद्ध धर्म की जितनी उन्नति हुई वह उसी काल में। अन्य राजा शैव थे, उनसे बौद्धों को सहायता नहीं मिली। गोपादित्य, गोकर्ण, तुञ्जीन, प्रवरसेन, मातृगुप्त, नरेन्द्रादित्य, रणादित्य आदि ने अनेक शिव-मन्दिर बनवाए। रानियों और मन्त्रियों आदि के बनवाए मन्दिरों की तो संख्या ही नहीं हो सकती। अनेकों के शासन में विद्या का बहुत प्रचार हुआ। कई नरेश शास्त्रों के अच्छे पण्डित थे। वसुनन्द ने कामशास्त्र की रचना की। तुञ्जीन के काल में चन्दक नाम महाकवि था। मातृगुप्त स्वयं सरस कविता करता था। कहते हैं कि जरावीड ने देश-देशान्तरों से विद्वानों को इकट्ठा करके अन्य स्थानों में विद्वानों का अकाल कर दिया। भट्ट उद्भट, जिसका अलङ्कार-शास्त्र में स्वतन्त्र मत है, कुट्टनी मत का

इच्छाबल बाग़

कर्ता दामोदर गुप्त, मनोरथा, शङ्खदत्त, चटक, सन्धिमान, वामन आदि विद्यानिधान पण्डित उसी समय हुए। अवन्तिवर्मा भी विद्वानों का आदर करता था। मुक्ताकण, शिवस्वामी, आनन्दवर्धनाचार्य और 'हरविजय' का कर्ता रत्नाकर उस काल के प्रसिद्ध महाकवि थे। अनन्तदेव के समय में अनेक काव्यों का कर्ता क्षेमेन्द्र विख्यात था। जयसिंह के राज्यकाल में कल्हण था। इसी काल के महाकवि मङ्खक ने 'श्रीकण्ठचरित्र' के पचीसवें

गुलमर्ग का क्लब

सर्ग में समसामयिक नाना शास्त्रों के विलक्षण पण्डितों का उल्लेख किया है। कवि और काव्य-विवेचक इस प्रकार के हुए हैं कि उनके ग्रन्थ अब तक सहृदयों से आदर पाते हैं। काश्मीर साक्षात कविता है। वहाँ रह कर हृदय अपने आप ही भावों के आवेग में आन्दोलित होने लगता है। रसमय काव्य की रचना वहीं हो सकती थी। वहाँ के विद्वानों ने दर्शनों में भी अच्छा चमत्कार दिखाया है। शैवदर्शन की उत्पत्ति काश्मीर में ही हुई। इस दर्शन के तत्व-निरूपण में सूक्ष्म तर्क-शक्ति का अच्छा परिचय दिया गया है। गुप्त रखने के कारण इस दर्शन का प्रचार विशेष नहीं हुआ। अन्यान्य दार्शनिकों ने अपने ग्रन्थों में इसके सिद्धान्तों का बहुत कम उल्लेख किया है। विद्या की तरह उस समय काश्मीर में पराक्रम भी था। कई बार काश्मीर-नरेशों का राज्य बहुत दूर तक फैल गया। ललितादित्य ने कन्नौज के यशोवर्मा को पराजित किया था। बीच-बीच में कई बार बुरा शासन भी रहा जिसमें लोगों की सम्पत्ति नष्ट हो गई, फिर भी प्रजा-प्रेमी और न्यायकारी नरेशों को शान्ति रखने में अच्छी सफलता मिली। चौदहवीं शताब्दी से देश की आन्तरिक दशा आपस की फूट से बिगड़ने लगी। तब से इसकी दशा बराबर बिगड़ती ही गई, सँभली नहीं। इससे पहले बारहवीं सदी तक लोग यथेष्ट सुखी थे। परन्तु चौदहवीं सदी के उत्तरार्द्ध से काश्मीर पर मुसलमानों का राज्य हो गया।

काश्मीर के प्राचीन इतिहास की आलोचना करते हुए 'काश्मीर' नामक पुस्तक के विद्वान लेखक ने लिखा है :—

"राजतरङ्गिणी में वर्णित इतिहास को देखने से मालूम होता है कि काश्मीर को उन दिनों सुख की अपेक्षा दुःख में अधिक दिन बिताने पड़े। तत्कालीन शासक-शासिकाओं की स्वेच्छाचारिता के कारण प्रजा-पीड़न का कुछ भी ठिकाना न था। परन्तु यह हाल सभी शासकों का न था। जहाँ मिहिरकुल, जयापीड़, शङ्कर, पार्थ, दिद्दा, कलश आदि के अत्याचार से काश्मीर-वासियों को पीड़ित होना पड़ा, वहाँ लव, अशोक, कनिष्क, तुञ्जीन, ललितादित्य, अवन्तिवर्मा आदि की छत्रच्छाया में वे सुखी और समृद्धिशाली हुए। सुख और दुःख, उत्थान और पतन संसार के इतिहास के चिर-साथी हैं। काश्मीर ही उससे क्योंकर वञ्चित रहता ? कुछ दुष्ट शासकों के कारण प्रजा को कष्ट अवश्य भोगने पड़े, पर उन दिनों काश्मीर की जो धार्मिक, साहित्यिक और आर्थिक

श्रीनगर का निम्न-भाग

उन्नति थी, वह स्वप्न के समान हो गई है। केवल काश्मीर को ही दोष नहीं दिया जा सकता, समस्त भारत से ही वह वैभव उठ सा गया।

ऐश्वर्य के उस प्रभात-काल में काश्मीरियों की प्रतिभा ख़ूब चमकती थी। उनके शरीर पर चाँदनी से धवल कोमल ऊनी वस्त्र शोभा देते थे, और उनके मुँह से शास्त्र-चर्चा की वासन्ती शोभा नए-नए रूप में प्रगट होती थी। एक ओर उनके निर्मल घर सूर्य के प्रकाश में हँसते रहते थे, दूसरी ओर चाँदी और सोने की मूर्तियाँ कान्ति-प्रवाह में मन्दिरों को तैरता हुआ प्रकाशित करती थीं। एक ललितादित्य ने ही ऐसे हज़ारों मन्दिरों की प्रतिष्ठा कराई थी। इसके अतिरिक्त भी न जाने कितने नृपतियों और धनकुबेरों ने देव-मन्दिरों के निर्माण में अपरिमित धन व्यय किया था। कल्हण ने लिखा है, काश्मीर का तिल भर भी भाग तीर्थों से रहित नहीं है :—

> चक्रभृद्विजयेशादिकेशवेशानभूषिते।
> तिलांशोऽपिनयत्रास्ति पृथ्व्यास्तीर्थैर्वहिष्कृतः॥

धन-लोभ से कुछ हिन्दू राजाओं ने भी सोने-चाँदी की मूर्तियों को तोड़वा डाला था, फिर भी कल्हण के समय तक अनेक देव-मन्दिर विद्यमान थे। मङ्खक ने याज्ञिकों के घर से धूम निकलते देखा था, जिसके विषय में वह लिखता है :—

> तनौ बटूनां प्रकटत्वमानय—
> न्नयत्नकृष्णाजिनसं विधानकम्।
> शिखिन्नयीधूमभरोऽखिलंरजः
> प्रमार्ष्टियत्रौकसिसोमपीथिनाम्॥

कल्हण ने विद्या, ऊँचे घर, केसर, हिम, शिशिर, जल और दाख, इन स्वर्ग-दुर्लभ वस्तुओं को घर-घर में बतलाया है :—

> विद्यावेश्मानि तुङ्गानि कुङ्कुमं सहिमं पयः।
> द्राक्षेति यत्र सामान्यमस्ति त्रिदिवदुर्लभम्॥

अतः प्राचीन काश्मीर की बराबरी नवीन काश्मीर अंशतः भी नहीं कर सकता। इने-गिने, मन्दिरों को छोड़ कर औरों का नाम भी आजकल सुनने में नहीं आता। यहाँ मुसलमान निवासियों की संख्या बहुत अधिक है; हिन्दू उँगलियों पर गिने जा सकते हैं—उनमें भी बहुतों को यह पता नहीं कि शास्त्र होते क्या हैं? कविता की विहारभूमि की यह दशा देख कर सन्ताप होता है।

श्रीनगर का अमीरा-कदल बाज़ार

सिकन्दर नाम के मुसलमान बादशाह ने प्रतिमाओं का उच्छेद कर दिया था। ऐसा कोई नगर या ग्राम नहीं था जहाँ के देव-मन्दिर धूल में न मिला दिए गए हों। अनेक बहुमूल्य पुस्तकें जला दी गईं। ब्राह्मणों पर अधिक कर लगा दिया गया। इन अत्याचारों से तङ्ग आकर बहुत से हिन्दू मुसलमान हो गए, और कुछ भाग गए; जो बचे उनकी संख्या अधिक न थी। मुसलमानों के राज्य में भी काश्मीर का शासन कुछ काल तक सुचारु रूप से हुआ, जिसका वर्णन 'काश्मीर' के विद्वान लेखक ने इस प्रकार किया है :—

"जैन-उल-आबदीन × × × उन्नत विचारों का एक उदार शासक था। किसानों का तो वह परम हितैषी था। उनकी सुविधा के लिए उसने बहुत सी नहरें और पुल बनवाए। उसे ब्राह्मणों से भी प्रेम था। उन पर लगाए गए अनुचित कर उसने माफ़ कर दिए थे और जगह-ज़मीन देकर वह उन्हें उत्साहित करता रहता था, इतना ही नहीं, उसने कुछ हिन्दू मन्दिर भी बनवाए थे और वह संस्कृति साहित्यकों को उत्तेजन देता रहता था। काश्मीर की आर्थिक उन्नति के लिए उसने बाहर से बहुत से कला-कुशल कारीगर बुलाए थे। उसके दरबार में कवि और गायकों का तो मेला सा लगा रहता था। × × × अकबर के शासन-काल में जैसा सुख सारे भारतवर्ष ने भोगा, वैसा ही सुख काश्मीर ने भी भोगा। अकबर ने स्वयं तीन बार काश्मीर की यात्रा की थी। श्रीनगर में उसने हरि पर्वत का परकोटा बनवाया था। जिस प्रकार अकबर समस्त भारतवर्ष की शासन-व्यवस्था करता था उसी प्रकार काश्मीर की भी शासन-व्यवस्था का पूरा ध्यान रखता था। उसकी ओर से एक सूबेदार काश्मीर में रहता था।"

इतना सब होने पर भी मुस्लिम-काल में काश्मीर की विद्या और लक्ष्मी को जो धक्का पहुँचा, उससे वह आज तक भी नहीं सँभल सका है।

मुस्लिम-काल में जो ग्रन्थ नष्ट होने से बच गए थे उनमें अधिकांश उत्तम ग्रन्थों को जर्मनी और इङ्गलैण्ड के विद्वान ले गए। धन के लोभ से हमारे यहाँ के धर्माभिमानी पण्डितों ने तमाम पुस्तकें विदेशियों के हाथ बेच डालीं। इसके बाद भी जो कुछ बच गई हैं, उनकी रक्षा की ओर किसी का ध्यान नहीं है। मण्ठ का 'हयग्रीव-बध', शङ्कुक का 'भुलनाभ्युदय' आदि महाकाव्य अब ढूँढ़ने पर भी नहीं मिलते। राज्य की ओर से प्राचीन पुस्तकों के

श्रीनगर में झेलम नदी पर हाउस-बोटों का दृश्य

प्रकाशन के लिए एक विभाग स्थापित है। उससे शैव दर्शन के कुछ अमूल्य ग्रन्थ निकले भी हैं, पर इस कार्य की प्रगति अत्यन्त शिथिल है। यदि इस ओर राज्य का ध्यान अकर्षित हो तो विद्वानों के जीवन भर का परिश्रम सफल हो जाय। हिन्दू राज्य के रहते यदि इन ग्रन्थों का उद्धार न हुआ तो कब होगा? होटल और कोठियों का सुख वहीं के चार-पाँच मनुष्य प्राप्त करेंगे, पर ग्रन्थ-रत्नों की विमल कान्ति दूरवर्ती विद्वानों तक की आँखें शीतल करेंगी। श्रीनगर में चार-पाँच वृद्ध पण्डित अब भी विद्यमान हैं, जो प्राचीन विद्या के अतीत उज्ज्वल आलोक की सूचना देते हैं। राज्य की ओर से संस्कृत को आश्रय मिलना चाहिए।

जो प्राचीन सौन्दर्य मनुष्य के प्रयत्न से था, कालक्रम से वह अब नहीं रहा। प्रकृति का स्वाभाविक सौन्दर्य अब भी वही है, उसमें रत्ती भर भी कमी नहीं हुई है। अब भी मङ्खक के शब्दों में उसे हिमभूषित पर्वतों से परिवेष्ठित कह सकते हैं :—

विभाव्यते सान्द्रहिमार्द्रमूर्तिभिः
प्रवर्तिताट्टालकमुद्रमद्रिभिः।
मणिव्रजैश्वर्यजितेनसूत्रित
प्रदक्षिणं क्षीरसरस्वतेवयत्॥

श्रीनगर के निवासियों के घर, प्राचीन सुन्दर मन्दिरों की श्री का लेश भी नहीं रखते। गलियों में गन्दगी बहुत है। किन्तु शहर या ग्रामों को छोड़ कर वनस्थली का सौन्दर्य देखिए तो तत्क्षण एक अननुभूत आलोक-माला से मन-प्राण पुलकित हो उठेंगे। जी चाहता है, अपलक नयनों से इस मधुर सुषमा का सदा पान करते रहें। अपनी स्वाभाविक सुन्दरता के कारण, काश्मीर काश्मीर ही है। कल्हण ने ठीक ही कहा है—त्रिलोकी में पृथ्वी उत्तम है, उसमें उत्तर दिशा, उसमें गौरीगुरु हिमालय पर्वत और उसमें भी काश्मीर मण्डल :—

त्रिलोक्यां रत्नसूः श्लाघ्या तस्यांधनपतेर्हरित्।
तत्र गौरीगुरुः शैलो यत्रस्मिन्नपि मण्डलम्॥

बच्चों के बच्चे

[श्रीयुत एफ़० एल० ब्रेनी, एम० सी०, आई० सी० एस०]

[प्रस्तुत लेख, लेखक महोदय की विद्वत्तापूर्ण पुस्तक 'देहाती-सुकरात' (Socrates in an Indian Village) का एक अध्याय है। सुकरात प्राचीन यूनान के एक आत्मज्ञानी महात्मा, प्रकाण्ड विद्वान और कुशल तार्किक थे। उनकी तर्क-प्रणाली अनूठी थी। वे अपने श्रोताओं से केवल सवाल-जवाब करके विचारणीय विषय को इतनी चतुराई से समझा देते थे कि उनके निर्णय को अस्वीकार करना असम्भव हो जाता था। उनकी तर्क-प्रणाली इतनी प्रबल थी कि बड़े-बड़े तार्किकों ने भी उनसे हार मान ली थी। साथ ही, वह इतने बड़े स्वतन्त्र विचार वाले थे कि उन्होंने तत्कालीन यूनान में प्रचलित अनेक भ्रमात्मक विचारों और रूढ़ियों की बड़ी निर्भीक और कठोर समालोचना की थी। इसी निर्भीकता और विचार-स्वातन्त्र्य के कारण, अन्त में, उन्हें प्राण तक देने पड़े। इन पर युवकों को बहका कर, उन्हें धर्म और समाज-नीति से भ्रष्ट करने का अभियोग लगाया गया और इन्हें विष-पान करने के लिए विवश किया गया। यह आत्मज्ञानी महात्मा मृत्यु से आध घण्टा पहले तक बड़ी निश्चिन्तता से अपने शिष्यों और मित्रों के साथ जीवन, मृत्यु और आत्मा के विषय में तर्क-वितर्क करते रहे, तथा निश्चित समय आने पर हलाहल का प्याला पीकर चिरकाल के लिए अमर हो गए।

इस लेख के लेखक ने उन्हीं विकट तार्किक महात्मा सुकरात को बड़े कौशल से भारत के एक गाँव में ला खड़ा किया है, और उनके मुँह से भारतीय समाज में प्रचलित, अनेक कुरीतियों का खण्डन कराया है। 'देहाती-सुकरात' नाम की पुस्तक में महात्मा सुकरात रोज़-रोज़ गाँव में जाते हैं और गाँव वालों के साथ, भिन्न-भिन्न प्रथाओं, रूढ़ियों और रीति-रिवाजों पर उनकी बातचीत होती है। प्रस्तुत लेख एक ऐसी ही बातचीत का परिणाम है।

—सम्पादक 'चाँद']

सुकरात सड़क पर चले जा रहे थे कि उन्हें एक बारात मिली। उन्होंने वर के पिता का अभिवादन किया और उसे बधाई दी। बोले—आपका लड़का तो बड़ा भाग्यवान है चौधरी जी!

चौधरी—यह कैसे महात्मन?

सुकरात—इन गाड़ियों और जवाहरातों को देखिए न! कितने ऐश्वर्य के साथ यह अपना वैवाहिक जीवन प्रारम्भ करने जा रहा है!

चौधरी—अरे! नहीं प्यारे सुकरात, यह सब तो उधार धन लेकर किया गया है। इस शादी के लिए मैंने दो हज़ार रुपए क़र्ज़ लिए हैं।

सुकरात—तब क्या आपका लड़का क़र्ज़ से लद कर अपना वैवाहिक जीवन प्रारम्भ करने जा रहा है?

चौधरी—हाँ, बात तो ऐसी ही है; और मैंने भी ऐसा ही किया था, तथा मेरे पिता जी ने भी ऐसा ही।

सुकरात—लेकिन ऐसा करना क्या मूर्खता नहीं है?

चौधरी—यह तो हमारे यहाँ की परिपाटी है सुकरात जी!

सुकरात—ऐसी परिपाटी को, जो आपके बच्चों को जीवन भर के लिए क़र्ज़ में डुबा देती है, छोड़ देना क्या बुद्धिमानी की बात नहीं है?

चौधरी—है तो, लेकिन इन रीति-रिवाजों को तोड़ना कितना मुश्किल है!

सुकरात—लेकिन आपका लड़का—वह क्या इन मूर्खता की बातों में आपत्ति नहीं करता? ज़रूर ही वह पढ़ा-लिखा और नई रोशनी का आदमी होगा। जब

आप उसकी शादी में इतना ख़र्च कर रहे हैं, तो उसकी पढ़ाई में ज़रूर ही इसका दुगुना ख़र्च किया होगा, ताकि वह इस क़र्ज़ को चुका तो सके, जो आप उसके सिर पर लाद रहे हैं।

चौधरी—आपने भी अच्छा कहा! वह तो अभी सिर्फ़ दूसरे ही दर्जे में पढ़ता है, जिसमें कोई ख़र्च नहीं लगता।

सुकरात—आप कहते क्या हैं चौधरी जी? आपका लड़का बड़ा हुआ, वह भला अब तक दूसरे ही दर्जे में कैसे पढ़ता है? क्या वह निरा बुद्धू है?

चौधरी—नहीं सुकरात, मेरी बेइज़्ज़ती न कीजिए। मेरा बेटा बहुत ही चालाक लड़का है।

सुकरात—मैं आपका मतलब नहीं समझा, अभी आपने कहा है कि उसकी शादी होने जा रही है, और अभी उसे आप ही बच्चा भी बता रहे हैं!!

चौधरी—तो इससे क्या?

सुकरात—लेकिन छोकरे तो नहीं ब्याहे जाते, चौधरी जी!

चौधरी—क्यों नहीं? मेरी शादी बारह बरस की उमर में हुई थी और मेरे पिता जी की भी बारह ही में। इससे हुआ क्या?

सुकरात—कैसा घातक विचार है! पाठशाला छोड़ने के पहले ही लड़के-लड़कियों की शादी?

चौधरी—क्यों बूढ़े मियाँ? मुझे तो इस रिवाज में कोई बुराई नहीं दीखती; इससे हम लोग मरने के पहले पोते का भी मुँह देख लेते हैं।

सुकरात—जी हाँ, और शायद यही कारण है कि आप लोग इतनी जल्दी मर भी जाते हैं, और चालीस वर्ष की अवस्था होने के पहले ही बुड्ढे भी हो जाते हैं। अगर आप लोग अवस्था बड़ी होने के पहले विवाह न करते तो शायद इससे अधिक दिन जी सकते।

चौधरी—ऐसा हो सकता है, सुकरात! मैंने स्वयं बुड्ढों के मुँह से ऐसा सुना है, लेकिन जहाँ हमारी रीति-रिवाजों से सम्बन्ध होता है, वहाँ हम लोग बुड्ढों की बातों पर ध्यान नहीं देते।

सुकरात—इसमें तो कोई शक ही नहीं कि बाल-विवाह बच्चों की बाढ़ रोक देता है और उन्हें उतना बड़ा और मज़बूत नहीं बनने देता, जितना कि वे बिना ब्याहे बन सकते।

चौधरी—कोई शक नहीं।

सुकरात—और इससे उनकी पढ़ाई में बाधा पड़ती है?

चौधरी—बेशक पड़ती है।

सुकरात—और उनके मस्तिष्क का विकास भी रुक जाता है?

चौधरी—ज़रूर रुक जाता है।

सुकरात—और इससे उन्हें आत्म-संयम की शिक्षा भी नहीं मिल पाती, जो बहुत ज़रूरी है?

चौधरी—नहीं, कदापि नहीं मिलती।

सुकरात—मैं समझता हूँ, इन विवाहित बच्चों के भी बच्चे होंगे?

चौधरी—हाँ, मुझे भी यही आशा है।

सुकरात—और बच्चों के बच्चे उतने बड़े और मज़बूत कभी नहीं हो सकते, जितने जवान आदमियों के बच्चे?

चौधरी—नहीं।

सुकरात—आप लोग जो यह कहा करते हैं कि आज-कल लोग कमज़ोर होते जा रहे हैं, उसका कारण भी शायद यही है?

चौधरी—हाँ, यह कारण हो सकता है; सम्भवतः अनेक पीढ़ियों से होने वाले बाल-विवाह ने ही हमारी जाति को कमज़ोर बना दिया है।

सुकरात—और बच्चों के बच्चों के पालन-पोषण में अधिक होशियारी की ज़रूरत है?

चौधरी—निश्चय ही।

सुकरात—दूसरी ओर, उनके माता-पिता स्वयं बच्चे और अशिक्षित होते हैं, इसलिए उन्हें इन बातों का कुछ भी ज्ञान नहीं होता है?

चौधरी—नहीं, बिलकुल नहीं।

सुकरात—इसलिए, उनके बच्चों को बचपन में ही मर जाने का दोहरा मौक़ा रहता है; क्योंकि एक तो वे बच्चों के बच्चे होते हैं, दूसरे उनके माता-पिता को उनके पालन-पोषण का कुछ भी ज्ञान नहीं होता।

चौधरी—सच है सुकरात! आपका कहना बिलकुल सच है।

सुकरात—इसलिए जब तक इन बच्चों की माँ, इनका पालन-पोषण करना सीखेगी, तब तक इनमें से बहुत से अभागे बच्चे इस दुनिया से चल बसेंगे ?

चौधरी—ऐसा तो प्रायः होता है।

सुकरात—और, बेचारी माताओं के प्रति यह कितना क्रूर व्यवहार है कि पहले तो उन्हें बचपन की कच्ची उमर में ही गर्भ धारण करने के लिए विवश किया जाय, और फिर बच्चे पैदा करने तथा उनके पालन-पोषण के सभी कष्ट झेलने के बाद इन माताओं को उन्हें एक-एक करके मरते हुए देखना पड़े; यह सब इसलिए कि वे अपने माँ-बाप की मूर्खता पर बलिदान कर दी जाती हैं, और उन पर ये भारी ज़िम्मेदारियाँ उस समय लाद दी जाती हैं, जिस समय उनका शरीर न तो इनके लिए तैयार रहता है, और न उन्हें इन ज़िम्मेदारियों को पूरा करने की तालीम ही मिली रहती है ?

चौधरी—मुझे दुःख है, सुकरात ! आपके सभी आरोप सच्चे हैं।

सुकरात—और अभी एक बात और भी है, चौधरी जी ! आपका लड़का अभी बच्चा है, वह खिलौना चाहता है, न कि पत्नी।

चौधरी—ऐसा !

सुकरात—और ऐसी अवस्था में आपने एक और प्राणी उसके ज़िम्मे सौंप दिया है। क्या आपने यह भी सोचा है कि इसका परिणाम अच्छा होगा या बुरा ?

चौधरी—हाँ-हाँ, क्यों नहीं ?

सुकरात—और न पति ने आत्म-संयम सीखा है और न शिष्टाचार ; और न उसे यही मालूम है कि आत्म-संयम कहते किसे हैं ?

चौधरी—यह तो ठीक है।

सुकरात—और, उसने अपनी माँ के बारे में क्या देखा है ? घर में उसकी माँ की कोई इज़्ज़त नहीं। आप उसे अपनी लौंडी ज़्यादा समझते हैं, सहधर्मिणी कम।

चौधरी—मैं भी यही समझता हूँ, सुकरात ! आपके अभियोग कठोर हैं, लेकिन सच्चे हैं।

सुकरात—और, वह छोटी नादान बच्ची, जिसे आपने अपने बच्चे के गले मढ़ दिया है, न शिक्षित है, न सभ्य है, न पढ़ी-लिखी ; उसका सम्मान न कोई कर सकता है, न वह किसी सम्मान के योग्य है ?

चौधरी—नहीं, सचमुच ही नहीं।

सुकरात—तब, आपका लड़का आरम्भ से ही अपनी स्त्री का सम्मान नहीं करेगा। आगे चल कर भी वह न कभी उसका सम्मान करना सीखेगा और न वह सम्मान पावेगी। अधिक से अधिक वह उसके आमोद की सामग्री बन जायगी और बेचारा बच्चा, जब उससे खेलते-खेलते थक जायगा, उसकी उपेक्षा करने लगेगा। और आत्म-संयम की शिक्षा न मिली होने के कारण वह अपनी स्त्री को अनेक प्रकार से तङ्ग करने और मारने-पीटने में भी कुण्ठित नहीं होगा ?

चौधरी—मैं इन सारी बातों को स्वीकार करता हूँ, सुकरात !

सुकरात—हाय रे ! अभागी बच्चियाँ ! अभागे बच्चे !! और अभागा देश, जिसमें न जाने कितनी सदियों से यह प्रथा चली आ रही है !!!

उपसंहार

[श्री० "प्रभात"]

तुझे छोड़ कर सुरभि उड़ गई
तेरा रङ्ग हुआ फीका !
रहा न तुझ पर प्रेम हाय ! अब—
मधु-लोलुप अलि-अवली का !!

व्यर्थ सींचते क्यों रो-रो कर
वसुधरा-पट हे सुकुमार ?
जीवन के अज्ञात-काव्य का
अरे ! यही है उपसंहार !!

वर्तमान रूस में स्त्रियों की अवस्था

[श्री० "प्रवासी"]

न् १९१६ की क्रान्ति के अनन्तर रूस में कम्युनिस्ट पार्टी की अध्यक्षता में सोवियट-सोशलिस्ट-प्रजातन्त्र-सङ्घ की स्थापना हुई। इसके बाद से रूस में जहाँ व्यक्ति पर व्यक्ति के अत्याचार का लोप हो गया है, वहाँ स्त्रियों की सामाजिक स्थिति भी बहुत ऊँची हो गई है। सोवियट-शासन-विधान में स्त्रियाँ, आर्थिक और सामाजिक दृष्टि से, सर्वथा पुरुषों के समान समझी जाती हैं। यह समानता का भाव न केवल शासन-विधान में, बल्कि वर्तमान रूसी समाज के प्रत्येक अङ्ग में देखा जा सकता है।

वह यात्री, जो यूरोप में स्त्रियों की स्थिति को अच्छी तरह देख चुका है, उनकी स्वतन्त्रता को भी स्वीकार कर चुका है, जब रूस की बोल्शेविक भूमि पर पदार्पण करता है तो उसे सहसा यह अनुभव हुए बिना नहीं रहता कि रूसी स्त्रियों की स्थिति यूरोपियन स्त्रियों की अपेक्षा कहीं अधिक स्वतन्त्र—वास्तविक और सच्चे अर्थों में स्वतन्त्र है। यूरोप में स्त्रियाँ अलङ्कार-स्वरूप समझी जाती हैं, उन्हें सब प्रकार की उपलभ्य सुख-सामग्री प्रदान की जाती है, भाँति-भाँति के वस्त्र पहना कर उन्हें अप्सरा-रूप में सजाया जाता है, पर उन्हें सच्ची स्वतन्त्रता प्राप्त नहीं है। वे पुरुषों की सहगामिनी समझी जाती हैं, पर केवल भोग-विलास के क्षेत्र में ; जहाँ सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक अधिकारों का प्रश्न उठता है, वहाँ वे न पुरुषों की सहगामिनी समझी जाती हैं, और न उन्हें पुरुषों के समान अधिकार हैं। यह तो दशा है यूरोप के धनी घरानों की स्त्रियों की ; पर जिन स्त्रियों को ऐश्वर्य और आमोद के बीच उत्पन्न होने का सौभाग्य नहीं मिला है, उनकी दशा अत्यन्त हीन है। यूरोप की ग़रीब स्त्रियों की दशा देखनी हो तो वहाँ के बड़े-बड़े कारख़ानों और पुतलीघरों को देखिए, जिन्हें देख कर रोमाञ्च हो आता है। दूर क्यों जाइए, अपने ही देश में बम्बई, कलकत्ता, अहमदाबाद आदि व्यावसायिक केन्द्रों में स्त्रियों की भीषण दुर्दशा देख कर, यदि आपके हृदय है तो आप आँसू बहाए बिना नहीं रह सकते। यूरोप में भी स्त्रियों की दशा पर यन्त्र-युग का ऐसा ही घातक प्रभाव पड़ा है। परन्तु रूस में यह बात नहीं है। रूस में स्त्रियों की उन्नति पर ख़ास तौर से ध्यान दिया जाता है। पुरुषों की तुलना में अनेक अंशों में उनके साथ पक्षपात भी दिखाया जाता है। उदाहरण के तौर पर यदि स्त्री-पुरुष अलग हो जायँ, और इसमें पुरुष का अपराध हो तो गवर्नमेण्ट पुरुष से स्त्री को हरजाना दिलाती है ; न्यायालय से पुरुष को जो दण्ड मिलता है, वह इसके अलावे। यदि स्त्री पर पुरुष किसी प्रकार का प्रहार करे या उससे बलात्कार करे तो उसे बहुत सख़्त सज़ा दी जाती है। कई अवसरों पर अपरिणत वयस्का बालिका या स्त्री पर बलात्कार करने के कारण प्राणदण्ड भी दिया गया है। रूस में स्त्रियों को बड़े आदर, प्रेम और मित्रता की दृष्टि से देखा जाता है।

महायुद्ध के समय, जोकि बोल्शेविक गवर्नमेण्ट की स्थापना का समय था, अङ्गरेज़ नीतिज्ञ भारत की तरह रूस को भी हथियाने की चेष्टा में लगे थे। चारों ओर से मित्रराष्ट्रों ने रूस की सीमा को घेर रक्खा था। उस समय भारत में इस प्रकार के अनेक बेहूदे और बेतुके समाचार फैलाए जाते थे कि बोल्शेविकों ने सम्पूर्ण स्त्रियों को "नेशनलाइज़" कर लिया है, अर्थात उन्हें राष्ट्रीय सम्पत्ति बना डाला है, और वहाँ अनियन्त्रित व्यभिचार प्रारम्भ हो गया है। इन झूठे गपोड़ों की पोल तब खुलती है, जब संसार-भ्रमण करने वाला यात्री लण्डन, पेरिस, बर्लिन, वियेना और न्यूयॉर्क देखने के बाद मॉस्को पहुँचता है। रूसी स्त्रियाँ यूरोपियन स्त्रियों की भाँति केवल पुरुषों के आमोद की वस्तु नहीं हैं, बल्कि उनकी सच्ची सहधर्मिणी हैं। वे जीवन के सभी क्षेत्रों में पुरुषों का साथ देती हैं तथा उन्हीं के समान सभी क्षेत्रों में उन्नति करने के लिए भी स्वतन्त्र हैं। आप

देखेंगे कि रूसी स्त्रियाँ इञ्जिनियरिङ्ग, चिकित्सा, शिक्षा, क्लर्की आदि सभी पेशों में भरी हुई हैं। बहुत सी ऐसी भी स्त्रियाँ हैं जो जहाज़ों का सञ्चालन करती हैं, रेलवे-स्टेशनों पर स्टेशन-मास्टर का काम करती हैं। फलतः सामाजिक जीवन का एक भी ऐसा अङ्ग नहीं, जहाँ स्त्रियाँ न पाई जाती हों। शिक्षा के लिए वैसे तो सबको स्वतन्त्रता है, परन्तु व्यवसाय-सङ्घ (Trade Unions) इस बात का विशेष रूप से ध्यान रखते हैं कि स्त्रियों की काफ़ी संख्या युनिवर्सिटी और स्कूलों में भेजी जाय। स्त्रियों के अपने अलग सङ्गठन भी हैं, जिनके कार्य में सरकार स्वतः सहानुभूति दिखाती है और उनकी सहायता करती है। स्त्रियों को हरेक प्रकार से उत्साहित किया जाता है कि वे समाज के सुधार, शासन-कार्य के सञ्चालन और व्यवसाय-सङ्घों के काम में पूरी तरह हाथ बटावें। स्त्रियों ने भी अपनी ओर से इसमें किसी प्रकार की कमी नहीं रक्खी है। उन्होंने अच्छी तरह प्रमाणित कर दिया है कि वे इस प्रतिष्ठा और आदर के योग्य हैं। बोल्शेविक सरकार की सबसे प्रधान महत्ता यह है कि वह अङ्गरेज़ी मक्कारों की तरह स्त्रियों से यह नहीं कहती कि "तुम अभी तक योग्य नहीं हो, इसलिए तुम्हें अधिकार नहीं दिए जा सकते"; बल्कि इसके विपरीत रूसी गवर्नमेण्ट स्पष्ट घोषणा करती है कि "चूँकि तुम अभी तक दलित, हीन, अशिक्षित रही हो, इसलिए अक्तूबर की क्रान्ति तुम्हारे लिए सुधारों का, अधिकारों का, समानता का उपहार लाई है। यह लो, अपनी थाती सँभालो और अपने को सोशलिस्ट-समाज की रचना के कार्य में लगा दो।" इसी का यह परिणाम है कि स्त्रियाँ सोशलिस्ट-सरकार का प्रधान स्तम्भ बन गई हैं, उनके बिना न सोशलिस्ट-सरकार की स्थिति रह सकती है और न सोशलिज़्म की रचना ही हो सकती है।

मैं ऊपर कह आया हूँ कि रूसी स्त्रियाँ सच्चे अर्थों में स्वतन्त्र हैं। फलतः उन्हें स्वतन्त्र प्रेम का भी अधिकार प्राप्त है। उनके यहाँ दलालों, पण्डितों अथवा लाल-बुझक्कड़ों के द्वारा विवाह नहीं किया जाता और न वहाँ की लड़कियों को हमारे यहाँ के समान माता-पिताओं के अन्ध-विश्वास और उनकी ज़बर्दस्ती का शिकार बनना पड़ता है। वहाँ के विवाह का नियम किसी मनु, मुहम्मद या मूसा की व्यवस्था पर निर्भर नहीं है, अपितु प्राकृतिक नियम पर आश्रित है। वहाँ के क़ानून के अनुसार लड़का-लड़की १८ वर्ष की आयु से पूर्व विवाह नहीं कर सकते। इस क़ानून के भङ्ग करने वाले को दण्ड मिलता है। अनेक बार ऐसा होता है कि प्राचीन संस्कृति में पले लोग, जो अभी तक नवीन साम्यवादी समाज के वायुमण्डल में जल से बाहर मछली की तरह विकलता अनुभव करते हैं, अपनी लड़की की कम उम्र को बढ़ा कर लिखाते हैं परन्तु जब इसका पता लग जाता है तो उन्हें न्यायालय से कठिन दण्ड मिलता है। माता-पिता लड़के-लड़की के विवाह में, उनकी अनुमति के विरुद्ध हस्तक्षेप नहीं कर सकते। परस्पर राज़ी होने पर परिणत युवक-युवती रजिस्ट्री के दफ़्तर में जाकर, जिसे यहाँ ज़ाक्स कहते हैं, रजिस्ट्री करा आते हैं, और उसके बाद से वे पति-पत्नी भाव से परस्पर सहवास करने के अधिकारी समझे जाते हैं। अनेक बार ऐसा भी होता है कि कुछ उच्छृङ्खल या स्वतन्त्र-प्रकृति के लोग विवाह की रजिस्ट्री नहीं कराते और लुक-छिप कर व्यभिचार करते हैं। इस प्रकार जो स्त्रियाँ गर्भवती हो जाती हैं, उन्हें उनके प्रेमी से ख़र्च दिलाने के लिए न्यायालय बाध्य नहीं है। इसलिए न्यायालय और सरकार स्त्रियों को सदा प्रेरित करते हैं कि वे विवाह की रजिस्ट्री करवावें, जिससे पीछे किसी प्रकार की अड़चन न पैदा हो। शिशु-प्रजनन के बाद, यदि स्त्री किसी कारख़ाने या अन्य संस्था में काम करती हो तो व्यावसायिक सङ्घों के नियमानुसार, उस संस्था का कर्त्तव्य है कि वह सार्वजनिक फ़ण्ड से उस स्त्री को उसकी मासिक वृत्ति का एक स्थिर हिस्सा, जो केवल प्रसूता माताओं के लिए निश्चित होता है, देवे। प्रसव-काल के डेढ़ मास पूर्व से प्रसव के बाद दो या तीन मास तक माता कार्य से मुक्त रहती है, और इस अवसर में उसके कार्य की संस्था उसे पूरी मासिक वृत्ति देती रहती है। इन दो-तीन महीनों के अनन्तर पाँच-छः मास तक उसे अधिकार है कि वह बच्चे को दूध पिलाने के लिए छुट्टी के नियमित समय से दो घण्टे पूर्व जा सकती है। प्रत्येक संस्था के लगभग अपने-अपने अलग शिशु-भवन हैं, जहाँ माताएँ कार्य से पूर्व अपना बच्चा छोड़ जाती हैं। यहाँ बच्चे को नहलाया जाता है, उसे दूध पिलाया जाता है, और मध्याह्नोत्तर शयन के अनन्तर पुनः दूध, कॉफ़ी आदि पिलाया जाता है। इस सब प्रबन्ध का केवल नाम-मात्र का ख़र्च माँ-बाप को देना होता है, अधिकांश ख़र्च उस

फ़ैक्टरी या संस्था को ही करना पड़ता है, जहाँ कि माता काम करती है।

सोवियट गवर्नमेण्ट हर प्रकार से ऐसा प्रयत्न कर रही है कि स्त्रियों को घर में गुलाम की भाँति पिसते रहने से मुक्त किया जाय, और उन्हें शारीरिक और मानसिक उन्नति का पूरा अवसर दिया जाय। इस उद्देश्य से कारख़ानों की ओर से, तथा इस प्रकार की हरेक संस्था की ओर से अपने-अपने भोजन-गृह बनवाए गए हैं, जहाँ छुट्टी के समय लोग बहुत सस्ते दामों पर भोजन पा सकते हैं। ये दाम अनेक अंशों में घर में भोजन पकाने के ख़र्च से कहीं कम होते हैं। इस प्रबन्ध से सबसे बड़ा लाभ यह है कि स्त्रियाँ घरेलू झमेलों से स्वतन्त्र हैं। कार्य के अनन्तर वे घर आकर थोड़ा सा आराम करती हैं, और फिर किसी क्लब या व्यायामशाला में, जिनकी यहाँ कमी नहीं है, चली जाती हैं, अथवा रात्रि-पाठशालाओं में जाकर अपनी विद्या-बुद्धि बढ़ाने का प्रयत्न करती हैं। रूसी स्त्रियाँ दूसरी भाषाओं को सीखने में बड़ी तत्पर हैं। क्रान्ति के प्रथम केवल धनी घरानों की लड़कियाँ ही विदेशी भाषाओं में प्रवीण होती थीं, परन्तु क्रान्ति के अनन्तर, जब कि श्रमियों को शिक्षा की पूरी-पूरी सुविधा है, मज़दूर-स्त्रियाँ भी आमतौर पर ऐसी पाई जाती हैं, जो जर्मन, फ़्रेञ्च, अथवा इङ्गलिश का ज्ञान रखती हैं। अक्तूबर-क्रान्ति ने वस्तुतः स्त्रियों के जीवन में क्रान्ति पैदा कर दी है। रूसी स्त्रियाँ, जो ज़ारशाही ज़माने में ढोर-डाँगरों से बेहतर न समझी जाती थीं, आज पूर्णतः शिक्षित और स्वतन्त्र हैं।

रूसी स्त्रियों को जो सब से बड़ा अधिकार मिला है, वह है स्वतन्त्र प्रेम और त्याग (तलाक़) का। इस विषय में वे पुरुषों के समान ही स्वतन्त्र हैं। आरम्भ में इस अधिकार का कुछ दुरुपयोग हुआ था, परन्तु वह अवस्था अधिक दिनों तक नहीं रही। इसके दुरुपयोग से स्त्रियों ने कई बार धोखा खाया और अपना स्वास्थ्य भी बिगाड़ा। इससे एक ओर स्त्रियों और पुरुषों ने स्वयं अपने को सुधारने का प्रयत्न आरम्भ किया ; दूसरी ओर रूस के प्रभावशाली नेताओं ने भी देश की नैतिक स्थिति को सुधारने की ओर ध्यान दिया। लेनिन तथा उनके साथियों ने नवयुवकों में बढ़ती हुई उच्छृङ्खलता तथा स्वतन्त्रता के मिथ्या प्रयोग के विरुद्ध आवाज़ उठाई। अनेक संस्थाओं ने भी इस चरित्र-हीनता के विरुद्ध कोशिशें प्रारम्भ कीं। न्यायालय तथा चिकित्सा-भवनों ने उनका साथ दिया। स्कूलों में स्वास्थ्य के साथ-साथ लिङ्ग-शुद्धता के ऊपर भी व्याख्यान दिए जाने लगे। रूस पर इस आन्दोलन का बड़ा अच्छा प्रभाव पड़ा है। वहाँ स्वतन्त्र प्रेम का सिद्धान्त अभी भी अखण्डित है, परन्तु उसका दुरुपयोग पहले की भाँति अधिकता से नहीं होता। इस विषय में अनुभव और शिक्षा पाकर लोग धीरे-धीरे अधिक समझदारी से काम लेना सीखते जा रहे हैं। पेशेगीर वेश्याओं को सुधारने की कोशिश सोवियट-सरकार प्रारम्भ से ही करती आ रही है। यहाँ फ़्रान्स की तरह वेश्याओं को अड्डे चलाने की इजाज़त नहीं, बल्कि उसकी सर्वथा मनाई है। पुलिस को अथवा आस-पास के नागरिकों को यदि सन्देह हो जाय कि अमुक स्त्री या पुरुष व्यभिचार करते हैं या करवाते हैं तो उन पर फ़ौरन मुक़द्दमा चलाया जाता है और उन्हें सख़्त सज़ा दी जाती है। यदि ऐसी स्त्री अल्पवयस्क और कम समझदार है तो उसे काम दिया जाता है, उसकी शिक्षा का प्रबन्ध किया जाता और उसे ऐसी परिस्थिति में रहने का अवसर दिया जाता है, जहाँ वह सुधर सके। बोल्शेविक सरकार वेश्याओं को धनी-समाज का रोग समझती है, और इसे दूर करने के लिए प्रचार का प्रत्येक साधन—सिनेमा, ड्रामा, साहित्य आदि—प्रयोग में लाती है।

इसका उत्तम परिणाम अभी से देखने में आ रहा है। रूस के प्रत्येक सामाजिक अङ्ग में सदाचार और शुद्धता की झलक मिलती है। यूरोपियन राजधानियों के होटल और रेस्टोरेण्टों में जाकर देखिए तो आपको विश्वास हो जायगा कि वहाँ सरे-बाज़ार भाव तय किया जाता है, ये स्थान सब प्रकार के व्यभिचार और कुकर्म के अड्डे हैं। परन्तु रूस में बात इसके विपरीत है। रूसी रेस्टोरेण्ट या होटल बड़े सादे हैं। होटलों में केवल वही लोग जाने पाते हैं जिनके पास पासपोर्ट होता है। पासपोर्ट हरेक व्यक्ति को रखना पड़ता है, चाहे वह रूसी हो या कोई विदेशी। यहाँ के रेस्टोरेण्टों में खाना सस्ता और सादा होता है। यहाँ के सभी रेस्टोरेण्ट गवर्नमेण्ट के होते हैं, और वही इनका सञ्चालन करती है। इन रेस्टोरेण्टों में किसी प्रकार का नाच नहीं होता। कई रेस्टोरेण्ट ऐसे भी हैं जहाँ गाना-बजाना

होता है, परन्तु यूरोप की तरह उद्दण्डता, उच्छृङ्खलता और बेहूदगी के साथ नहीं। चार्ल्सटन, फ़ौक्स-ट्रॉट आदि यूरोपियन नाचों की यहाँ मनाई है। केवल क्लबों में तथा सर्वसाधारण के मिलने के स्थानों में रूसी ढङ्ग के नाच होते हैं, जो अत्यन्त सुन्दर, मनोहर, भावपूर्ण एवं वस्तुतः कलायुक्त होते हैं। सिनेमा और थियेटर भी इस सदाचार और सादगी ही का प्रचार करते हैं। इस तरह के वायुमण्डल में यह लाज़िमी है कि स्त्री-पुरुषों के बीच का सम्बन्ध प्राकृतिक एवं वैज्ञानिक हो। रूस की स्त्रियाँ यूरोपियन स्त्रियों के मुक़ाबिले में कहीं दृढ़ एवं बलवान होती हैं। रूसी गृह-युद्ध के अनेक अवसरों पर स्त्रियों ने पुरुषों से भी बढ़ कर वीरता दिखाई थी। अनेक अवसरों पर स्त्रियों ने मैशीनगन और तोप से हमला करने वाले सैनिकों के भी दाँत खट्टे कर दिए थे। रूस के स्वातन्त्र्य-युद्ध में रूसी वीर माताओं ने बड़ा हिस्सा लिया था। जहाँ की स्त्रियों में इस उच्च कोटि का आत्माभिमान, वीरत्व एवं सहनशक्ति हो, वहाँ के पुरुषों में कदापि इतनी हिम्मत नहीं हो सकती कि वे उनके साथ बलात्कार कर सकें। इस विषय में भारतवर्ष रूस से बहुत शिक्षा ग्रहण कर सकता है। शारदा-क़ानून बना कर देश ने इच्छित दिशा में ही पैर बढ़ाया है, परन्तु हमें इतने से ही सन्तुष्ट नहीं हो जाना चाहिए। पर्दे की घातक प्रथा, स्त्रियों की अशिक्षा, उनका आर्थिक परावलम्बन आदि बहुत सी बुराइयाँ ऐसी हैं, जिन्हें हमें अभी दूर करना है। लड़के-लड़कियों की मर्ज़ी के विरुद्ध विवाह कर देने की प्रथा भी शीघ्र ही बन्द होनी चाहिए। अस्तु।

यदि ज़ारशाही के ज़माने में रूसी स्त्रियों की दशा पर विचार करें तो प्रत्यक्ष पता लग जाता है कि विगत तेरह वर्षों के अल्प काल में सोवियट रूस ने उनकी दशा में कैसा क्रान्तिकारी परिवर्त्तन कर दिया है। कावकास, तुर्किस्तान आदि प्रदेशों के भ्रमण ने मुझे विश्वास दिला दिया है कि सोवियट गवर्नमेण्ट ने समस्त संसार के सामने स्त्रियों की उन्नति का एक प्रभावशाली उदाहरण उपस्थित किया है। रूस के आस-पास के प्रदेशों में इस उदाहरण का ऐसा ज़बर्दस्त प्रभाव पड़ा है कि उनमें पर्दे की प्रथा, बाल-विवाह, लड़कियों को बेचने की कुरीति आदि के विरुद्ध घोर आन्दोलन किया जा रहा है। इन देशों में यद्यपि पर्दे की प्रथा के विरुद्ध राजनियम नहीं है, और इस विषय में केवल आन्दोलन से ही जनता को समझाने का प्रयत्न किया जा रहा है, तथापि बाल-विवाह, लड़कियों की ख़रीद-बिकरी आदि राजनियम के विरुद्ध हैं, और इन अपराधों के करने वालों को सख़्त दण्ड दिया जाता है। पहले-पहल मुल्लाओं ने कावकास और तुर्किस्तान में इन सुधारों के विरुद्ध आवाज़ भी उठाई थी। अनेक स्थानों पर इन मुल्लाओं ने धार्मिक विद्रोह तक खड़े कर दिए। परन्तु अन्त तक जनता ने उनका साथ न दिया, क्योंकि वह सोवियट गवर्नमेण्ट की भलाइयों और उसकी हित-चेष्टाओं को भली-भाँति समझती है। इससे ये धार्मिक दङ्गे तुरन्त ही दबा दिए गए। ज़ार-शाही और सोवियट-शासन में यही तो अन्तर है। ज़ार का निरङ्कुश शासन इन जातियों को दबाने तथा उन्हें सदा अन्धविश्वास और अविद्या के गर्त में रखने का अभिलाषी था, इसके लिए हर तरह से कोशिशें किया करता था; परन्तु सोवियट शासन सब प्रकार इन जातियों को उठाने, उन्हें शिक्षित करने और उन्हें अपने घर का बन्दोबस्त करने के योग्य बना रहा है।

सोवियट गवर्नमेण्ट धर्म को काल्पनिक और समाज के लिए घातक समझती है, और यह बात ठीक भी है। रूस में गिरजों, मसजिदों तथा अन्य धार्मिक संस्थाओं को अत्याचार का सहायक समझा जाता है। हम लोग स्वयं अपने देश के मन्दिरों और मठों की लीला देख कर इस कथन की सत्यता अनुभव कर सकते हैं। ब्राह्मणों और मुल्लाओं ने हमें सच्चा धर्म सिखाने के बदले हमारे हृदयों में धार्मिक विद्वेष भर कर भोली-भाली जनता को अपना ग़ुलाम बना रक्खा है। यह बात तुर्किस्तान और कावकास के लोग भली-भाँति समझ गए हैं और इसीलिए मुल्लाओं से छुटकारा पाकर वे अपनी दशा सुधारने का भी प्रयत्न कर रहे हैं। एक ओर विज्ञान-सूर्य ने उनकी आँखें खोल दी हैं, दूसरी ओर सोवियट सरकार हाथ पकड़ कर उन्हें उन्नति के पथ पर अग्रसर कर रही है। सोवियट रूस इन पूर्वीय देशों की स्त्रियों को ख़ास कर उन्नति करने, शिक्षा में अग्रसर होने तथा सदियों की कुरीतियों से स्वतन्त्र होने के लिए प्रोत्साहन दे रहा है। आरम्भ में कभी-कभी ऐसा भी होता था कि इन जातियों के कट्टर अन्ध-विश्वासी लोग अपनी पत्नी को सुधारों का समर्थक होने के कारण मार डालते थे अथवा अपनी लड़कियों को

शिक्षणालयों में जाने से रोकते थे। परन्तु अब इसके लिए उन्हें सज़ा भोगनी पड़ती है। इन देशों में मुस्लिम समाज की कट्टरता के कारण चाहे बूढ़ी औरतों को बुरका पहने देखा भी जाय, पर नौजवान औरतों के सुन्दर चेहरों पर यह जङ्गलीपन का चिन्ह कदापि नहीं पाया जाता। सोवियट राज्यों की वार्षिक बैठक में इन दूर-दूर के प्रदेशों की स्त्रियों के प्रतिनिधियों को देख कर चित्त आश्चर्य और उल्लास से भर जाता है। उन्हें देख कर सहसा हृदय से यह उद्‌गार निकल पड़ता है कि एक ओर ये स्वतन्त्र स्त्रियाँ हैं, जिन्होंने केवल १२-१३ वर्षों में अपने देश और समाज का पुनर्निर्माण कर लिया है, और एक ओर हैं हम अभागे भारतवासी, जो सदियों से ग़ुलामी की दशा में ठोकरें खाते हुए भी टस से मस होने का नाम नहीं लेते।

भारतीय महिलाओं का कर्त्तव्य है कि वे केवल स्वयं स्वतन्त्र बनने का आन्दोलन न करें, बल्कि अपने साथ-साथ सारे देश को स्वतन्त्र बना देने का प्रयत्न करें। अभी तक भारत में स्त्रियों की स्वतन्त्रता का आन्दोलन केवल थोड़े से पढ़े-लिखे और अमीर घरों की स्त्रियों तक ही परिमित है। परन्तु यदि सचमुच इस आन्दोलन को सफल बनाना हो तो भारत के घर-घर में—ग़रीब मज़दूरों और किसानों के घरों में भी—इस आन्दोलन को पहुँचा देना चाहिए। इसी उपाय से यह आन्दोलन सफल हो सकता है। स्त्रियों के उद्धार का आन्दोलन किसी विशेष वर्ण या जाति के स्वार्थ के लिए नहीं है; बल्कि यह समस्त भारत के उद्धार का आन्दोलन है। जब तक देश के स्त्री, पुरुष, बच्चे, बूढ़े, जवान, धनी, ग़रीब—सभी स्वतन्त्र न हों तब तक स्वतन्त्रता का कोई अर्थ नहीं है। बीमार आदमी तभी पूर्णतः नीरोग समझा जाता है, जब उसके अङ्ग-अङ्ग से बीमारी दूर हो जाय। जब तक स्त्रियाँ मूर्ख, अशिक्षित, दबाई हुई और परतन्त्र रहेंगी, तब तक भारतवर्ष सच्चे अर्थों में स्वतन्त्र नहीं हो सकता। इस विषय में यदि हम रूस का अविकल अनुकरण न करें, और ऐसा करना आवश्यक भी नहीं है, तो भी रूस के पुरुषों ने स्त्रियों के प्रति जो अगाध उदारता दिखाई है, उससे हम बहुत शिक्षा ग्रहण कर सकते हैं। रूसी पुरुषों की भाँति हम लोगों को भी अपने देश, काल और परिस्थिति का विचार करके स्त्रियों को स्वतन्त्र और शिक्षित बनाने का प्रयत्न आरम्भ कर देना चाहिए। जिस देश की माताएँ परतन्त्र हों, वह देश कदापि स्वतन्त्र नहीं हो सकता।

सोहागरात

["मुक्त"]

रेवती ने घर भर में धूम मचा दी। आज उसकी गुड़िया का ब्याह होगा। कभी उसने बाबू जी को न्यौता दिया, कभी भैया को; कभी अम्माँ को तैयारियों के लिए झिड़क आई, कभी चाची की सुस्ती पर उनसे नाराज़ हो गई। घर भर में उसने ख़ासी चहल-पहल मचा रक्खी थी। उसके उत्साह और उमङ्ग की सीमा न थी, बड़ी साध से आज वह अपनी गुड़िया का ब्याह करने जा रही है।

ब्याह के उपलक्ष में, रेवती की गुड़िया के घर खाना खाते हुए उसके पिता पं० रामचरण तिवारी ने अपनी पत्नी से कहा—एक दिन, इसी तरह धूमधाम से हमारी गुड़िया का भी ब्याह हो जाता !

तिवारी जी की स्त्री भाग्यवती ने हसरत भरी निगाह से एक बार उनकी ओर देखा, एक लम्बी साँस खींची; फिर सिर झुका कर चुप हो गई। पैर के अँगूठे से धरती खोदने लगी।

रेवती को बड़ा कौतूहल हुआ। दौड़ कर वह पिता के पास आई और उनके गले में लिपट गई। बोली—बाबू जी ! तुम किसका ब्याह करोगे?

"अपनी गुड़िया का।"

"तुम्हारे भी गुड़िया है ?"

"हाँ, है क्यों नहीं !"

"दत, तुम क्या बच्चे हो ?"

"नहीं रेवा ; लेकिन गुड़िया मेरे पास भी है ; मैं इससे भी ज़्यादे धूमधाम से उसका ब्याह करूँगा।"

रेवती को फिर भी विश्वास नहीं हुआ—इतने बड़े बाबू जी, वह क्या गुड़िया खेलते होंगे?—वह खिलखिला कर हँस पड़ी। बोली—मुझे अपनी गुड़िया दिखा दो बाबू जी !

"नहीं बेटी, मैं तुम्हें अपनी गुड़िया न दिखाऊँगा।"

"तो क्या मैं तुम्हारी गुड़िया छीन लूँगी बाबू जी? तुम इतना डरते क्यों हो ? मुझे अलग ही से एक बार दिखा दो; छूने मत देना।"

भोली बालिका की सरलता पर माता-पिता—दोनों हँस पड़े। रेवती को गोद में खींच कर तिवारी जी ने कहा—मेरी गुड़िया तो तू ही है रेवा, मुझे तो तेरी ही शादी करनी है !

इस बार, फिर आश्चर्य और अविश्वास से उसने पिता की ओर देखा—क्या वह सचमुच ही गुड़िया है ? दुश ! वह पिता की गोद से उठ कर भाग गई। सुख की एक मधुर कल्पना से, तिवारी जी मुस्करा पड़े ; भाग्यवती ने एक भेद-भरी नज़र उन पर डाली। उस समय रेवती बारातियों को बिदा करने के इन्तज़ाम में लगी हुई थी।

उसके बाद, दो बरस हृदय के स्पन्दन की भाँति आए और चले गए। तिवारी जी की रेवती अब नौ बरस की हो गई। उसके विवाह की चिन्ता से वे अस्थिर हो उठे। कुलीन की कन्या है, अब उसे कब तक कुँआरी रक्खा जा सकता है !!

तिवारी जी की चिन्ता दिन-दिन बढ़ने लगी। कुलीनता का अभिमान उन्हें योग्यता और अयोग्यता पर विचार करने का अवकाश न देता था, वे कुलीन वर चाहते थे, सम्पन्न घर भी। यह दोनों ही एक साथ मिलना ज़रा मुश्किल है। रेवती के भाग्य में तो वैसा लिखा नहीं था। तिवारी जी हताश हो, सिर पर हाथ मार कर बैठ रहे—जो प्रारब्ध में लिखा है, वह तो होकर ही रहेगा। वे तो सब उपाय करके हार गए।

भाग्यवती ने यह रङ्ग-ढङ्ग देखा तो उसे बड़ी चिन्ता हुई—हे भगवान ! हमारी रेवती का क्या होगा ?—यह वाक्य बेअख़्तियार उसके मुँह से निकल गया। वह पति के पास जाकर बोली—इस तरह हाथ पर हाथ रख कर

कुमारी शान्तिलाल देसाई, बी० ए०

आपने बम्बई में खेले गए 'काका नी शशि' नामक अभिनय में, जिसमें वहाँ की बहुत सी प्रतिष्ठित महिलाओं और वकील-बैरिस्टरों ने भाग लिया था, बड़ी निपुणता के साथ चरित्र-नायिका का पार्ट अभिनीत किया है।

हिन्दू-समाज के खँडहरों को नन्दन-भवन बनाने का सद्प्रयत्न !!

विवाह और प्रेम

समाज की जिन अनुचित और अश्लील धारणाओं के कारण स्त्री और पुरुष का दाम्पत्य जीवन असुख और असन्तोषपूर्ण बन जाता है एवं स्मरणातीत काल से फैली हुई जिन मानसिक भावनाओं के द्वारा युवक और युवती का—स्त्री और पुरुष का सुख-स्वाच्छन्नपूर्ण जीवन घृणा, अवहेलना, द्वेष और कलह का रूप धारण कर लेता है, इस पुस्तक में स्वतन्त्रतापूर्वक उसकी आलोचना की गई है और बताया गया है कि किस प्रकार समाज का यह जीवन सुख-सन्तोष का जीवन बन सकता है।

लेखक ने देशीय और विदेशीय समाजों की उन समस्त बातों का, जो इस जीवन में बाधक और साधक हो सकती हैं, चित्रण किया है ! इसके साथ ही युवकों तथा पुरुषों के उन व्यवहारों एवं आचरणों की तीखी आलोचना की है, जिनसे विवाह की उपयोगिता, पवित्रता और मधुरता मारी जाती है ! लेखक के भावों में जो विवाह युवक और युवती के, पुरुष और स्त्री के प्रेम-जीवन की रक्षा नहीं कर सकते, वे विवाह विवाह नहीं होते, प्रत्युत उनके पूर्व-जन्मों के दुष्कर्मों के प्रायश्चित्त होते हैं, जिनको वे कष्ट, घृणा और अवहेलना के साथ व्यतीत करते हैं !!

पुस्तक के अन्तर्गत प्रत्येक परिच्छेद के शीर्षक

पुस्तक में स्त्री और पुरुष के जीवन की अनेक इस प्रकार की विवादग्रस्त बातों का निर्णय किया गया है, जिनका कहीं पता नहीं लगता। पुस्तक में स्वतन्त्र देशों के उन प्रसिद्ध विद्वानों और लेखकों के विचारों के उद्धरण दिए गए हैं, जिन्होंने स्त्री-पुरुष के जीवन को सुख सौभाग्य का जीवन बनाने के लिए प्रयत्न किया है और जिनके प्रभावशाली विचारों ने शिथिल और स्वतन्त्र जातियों के स्त्री-पुरुषों में स्फूर्ति उत्पन्न कर दी है ! सचित्र पुस्तक का मूल्य २) रु० मात्र !

☞ केवल विवाहित स्त्री-पुरुष ही इस पुस्तक को मँगाने की कृपा करें।

व्यवस्थापिका 'चाँद' कार्यालय, चन्द्रलोक, इलाहाबाद

बैठने से कैसे काम चलेगा? रेवती का बेड़ा कैसे पार लगेगा?

खिन्न होकर तिवारी जी बोले—आख़िर मुझे क्या करने कहती हो? मैं तो सब उपाय करके हार गया। अब जो होना होगा, होगा। मैं कहाँ तक हाय-हाय करूँ?

भाग्यवती—बेटी तुम्हारी है तो हाय-हाय और कौन करेगा? उसे कुँआरी तो रखना नहीं है। अधिक दिन अब 'बिन ब्याहे' भी नहीं रक्खा जा सकता। जैसा कुछ हो, कुछ न कुछ उसका ठौर-ठिकाना लगाओ। इस तरह जी छोटा करने से कैसे काम चलेगा?

तिवारी—रामसुन्दर के घर में एक लड़का था; मुझे पसन्द आया। घर भी अच्छा—कुलीन—है, वर भी सुन्दर है, पढ़ने को हिन्दी मिडिल पास है। लेकिन वे तिलक-दहेज इतना माँगते हैं कि बातचीत करने की भी हिम्मत नहीं होती। घर-दुआर के साथ हम लोग भी बिक जायँ तो शायद उसका आधा रुपया इकट्ठा न हो सके; फिर बारात का सारा ख़र्च ऊपर से है!

भाग्यवती—जगमोहन के यहाँ भी तो कोई लड़का था न?

तिवारी जी—वह भी सब तरह से योग्य है, लेकिन, लोग कहते हैं, उसके कुल में सभी लड़के २०-२५ बरस से ज़्यादा उमर नहीं पाते। जान-बूझ कर अपनी रेवा के साथ फिर मैं ऐसा घात कैसे करूँ?

भाग्यवती—तब और कहीं तलाश नहीं किया? हरसुन्दरपुर वाले लड़के का कुछ पता नहीं मिला?

तिवारी जी—अभी नहीं, लेकिन पुरोहित जी को कल वहीं भेजा था। अब आते ही होंगे। देखो क्या होता है!!

कहने भर की देर थी, पुरोहित जी हाज़िर हो गए। उन्हें देख कर भाग्यवती ने घूँघट सँभाल लिया, हट कर किवाड़ की ओट में बैठ गई। पुरोहित जी ने जै-जैकार करते हुए अपना विशाल शरीर आसन पर रख दिया। बैठने के बाद उनकी साँस ऊपर-नीचे होने लगी, दम फूलने लगा। कई मिनट तक बेचारे कुछ बोल ही न सके।

तिवारी जी ने पूछा—कहिए महाराज! क्या हुआ?

अपनी विशाल तोंद पर हाथ फेरते हुए, फिर इस कार्य से फ़ुर्सत पाकर अपने दोनों नथनों में सुरती की बुकनी भरते और पटाख़े की तरह छींकते हुए पुरोहित जी, बड़े इतमीनान से धीरे-धीरे बोले—भगवान जो कुछ भी करते हैं, वह भले के लिए ही करते हैं जजमान! हमारी यह बात लाख रुपए की है, इसे गाँठ बाँध लो। देर हो गई, और तुम्हें इतनी हैरानी उठानी पड़ी, इतना दुःख हुआ, लेकिन रेवती को राजरानी होकर रहते देखोगे तो यह सारा दुःख और हैरानी सफल मानोगे। लड़का बड़ा योग्य है, कुल की तो बात ही क्या; वैसे कुलीन बड़े भाग्य से मिलते हैं; और धन तो अपार है, कोई ख़र्च करने वाला नहीं है।

तिवारी जी अधीर हो रहे थे। बोले—आप किसे देख आए हैं? किसकी बात कहते हैं? कुछ बातचीत तय भी हो पाई? लेने-देने का क्या हिसाब है?

पुरोहित—सब ठीक है जजमान! बस यह जानो कि बड़ी मुश्किल से किसी तरह राज़ी कर पाया हूँ; पहले तो वे विवाह करने पर ही राज़ी न थे; कहने लगे कि भाग्य में ही नहीं है तो पाँच शादी करने से लाभ ही क्या है, लेकिन जब बहुत समझाया-बुझाया, धर्म-शास्त्र की बातें बताईं, तब जाकर कुछ पसीजे। कहने लगे अच्छा है, जो चाहिए सो कीजिए, अब मैं आपसे क्या कह सकता हूँ?

तिवारी जी—उनकी और भी शादी पहले हो चुकी है क्या?

पुरोहित—हाँ, एक स्त्री अभी वर्तमान है; लेकिन उससे क्या होता है जजमान! यह तो अपने यहाँ की प्रथा ही है। कुछ दोष तो इसमें है नहीं, फिर ऐसा घर-बर और कहीं तुम्हें मिलेगा भी नहीं। अगर यह सम्बन्ध तुम स्वीकार न करोगे, तो फिर ऐसा सुनहला अवसर जीवन में और कभी न मिलेगा जजमान! तुम सोच-समझ लो, लेकिन सोचने-समझने की इसमें कोई बात नहीं है।

तिवारी जी, अपने प्रयत्नों में हार चुके थे। उन्हें कोई आशा न रह गई थी। पुरोहित जी की बातों ने और उनके कहने के ढङ्ग ने तिवारी जी को कुछ प्रभावित भी किया; और अन्त में वे इस ओर कुछ-कुछ आकर्षित भी हुए। पूछा—लड़के की उमर क्या होगी महाराज?

तिवारी जी के प्रश्न से पुरोहित महाराज ज़रा घबराए। सिर खुजलाते हुए बोले—उमर तो जजमान, कुछ वैसी कड़ी नहीं है; मगर घोड़े से गिर जाने के कारण

आगे के दो दाँत टूट गए हैं। इधर-उधर के कुछ बाल भी सफ़ेद हो गए हैं; कहते थे, बचपन में तबीयत बहुत शौक़ीन रही है, न जाने कितना विलायती तेल और इतर लगा डाला है। लेकिन तुम इसका कुछ ख़्याल न करो जजमान!

इसके बाद पुरोहित जी ने, देर तक, न जाने क्या-क्या बातें तिवारी जी को चुपके-चुपके समझाईं, फिर आशीर्वाद देते हुए उठ कर चले गए।

भाग्यवती पर्दे से बाहर निकली तो उसकी आँखों में आँसू भरे हुए थे। बोली—बूढ़े से बेटी का ब्याह करोगे?

आवाज़ में कुछ ऐसी वेदना थी कि तिवारी जी सिहर उठे। बोले—तुम ऐसा न कहो रेवा की अम्माँ! बड़ी मुश्किल से यह जोग लगा है तो तुम रो-धोकर मेरा जी छोटा न करो। आख़िर, अब मेरे लिए उपाय ही क्या है? ऐसा घर-वर तो मुझे चिराग़ लेकर ढूँढ़ने पर भी कभी न मिलेगा; फिर इसे न कुछ तिलक देना है, न दहेज। पुरोहित जी कहते थे कि कुछ दबाव डाला जाय तो बारात की ख़ातिरदारी का सारा इन्तज़ाम भी वह अपने ही ऊपर ले लेगा। इससे बढ़ कर अब और क्या हो सकता है! और सब से बड़ी बात तो यह है कि प्रारब्ध का लिखा कोई मिटा नहीं सकता। अगर रेवा के भाग्य में यही वर होगा तो इसे कोई दूर नहीं कर सकता और अगर नहीं होगा तो कोई ज़बरदस्ती यह शादी करा भी नहीं सकता।

भाग्यवती का मुँह अब बन्द हो गया। उसने केवल यही कहा—'तुम रेवा की माँ क्यों नहीं हुए' और वह चुप हो गई। उसकी आँखें, उस समय, उमड़ने वाली सावन-भादों की नदी की तरह उमड़ रही थीं। वह उठ कर झपट वहाँ से अन्दर चली गई।

यह सब तो हुआ, किन्तु शादी ठीक ही हो गई। प्रायः साल भर तक इधर-उधर ठोकरें खाने के बाद भी, जब तिवारी जी इससे अच्छा कोई सम्बन्ध स्थिर नहीं कर सके थे, तो इसकी अवहेलना करना, उन्हें किसी प्रकार अभीष्ट नहीं था। इसके सिवा, पुरोहित जी ने उन्हें कुछ ऐसी पट्टी पढ़ाई थी कि उनकी आँखों पर मोह का जो एक रङ्गीन पर्दा पड़ गया था, उस पर्दे को भेद कर, अपने भले-बुरे को देखने की शक्ति उनकी आँखों में शेष नहीं रह गई थी। रह गई होती भी शायद, तो वे उसकी ओर से आँख फेर लेते, क्योंकि लोभ का प्रभाव, उनके शरीर में विष की तरह फैल गया था। उस समय रेवा का भविष्य उनकी आँखों से अतीत के स्वप्न से भी अधिक दूर चला गया था।

विवाह निश्चित हो गया और उसकी तैयारियाँ भी होने लगीं; किन्तु कौन जानता है, उस छोटे से परिवार के भिन्न-भिन्न हृदयों में कौन सा द्वन्द चल रहा था?

छः

बारात दरवाज़े पर आ लगी तो अपने-अपने मन में सभी एक अलग-अलग कल्पना लेकर वहाँ टूट पड़े। अपनी निराशा भरी आँखों से—दूर से ही—भाग्यवती ने भी अपने दामाद का मुँह देखा, और वह ऐंठ कर रह गई। वर को देख कर सभी लोग आपस में अनेक प्रकार की बातें करने और रेवा के प्रारब्ध की निन्दा करने लगे। तिवारी जी ने जब वर की शकल देखी तो सिर पीट लिया। आरम्भिक रस्मों को समाप्त करके उन्होंने पुरोहित जी से कहा—महाराज! आपने हमारा यह सर्वनाश क्यों किया?

हतबुद्धि से पुरोहित जी मुँह ताकने लगे। बहुत देर बाद बोले—अब तो जो होना था, वह हो ही गया जजमान! इस समय तुम अपना जी न छोटा करो। रेवती के प्रारब्ध की बात है। उसकी रेख में कौन मेख मार सकता है? हाँ, यह मैं अभी भी कहे देता हूँ, तुम्हारी रेवती को कोई तकलीफ़ न होने पावेगी।

तिवारी जी दाँत पीस कर रह गए। वे कैसे बतलावें इस नर-राक्षस को कि रेवा को कोई तकलीफ़ हो सकती है या नहीं! एक चीख़ उनके मुँह से अनायास ही निकल गई और वे "बड़ा धोखा हुआ, पुरोहित जी!" कह कर धड़ाम से ज़मीन पर गिर पड़े।

अन्दर उस समय कुहराम मचा हुआ था। तिवारी जी दौड़े हुए वहाँ गए तो मालूम हुआ, भाग्यवती को ग़श आ गया है। थोड़ा सा शीतल उपचार करने पर जब उसे होश आया तो बड़ी ज़ोर से चीख़ कर वह रो उठी—अरे किस अपराध से तुम लोगों ने हमारी बिटिया को कुएँ में ढकेल दिया है रे!! यह कैसी अनसोची बात हो रही है भगवान!!!

तिवारी जी बड़े सङ्कट में पड़े। क्या कह कर वे भाग्यवती को धीरज दें? किस मुँह से उससे कहें कि तुम्हारी बेटी को कोई दुःख न होगा? वे स्वयं भी बच्चों की तरह फूट-फूट कर रो उठे। दो हृदयों के उच्छ्वसित क्रन्दन का वह वेग कितना मर्मस्पर्शी था! कितना करुणापूर्ण!! श्रोह!!!

किन्तु तिवारी जी ने पत्थर से भी कठोर कलेजा बनाया। बोले—मङ्गल के समय तुम रो-धोकर बेटी का श्रमङ्गल न करो। जो होना था, वह तो हो चुका। रोने से श्रब कोई लाभ नहीं है। चलो, उठ कर काम देखो।

उसी तरह रोती-रोती भाग्यवती बोली—जो होना है, वह तो श्राज मेरी श्राँखों में साफ़ झलक रहा है। श्रब श्रौर क्या होगा? जो कुछ होना था, वह सब कुछ हो गया। श्राज हमारी रेवा बे माँ-बाप की हो गई।

भाग्यवती की बातें सुन कर, वहाँ उपस्थित श्रनेक स्त्रियाँ रो पड़ीं। तिवारी जी की श्राँखें भी झरने लगीं। लेकिन श्राख़िर, वे लोग कब तक रोते? क्रन्दन-वेग धीरे-धीरे क्षीण से क्षीणतर होता-होता, श्रन्त में रुक गया। धीरे-धीरे सभी श्रपने-श्रपने काम-धाम में लगे।

यह सारी बातें ही बालिका रेवती के निकट पहेली सी जान पड़ती थीं। इस फैले हुए शोक-सागर श्रौर क्रन्दन की लहरों का श्रर्थ वह कुछ न समझ पाती थी। ब्याह में भला रोने-पीटने का क्या काम? ब्याह तो उसके निकट सदा ही हँसी-ख़ुशी श्रौर श्रानन्द मनाने का श्रवसर रहा है। वह भी तो श्राख़िर श्रपनी गुड़ियों का ब्याह कर चुकी है! बाबू जी यह कैसी गुड़िया का ब्याह कर रहे हैं?

कौतूहल जब बहुत बढ़ गया, तो—लोगों के रोकने श्रौर मना करने पर भी—वह बाबू जी के पास पहुँच ही गई। श्राज भी वह श्रपने बाबू जी के लिए वही चार-छः साल की, गुड़ियों का ब्याह करने वाली, रेवती थी। जाकर वह दुलार से बाबू जी की गोद में बैठ गई। उसे देखते ही तिवारी जी के हृदय का बाँध टूट गया। वे फिर रो पड़े।

चुप होने पर रेवती ने पूछा—यह कैसी गुड़िया का ब्याह तुम कर रहे हो बाबू जी? तुमने तो कहा था कि मुझसे भी श्रधिक धूमधाम से तुम श्रपनी गुड़िया का ब्याह करोगे। उसका मतलब क्या यही है?

रोते ही रोते तिवारी जी ने कहा—श्रपनी गुड़िया के ब्याह को जितना श्रासान समझा था, उतना वह रहा नहीं बेटी!!

कह कर तिवारी जी ने रेवती को ज़ोर से गोद में छिपा लिया श्रौर हिचक-हिचक कर रोने लगे। श्रनेक स्त्रियाँ श्राकर रेवती को उनकी गोद से छीन ले गईं।

ग

विवाह तो भली-बुरी तरह से निबट ही गया। हरसुन्दरपुर के बूढ़े बाबा, श्रपनी पोती सी रेवती को, सन्तान-सुख के लिए ब्याह लाए।

रेवती के पति का नाम था शिवदास। कुलीन थे, धनी थे, नई उमर में शायद सुन्दर भी रहे हों! श्रब तो चौथापन था; श्राखें धँस गई थीं, गाल पिचक गए थे, मुँह निस्तेज हो गया था श्रौर दाँत हवा के झोंके से झूमने वाले छोटे-छोटे वृक्षों की नक़ल कर रहे थे। घर में एक विवाहिता बुढ़िया के श्रतिरिक्त दूसरा श्रौर कोई न था। रेवती को इसी परिवार में श्राना पड़ा।

वह उसकी सुहागरात थी। माँ-बाप से श्रलग करके, ज़बरदस्ती, वह एक बधिक के सङ्ग कर दी गई थी। समाज जिसे विवाह के नाम से पुकारता है, धर्म-शास्त्र जिसे प्रेम श्रौर पुण्य श्रौर स्वर्ग-नरक की दुहाई देकर, एक पवित्र बन्धन कहता है, उसी निर्मम श्रौर श्रनावश्यक बन्धन में बँधी हुई निरीह रेवा श्राज भविष्य की किसी श्रतीन्द्रिय विभीषिका से विह्वल हो रही है। संसार की स्त्रियों के लिए जो रात्रि सब से श्रधिक सुन्दर, सबसे श्रधिक प्रिय श्रौर सब से श्रधिक पवित्र होती है, वही रात्रि रेवा के लिए कालरात्रि हो रही है। उसी रात्रि के टल जाने की कामना करती हुई रेवा ने एक बार श्रार्त-व्यथित वाणी में, विह्वल स्वर से, ईश्वर को पुकारा। उसने पुकारा—हे भगवान! इस दुःशासन से मेरी रक्षा करो, इस कीचक से मेरा उद्धार करो।—किन्तु कौन जानता है, उसकी पुकार ईश्वर ने सुनी होगी?

लेकिन समय की गति को रेवती के दुख-सुख की परवाह ही क्या थी? वह तो मन्द-मन्थर गति से श्रपने पैर बढ़ाता हुश्रा रात्रि को ले ही श्राया। रेवती एक कमरे में बन्द की गई श्रौर बूढ़े शिवदास ने खाँसते-खाँसते उसमें प्रवेश किया।

रेवती बालिका थी, भोली थी, निरीह थी ज़रूर; लेकिन किसी बात को समझने के लिए वयस्क होने की ज़रूरत नहीं पड़ती। परिस्थिति और वस्तु का स्वरूप, स्वयं ही लोगों को सारी बातें समझा देते हैं। यद्यपि रेवती विवाह को गुड़ियों के खेल से अधिक अब तक और कुछ न समझती थी; किन्तु किसी अभावनीय और अज्ञात इङ्गित ने उसके मन में शिवदास के प्रति घोर घृणा भर दी थी। माता-पिता और परिजनों के रोदन ने उसके मन में यह विश्वास जमा दिया था कि अवश्य ही यह बूढ़ा उनके लिए सुखद न सिद्ध न हो सकेगा। इसीसे शिवदास को घर में आते देख कर लज्जा से, भय से और सङ्कोच से, रेवती एक कोने में दब गई। शिवदास पलँग पर आकर लेट रहे।

पहले तो थोड़ी देर तक वे पलँग पर पङ्ख फड़फड़ाते रहे, किन्तु वहाँ जब उन्हें रेवती तो क्या, उसकी सुगन्ध भी न जान पड़ी, तो पलँग से उतर कर, अँधेरे में हाथ फैला-फैला कर चारों ओर उसे ढूँढ़ने लगे। एक बार पलँग के पावे को पकड़ कर वे देर तक उसे झकझोरते रहे, किन्तु निर्जीव पलँग जब ज़रा भी टस से मस न हुआ तो उसे छोड़ कर आगे बढ़े; फिर एक टूटी हुई कुर्सी पर हाथ लगाया तो वह उनके शरीर ही पर आ रही; बेचारे हाय-हाय करते दूर हट गए। अन्त में रेवती को उन्होंने पकड़ ही लिया। बेचारी को जैसे बिजली लग गई हो! सारा शरीर झनझना उठा। बूढ़ा प्रेत की भाँति उसे पकड़े हुए था और वह जाल में फँसी हुई हिरनी के समान थर-थर काँप रही थी।

रेवती ने बूढ़े का हाथ झटक दिया; किन्तु उसने बड़ी मज़बूती से पकड़ रक्खा था। वह हाथ छुड़ा न सकी। बूढ़े ने उसे अपनी ओर खींचा। शक्ति भर रेवती उससे अलग होती रही; लेकिन जब उसकी सारी शक्ति ख़तम हो गई और बूढ़ा उस पर बल प्रयोग करता ही रहा, तो पास ही पड़ा हुआ 'पनडब्बा' उठा कर रेवती ने भरपूर शक्ति से बूढ़े की ओर चलाया। डब्बा बूढ़े साहब की नाक पर जा रहा। ज़ोर से चीख़ कर और नाक पकड़ कर वे ज़मीन पर बैठ गए। रेवती किवाड़ खोल कर घर से बाहर निकल गई।

इधर तो यह काण्ड हो रहा था, उधर रेवती की बूढ़ी सौत ने ज़हर खा लिया था। विष की गर्मी जब शरीर में फूट उठी तो पीड़ा से वह अलग ही चीख़-चिल्ला रही थी, कुछ ही क्षणों की मेहमान थी। इसलिए रेवती वहाँ जाकर तमाशा देखने लगी। उस समय कई नौकर-चाकर वहाँ उपस्थित हो गए थे।

इन सबों का फल अनुरूप ही हुआ। सवेरा होने के पहले ही, रेवती की बूढ़ी सौत तो कूच का डङ्का बजा गई और शिवदास नाक पर मरहम-पट्टी लगा कर बैठे। उसके बाद से ही उनकी साँस की पुरानी बीमारी उखड़ गई और दो-ढाई महीनों के बाद सारे रोग-दोषों से मुक्त होकर वे रेवती को अकेली छोड़ गए।

२

आठ वर्ष बीत गए।

रेवती अपने घर की स्वामिनी थी, राजरानी थी। घर में खाने-पीने, पहनने-ओढ़ने, किसी का भी दुख न था। लेकिन कोई अभाव रह-रह कर उसके हृदय में काँटे की तरह खटक उठता था, एक पीड़ा बार-बार उसके हृदय में कसक उठती थी, एक क्रन्दन की क्षीण-व्यथित रागिनी उसके कानों में सौ-सौ झङ्कारों से गूँजा करती थी। अनेक बार, समझने की चेष्टा करने पर भी, वह समझ न पाती थी कि उसके प्राणों में खौलने वाला वह अभाव, वह वेदना क्या है? इस नासमझी में क्या कम पीड़ा थी, कम दर्द?? ओः!!

शिवदास की मृत्यु के बाद, कुछ दिनों वह अपने माँ-बाप के घर रही। वहाँ उसने पढ़ना-लिखना सीखा। सीखा तो कुछ शौक़ भी हुआ। मनोयोगपूर्वक पढ़ने लगी। दुनिया की कुछ जानकारी हुई। देश-विदेश की रीति-रस्मों से जान-पहचान हुई। नई-नई भावनाओं की जागृति हुई। पढ़-लिख कर उसकी आँखें खुलीं। उसने देखा, दुनिया को जो कुछ भी वह समझती थी, दुनिया ठीक वही नहीं है। उसको समझना कुछ इतना आसान, इतना सरल नहीं है! हाँ, वह इतनी ही विशाल और ओर-छोर विहीन है!! जितना ही उसे समझने की चेष्टा की जाती है, उतनी ही वह उलझन-दार बनती जाती है।

कुछ दिन तो ऐसे बीते। लेकिन, उसके बाद? उसके बाद ही यौवन की उच्छृङ्खल आँधी आई। यौवन के रङ्गीन सपने उसकी आँखों में नाच उठे। यौवन के

सुनहले सपने उसकी पलकों पर थिरकने लगे। किन्तु उसकी भारतीय संस्कृति बार-बार उसे सजग कर देती थी—वह विधवा है! उसे प्रेम करने का, यौवन को आमन्त्रित करने का, किसी से आदर-प्यार पाने का कोई अधिकार नहीं है। धर्म और समाज की ऐसी ही आज्ञा है। फिर, कभी-कभी उसे याद आ जाता, वह पतिघातिनी है, स्वयं उसीने अपने पति को मार डाला है। किन्तु,—इसके बाद ही वह सोचती—इस हत्या का उस पर कितना उत्तरदायित्व है? क्या इस हत्या का सारा पाप उसीके मत्थे है? क्या समाज का इसमें कोई दोष नहीं है? क्या समाज इस अप्रिय घटना के लिए रत्ती भर भी ज़िम्मेदार नहीं है?—यह बात उसका हृदय क़बूल न कर सकता था।

यह सब तो ठीक, लेकिन यौवन के उच्छृङ्खल अश्वों की बागडोर कौन थामे? किस ज़िम्मेदार हाथों में यह लगाम देकर रेवा निश्चिन्त हो जाय? एक,—एक बार यह प्रश्न उसके माथे में खलबली मचा देता था। वह अस्थिर हो जाती, उद्विग्न, अशान्त !!

एक,—एक बार किसी से प्यार पाने के लिए, किसी की प्रेमपूर्ण चितवन देखने के लिए, किसी की मधु-भरी दो बातें सुनने के लिए और आवेश से विह्वल होकर उस पर अपने को छोड़ देने के लिए रेवा का मन आकुल हो उठता था। ललचाई हुई, अपनी बड़ी-बड़ी आँखें फैला कर वह देखती—दूर तक फैला हुआ सूना प्रान्तर पड़ा है—अन्धकार और निर्जनता से भरा हुआ। कौन जानता है, उसके उस पार आशा की चमकती हुई कोई क्षीण-रेखा है भी या नहीं? उसकी आशा, समाज-शासन की निष्ठुर मरुभूमि में, धू-धू करके जल रही थी, और उसकी स्थिर-धीर-निश्चल आँखें उसे देख रही थीं। उसका हृदय अशान्त था, संसार उसे सूना दीख पड़ता था। केवल एक लम्बी उसाँस के बल पर उसके दिन कट रहे थे।

किन्तु, यह आधार कितना क्षीण था, कितना दुर्बल! वह अधिक दिनों तक रेवा का भार सँभाल नहीं सका। रेवा के विचारों में एक दिन क्रान्ति की आग लग ही गई। उसका हृदय विद्रोही हो उठा। उस विवाह को, विवाह मानने के लिए उसका हृदय किसी प्रकार तैयार न हो सका, जो उसकी असम्मति से, उसके अज्ञान में, बल-पूर्वक समाज ने कर दिया था। यह विवाह था या बलि-दान? रेवती एक बार भीषण अट्टहास कर उठी।

रमाकान्त एक सुन्दर, बलिष्ठ, सदाचारी नवयुवक था। बचपन से इस घर में आता-जाता था। रेवती का ध्यान आज के पहले कभी उसकी ओर नहीं गया था। आज पहले-पहल उसे देख कर वह अनुरक्त हुई। चार आँखों ने मौन भाषा में बातचीत की और झुक गईं। रेवती ने, रमाकान्त को अपना सर्वस्व समर्पण कर दिया। पहले-पहल आज उसने खुल्लम-खुल्ला समाज के प्रति अपना विद्रोह प्रकट किया।

बात छिपाने की चेष्टा रेवती ने नहीं की थी, उसे इसकी कोई आवश्यकता न जान पड़ी थी, क्योंकि वह जानती थी, उसका प्रेम वासना और पाप का नहीं है। शुद्ध हृदय से, उसने अपना पवित्र प्रेम रमाकान्त पर न्यौछावर कर दिया था, यह बात यदि दुनिया जान ही जाय, तो इससे उसका क्या हानि-लाभ है?

दुनिया, लेकिन, इस बात का अर्थ ठीक इसी तरह नहीं समझती। जहाँ-तहाँ इस बात की चर्चा होने लगी। देखने वाले, कलियुग की यह लीला विस्मय-विस्मित अपनी आँखें फाड़-फाड़ कर देखने लगे।

एक दिन रमाकान्त ने रेवती से कहा—प्रिय, यहाँ तो अब घर से बाहर निकलना मुश्किल हो गया है। यद्यपि हम यह जानते हैं कि हमने कोई बुरा काम नहीं किया है और हम बुरे रास्ते पर नहीं हैं, किन्तु दुनिया जिसे बुरा कहती है, उसके बीच में रह कर, उसीको भला कह कर चलना तो बहुत आसान नहीं है।

रेवती ने सब सुना। सिर झुकाए चुपचाप खड़ी रही। वह रमाकान्त की इच्छा जानना चाहती थी।

रमाकान्त ने वह भी कहा—अब तो यहाँ रहना बहुत कठिन हो रहा है। अच्छा होता, यदि हम लोग कुछ दिन कहीं बाहर चल कर रहते; फिर, यह बात जब लोगों को भूल जाती तो कोई नई व्यवस्था की जाती।

रेवती को इसमें आपत्ति ही क्या थी? रमाकान्त को जिससे सुख मिल सके, उसे करने को वह सदैव ही तैयार थी।

सामान बाँधा गया। नगद रुपए और गहना-कपड़ा बाँध कर वे दोनों एक दिन उस गाँव से अन्तर्हित हो गए।

काशी के एक गन्दे मुहल्ले में किराए का मकान लेकर दोनों रहने लगे। कुछ दिन प्रेम और आनन्द और सुख की सरिता में कल्लोल करते हुए ही बीत गए; लेकिन उन दोनों का प्रेम स्थायी न हो सका। रेवती को कुछ घमण्ड हो गया था। वह समझती थी, रमाकान्त को प्यार करके, उसे अपना कर, उस पर अपने को न्यौछावर करके उसने रमाकान्त पर अनुग्रह किया है। रमाकान्त को इस बात का आभार मानना चाहिए, उससे दबना चाहिए। यह बात मानने के लिए, किन्तु, रमाकान्त तैयार न था। प्रेम को प्रेम समझ कर ही उसने रेवती का स्पर्श किया था, उसके प्रेम की गङ्गा में, भय छोड़ कर, कूद पड़ा था। अब ऊँच-नीच का यह भेद उसे असह्य मालूम पड़ने लगा। प्रेम का जो बन्धन—यौवन के ज्वार के साथ कस गया था, भाटा के साथ, शिथिल होने लगा। दोनों में अनबन रहने लगी। बात-बात पर लड़ाई-झगड़ा होने लगा। प्रेम का नशा उतर गया था, सुख के सपने दूर हो गए थे।

अन्त में यह परिस्थिति दोनों ही के लिए असह्य हो उठी। दोनों ही सोचने लगे कि अब इस हालत में अधिक समय तक नहीं रहा जा सकता। दोनों ही, जीवन बिताने के लिए कोई नया उपाय सोचने लगे। दोनों ही भविष्य की चिन्ता से आकुल हो उठे।

सहसा एक उपाय रमाकान्त की आँखों में एक दिन चमक उठा। उसकी अच्छाई, बुराई का निर्णय करने का उसे अवकाश नहीं था। एक पैशाचिक हँसी उसके मुँह पर खेल गई। मुट्ठी बाँध कर वह देर तक दाँत पीसता रहा।

त

सवेरे उठ कर रेवती ने देखा, घर में रमाकान्त नहीं है। एक आकुल-आशङ्का ने उसका हृदय मथ डाला। वह घर के कोने-कोने में उसे ढूँढ़ आई; लेकिन रमाकान्त कहीं न था। सन्दूक़ खुला हुआ पड़ा था। जाकर देखा, उसमें एक कौड़ी शेष नहीं रह गई है। गहनों के साथ ही एक-एक पैसा रमाकान्त अपने साथ लेता गया है। वह क्षणभर में अनाथिनी हो गई। उसे अपनी सहायहीनता और बेबसी पर रोना आया। जीवन में—शायद पहली बार—जी खोल कर वह रो उठी।

उसके बाद? उसका पथ निश्चित था। घर में अब वह क्षण भर भी नहीं रह सकती थी। कल मकान वाला, घर का किराया माँगने वाला, आवेगा तो वह कहाँ से देगी? मोदी अपना हिसाब लेने आवेगा तो वह कौन उपाय करेगी? और, सन्ध्या को स्वयं उसे ही भूख लगेगी, तो क्या खाकर वह अपनी भूख-प्यास बुझावेगी? वह अबला थी, असहाय थी; घर छोड़ कर गली-गली ठोकर खाने के अतिरिक्त, अब और कोई उपाय उसके लिए शेष न रह गया था।

वह गली में निकल आई। आज अनुताप और वेदना का भयानक झञ्झावात उसके हृदय में प्रवाहित हो रहा था। कल की राजरानी रेवती आज अपने ही कर्मों से गली-गली ठोकर खाने वाली भिखारिन बन रही है! लेकिन, इन बातों से क्या लाभ !!

रेवती आगे बढ़ी। दिन भर गलियों में इधर-उधर भटकती रही। उसे किसी से कुछ माँगने का, कुछ कहने का साहस न हुआ। भीख कभी उसने माँगी न थी, सहसा यह नया काम, उसके किए किसी प्रकार न हो सका। वह थक कर एक घर के चबूतरे पर बैठ गई।

जिस घर के चबूतरे पर बैठी थी, वह किसी मुसलमान का था। सन्ध्या होने में उस समय अधिक देर न थी। सूर्य का प्रकाश क्षीण हो गया था। गलियों में अन्धकार व्याप्त हो रहा था। दरवाज़ा खोल कर एक व्यक्ति जब बाहर निकला तो उसे रेवती दीख पड़ी। देख कर वह स्तब्ध हो गया। उसके हृदय की पाशविक वृत्ति उत्तेजित हो उठी। भोजन देने के बहाने अन्दर ले जाकर, उस व्यक्ति ने, रेवती को एक कोठरी में बन्द कर दिया। फिर, मकान का ताला बन्द करके घर से बाहर निकल गया।

रेवती के मन की हालत इस समय कौन समझ सकता है? वह उन्मत्त हो रही थी। उसे मालूम हो रहा था कि किस प्रकार उसने अपने आप ही अपना सर्वनाश कर लिया है। उसे मालूम हो रहा था कि हिन्दू नारी इस देश में कितनी दुर्बल, कितनी असहाय और कितनी अरक्षित है !!! वह बार-बार दीवार पर अपना सिर पटक देती थी; लेकिन उसकी आर्त-व्यथित ध्वनि सुनने वाला वहाँ कौन था? शून्य में उठने वाला उसका चीत्कार, शून्य में ही विलीन हो जाता था।

बड़ी रात बीते, जिस समय वह मुसलमान घर लौटा, उस समय उसके मुँह से शराब की दुर्गन्ध आ रही थी; पैर लड़खड़ा रहे थे और वह मन ही मन न जाने क्या बक रहा था।

किवाड़ खोल कर, वह अन्दर घुसा। उस समय रेवती को तन्द्रा आ गई थी। रोते ही रोते, न जाने कब, उसकी आँखें लग गई थीं। किवाड़ खुलने की आवाज़ उसने सुनी तो चौंक उठी। काँप कर खड़ी हो गई।

अन्दर आकर उस बेहोश शराबी ने उसे छेड़ना शुरू किया। बहुत देर तक वह अपने को बचाती रही आख़िर उस मुसलमान ने रेवा को पकड़ लिया। वह बड़ी ज़ोर से चिल्ला उठी और साथ ही साथ, किवाड़ खोल कर एक भद्र पुरुष अन्दर घुस आए। रेवती की हालत देख कर उन्होंने मुसलमान से उसे छुड़ाया और "चलो बेटी, मेरे साथ चलो" कह कर और रेवती को साथ लेकर बाहर चले आए। गली में आकर, उन्होंने दरवाज़ा बाहर से बन्द कर दिया और अपने साथ रेवती को लेकर चल पड़े। मुसलमान अपने घर में ख़ुद ही क़ैद हो गया।

रास्ते में अपनी करुण कहानी रेवती ने, उस भले आदमी को सुनाई। उसे विश्वास हो गया था कि उसने जब बेटी कह कर उसे पुकारा है तो वह अपना धर्म पालन भी करेगा और इसी विश्वास से उसने अपनी कथा उसे सुनाई थी। सुन कर उसने कुछ कहा नहीं। पूछने पर बतलाया कि ब्राह्मण है और पास ही के किसी मकान में रहता है। घर में एक स्त्री और एक लड़के के अतिरिक्त और कोई नहीं है।

उस व्यक्ति के घर में रात रेवती की अच्छी तरह ही गुज़र गई। सवेरे उठ कर रेवती ने देखा कि उसके और उस पुरुष के अतिरिक्त तीसरा कोई व्यक्ति उस घर में नहीं है। पूछने पर उत्तर मिला—स्त्री अपने बाप के घर गई है और लड़का उसीको लिवाने गया है। दो-एक रोज़ में लौटेगा।

अपेक्षाकृत निश्चिन्त होकर रेवती बैठ रही।

कई दिन बीत गए। कोई लौट कर आया नहीं। मकान वाले की चेष्टा भी बदलने लगी। अब वह रेवती को बेटी नहीं, रेवा और रेवती कह कर पुकारता था। बात-चीत और रहने-सहने का ढङ्ग भी बदल गया था। रेवती यह सब देख-सुन कर मन ही मन भयभीत हो रही थी।

एक दिन मकान वाले ने अपना असली रूप प्रकट किया। उस समय रेवती रसोई बनाने जा रही थी। कड़ाई में तेल खौल रहा था। मकान वाले की बात सुन कर रेवती उछल पड़ी; क्रोध से दाँत पीस कर बोली—मैं सब कुछ हूँ, लेकिन पापिनी—कलङ्किनी नहीं हूँ। तुम लोग क्यों मेरी जान के पीछे पड़े हो? मेरे इस रूप के लिए ही न? लो, अब यह रूप नहीं रह जायगा। इसे तुम्हारे देखते-देखते मैं नष्ट किए डालती हूँ। फिर, तुम्हें भी देखूँगी और दुनिया को भी देखूँगी, किस तरह वह मुझे प्यार करने को उमड़ आती है!!

खौलती हुई तेल की कड़ाई उठा कर रेवती ने अपने मुँह पर उड़ेल ली। पीड़ा से एक बार वह चीत्कार कर उठी; फिर ज़मीन पर गिर कर तड़पने लगी।

विश्व-दृष्टि के अलक्ष्य में, उस समय, सौन्दर्य के स्रष्टा की आँखों से भी आँसू की दो बूँदें ढुलक पड़ी थीं।

हिन्दू-विधवा

[श्री० देवीप्रसाद जी गुप्त 'कुसुमाकर', बी० ए०, एल्-एल्० बी०]

पावन परम प्रकृति-नियमों को
हमसे कहते हो तोड़ें !
मन की इच्छाओं को रोकें,
दुनिया से मुख को मोड़ें ॥

करें निरादर उन भावों का,
उनको चूर-चूर कर दें—
जो यौवन के साथ उठे हैं,
मन से उन्हें दूर कर दें ॥

मृगछौनों की भाँति झुण्ड में—
सिंहों के, रह कर विचरें ।
शङ्कित हो आतङ्कित होकर—
निशि दिन काँपें और डरें ॥

फिर भी जग में साथी कोई—
रहे नहीं रक्षक बन कर ।
प्रबल दुष्ट अन्यायी हमको—
खा जावें भक्षक बन कर ॥

नियमों के बन्धन में कितनी—
हैं जकड़ी जाने वाली ।
दुष्टों के कामुक फन्दों में,
नित पकड़ी जाने वाली !!

अपने दुःख-दर्द का रोना
जो निशि दिन ही रोती हैं—
और मूर्ख हिन्दू-समाज से,
नित्य तिरस्कृत होती हैं ॥

मानवीय अधिकार छीन कर
बना रखी हैं विधवाएँ ।
कहते हो हम तरस-तरस कर
घुल-घुल कर ही मर जाएँ ॥

तृप्त वासनाएँ अपनी तुम,
विधवाओं से करते हो ।
गर्भ रहे तो दोष उन्हीं पर,
हो निलज्ज तुम धरते हो !!

झूठे ढोंग, स्वार्थ-रत होकर
बिना विवेक बनाते हो ।
करके पतित वहिष्कृत हमको,
अपनी खैर मनाते हो ॥

ठुकरा कर हमको, तुम अपनी—
झूठी आन बचाते हो ।
हमें विधर्मी हो जाने को,
तुम लाचार बनाते हो ॥

नई नवेली दुलहिन को तुम
चौथे पन में लाते हो ।
पर यौवन में हमें त्याग का—
पावन पाठ पढ़ाते हो ॥

हमही क्यों मन को मसोस—
अपना सारा सुख खोती हैं ?
करके क्यों प्रतिकार न इसका—
सुखी जगत में होती हैं ??

बहुत सह चुकीं, हाय !
न्याय का है हमको अधिकार नहीं !
कितना क्रूर समाज ! हमारा—
सुनता हाहाकार नहीं !!

महिला-रत्न स्वर्गीया मगनबाई

समय-समय पर, किसी गुरु कार्य का भार लेकर जो महाप्राण धरित्री पर अवतीर्ण होते हैं, हमारी चरित्र-नायिका स्वर्गीया श्रीमती मगनबाई जी उन्हीं में की एक आदर्श महिला-रत्न थीं। इनका जन्म संवत १९३६ के पौष-कृष्ण १० को हुआ था। इनके पिता सेठ माणिकचन्द जी बम्बई के बड़े धनाढ्य और प्रसिद्ध व्यक्ति थे। उनकी दानशीलता, दयापरवशता और परोपकार बहुत प्रसिद्ध है। मगनबाई जी की माता का नाम चतुरमती था। वे एक अत्यन्त दयावती और कोमल-हृदया स्त्री थीं।

पिता-माता ने अत्यन्त आदर-दुलार से पुत्री का नाम रक्खा, मगनमती। मगनमती ऐश्वर्य और सुख की गोद में पल कर धीरे-धीरे बड़ी होने लगीं। माता-पिता का इन पर अत्यन्त स्नेह था। पिता बिना इन्हें अपने साथ खिलाए खाते न थे और सदा इन्हें अपने सङ्ग लिए फिरते थे।

सेठ माणिकचन्द जी बड़े धर्मात्मा और दानशील व्यक्ति थे। उनकी धर्म-प्रवणता का मगनबाई जी पर भी बड़ा प्रभाव पड़ा था। ढाई बरस की छोटी उमर से ही बराबर अपने पिता के साथ रहने के कारण उनके चरित्र-और स्वभाव की गहरी छाप इन पर पड़ी थी। सेठ जी अवकाश के अनुसार सदैव ही अपनी प्यारी पुत्री को धर्म-सम्बन्धी बातें बताया करते थे। बहुत बाल्यकाल से ही पुराणों की और रामायण, महाभारत की अनेक कहानियाँ उन्होंने मगनबाई को सुना दी थीं। मगनबाई की धारणा-शक्ति बड़ी तीव्र थी। एक बार जिस बात को वे सुन लेतीं, उसे फिर जल्दी भूलती न थीं। धर्म की ओर उनका झुकाव यहीं से प्रारम्भ हुआ, और आगे चल कर इसी भाव ने विशाल रूप धारण करके उन्हें स्त्री-जाति का रत्न बना दिया।

जब मगनबाई कुछ बड़ी हुईं तो इन्हें पढ़ने के लिए पाठशाला भेजा गया। उस समय देश में स्त्री-शिक्षा घोर पाप समझा जाता था। आज की तरह न समय था, न सूझ। किन्तु सेठ माणिकचन्द जी बड़े विद्या-व्यसनी थे। स्त्रियों को पढ़ाना वे अत्यन्त आवश्यक समझते थे। अपनी इसी समझ के अनुसार उन्होंने मगनबाई जी का भी विद्यारम्भ कराया। घर पर भी एक शिक्षक रख दिया। इनकी पढ़ाई क्रम से चलने लगी।

जैसा कि ऊपर लिखा जा चुका है, ये बड़ी बुद्धिमती और तीक्ष्ण-धी थीं। जो कुछ पढ़ाया जाता वह इनके मस्तिष्क में वज्रलेप हो जाता था। थोड़े ही समय में हिन्दी और गुजराती का अच्छा ज्ञान इन्होंने प्राप्त कर लिया।

१३ वर्ष की अवस्था में, सूरत-निवासी सेठ खेमचन्द नेमचन्द जी के साथ इनकी शादी हुई। उस समय इनके पति की अवस्था १९ वर्ष की थी।

मगनबाई का वैवाहिक जीवन सुखी न हो सका। जिस वायु-मण्डल और जिस प्रकाश में इनके जीवन का उषाकाल व्यतीत हुआ था, आगे भी उन्हें वैसा ही अवकाश न मिला। भिन्न-भिन्न दो विचारों के एकत्र हो जाने पर साधारणतः जो परिणाम हुआ करता है, वही इनके

लिए भी हुआ। जिस परिवार में ये गईं, वह प्रतिष्ठित और धनाढ्य ज़रूर था, किन्तु वहाँ अशिक्षा और कुसंस्कृति का घोर अन्धकार फैला हुआ था। इनके ससुराल वाले इन्हें पढ़ते-लिखते देखना पसन्द न करते थे। उनका विश्वास था कि पढ़ने-लिखने वाली लड़की सुलक्षणी नहीं होती, जिस परिवार में पढ़ने-लिखने वाली बहू आती है, उसका कभी भला नहीं होता। पढ़ने-लिखने की अपेक्षा मगनबाई का घर के काम-धन्धों में लगी रहना वे अधिक पसन्द करते थे। यह मगनबाई के लिए कठिन परीक्षा का समय था। पढ़ने-लिखने की जिसे चाट लग गई हो, सहसा उसे उस दुनिया से हटा कर एकदम किसी नवीन और अपरिचित दुनिया में रख देने से जो परिणाम हो सकता है, मगनबाई के सम्बन्ध में भी वही हुआ। पहले तो वे कुछ निश्चय न कर सकीं कि वे किस प्रकार इस घर में रह सकेंगी। किन्तु धीरता और उच्चता उसी को कहते हैं जो प्रत्येक परिस्थिति में सन्तुष्ट रहे और अपने को प्रत्येक परिस्थिति के अनुकूल बना ले। मगनबाई ने भी ऐसा ही किया।

धीरे-धीरे इनकी धार्मिक प्रवृत्ति क्षीण होने लगी और पुस्तक-पोथियों से सम्बन्ध छूट सा गया। घर-गृहस्थी के काम-धन्धों में इनका समय व्यतीत होने लगा। इसी समय संवत १९९२ में इन्हें एक पुत्री उत्पन्न हुई।

किन्तु वह पुत्री मगनबाई जी के साथ अधिक समय तक रह न सकी। कुछ ही समय के बाद इन्हें विकल करके उसने लोकान्तर गमन किया। पुत्री के मरने से मगनबाई जी बहुत विह्वल हो गई थीं। उस समय इनके पिता सेठ माणिकचन्द जी ने एक अत्यन्त उपदेशपूर्ण पत्र इन्हें लिखा था। उस पत्र से इन्हें बड़ा धैर्य मिला और इनका चित्त शान्त हुआ।

संवत १९९४ में मगनबाई जी के गर्भ से एक और पुत्री उत्पन्न हुई। इसका नाम रक्खा गया केशरबाई। इसके बाद बाईजी को दूसरी कोई सन्तान न हो पाई। एक वर्ष बीतते न बीतते पति-वियोग का दारुण वज्र इन पर टूट पड़ा। यह शोक अत्यन्त प्रबल था, यह चोट नितान्त असहनीय थी। पतिप्राणा मगनबाई विधाता के इस निष्ठुर प्रहार से एकदम तिलमिला उठीं। संसार-सागर का कूल-किनारा इन्हें कुछ न दिखाई देने लगा।

इस समय इनकी अवस्था केवल १९ साल की थी। पति की मृत्यु के अनन्तर इन्होंने सौभाग्य-चिन्ह उतार दिए, वस्त्राभूषणों से मुँह मोड़ लिया, सादगी और उदासीनता का अवतार बन गईं।

माता-पिता ने यह सम्बाद सुना तो सिर पीट लिया। अपनी प्यारी पुत्री को इस छोटी अवस्था में ऐसी विपत्ति में पड़ते देख कर किस पाषाण-हृदय का हृदय मोम न हो जायगा? किन्तु जो हो गया, उसके लिए शोक करने से लाभ ही क्या? आख़िर उन्होंने बाई जी को बम्बई बुला लिया। वहाँ उन्होंने इनकी पढ़ाई के साथ ही साथ धार्मिक शिक्षा का भी उत्तम प्रबन्ध कर दिया।

पं० माधव नाम के एक वृद्ध सज्जन बड़े विद्वान और सदाचारी पण्डित थे। उन्हें बुला कर माणिकचन्द जी ने मगनबाई को उनके हवाले किया और उनसे मगनबाई को संस्कृत और धार्मिक शिक्षा देने का विशेष अनुरोध किया। पुत्री से भी कहा कि बेटी! अब तू पढ़ने-लिखने और ध्यान-धर्म में ही चित्त लगा। यही तेरा सच्चा साथी है। अपने इसी धर्म का पालन और परोपकार करके जीवन सफल करो। माता-पिता की बात मगनबाई के जी में बैठ गई। उन्होंने अध्ययन और धार्मिक कार्यों में अपने को प्रवृत्त किया। क्रम से उनका मन धर्म और वैराग्य की ओर झुकता गया और ये दिन-रात पढ़ने-लिखने और धर्म-चिन्तन में समय व्यतीत करने लगीं।

क्रम से आपने पण्डित जी के द्वारा संस्कृत और व्याकरण आदि में अच्छी योग्यता प्राप्त कर ली। दिगम्बर जैन परीक्षालय की तीन प्राथमिक परीक्षाएँ भी धर्म शास्त्र में इन्होंने पास कीं। अनेक आध्यात्मिक ग्रन्थों का अध्ययन करने के कारण इनकी रुचि आध्यात्मिकता की ओर भी आकर्षित हुई। अध्यात्म और वैराग्य की भावनाओं में पति-वियोग का दुःख ये भूल सी गईं और स्त्री-समाज की सेवा करने का इन्होंने व्रत धारण किया।

स्त्रियों में शिक्षा, सदाचार और धर्म की रुचि उत्पन्न करने के लिए एक ऐसी संस्था की आवश्यकता का आपने अनुभव किया जो इस कार्य को अपने हाथ में ले। इसी अनुभव के अनुसार आपने स्वयं एक श्राविकाश्रम खोला और अपनी ही रुचि और विचारों से समानता रखने वाली कई बाइयों को एकत्रित किया। किन्तु उस समय देश में ऐसे विचार वाली स्त्रियों की अधिकता न थी। इससे मगनबाई जी को एक अनुभव यह भी हुआ कि

ऐसी शिक्षा देने के लिए योग्य शिक्षिकाओं के निर्माण का कार्य भी उन्हें ही करना पड़ेगा। आपने अपनी ही ज़िम्मेदारी पर पहले-पहल सं० १९६९ में अहमदाबाद में यह श्राविकाश्रम खोला और उसके बाद उन्हीं की प्रेरणा और प्रभाव से इन्दौर, आरा, दिल्ली, गुहाना, साँगली आदि स्थानों पर भी श्राविकाश्रम खोले गए, जिन्होंने अपने जन्मकाल से जैन महिलाओं की प्रभूत सेवा की है और जो अभी भी अपने प्रयत्नों में तत्पर हैं। इसके बाद ही आपने महिला-परिषद् के नाम से एक सम्मेलन की संस्थापना की, जिसका अधिवेशन समय-समय पर हुआ करता और जिसके कारण स्त्रियों को एक-दूसरे से मिलने-जुलने का अवकाश मिला करता था। इस परिषद् का मुख-पत्र 'जैन महिलादर्श' का प्रकाशन भी आप ही ने प्रारम्भ किया, जिसने महिलाओं में काफ़ी जाग्रति उत्पन्न की है।

श्राविकाश्रम कुछ दिनों तक अहमदाबाद में ही चलता रहा; किन्तु वहाँ उन्नति की कुछ गुञ्जायश नहीं दीख पड़ी। न स्त्रियाँ ही पर्याप्त संख्या में वहाँ शिक्षा ग्रहण करने आईं और न धन ही काफ़ी इकट्ठा हो सका। इसीसे कुछ दिनों के बाद बाई जी के पिता सेठ माणिकचन्द जी की सलाह से श्राविकाश्रम बम्बई ले आया गया।

यहाँ आकर आश्रम ने आशातीत उन्नति की। मगनबाई जी ने प्रान्त-प्रान्त में घूम कर इस आश्रम की उपयोगिता लोगों को समझाई, और उसकी सहायता करने के लिए लोगों से अपील की। बाई जी की बातें सुन लेने के बाद ऐसा कोई मनुष्य नहीं होता था, जिसकी समझ में श्राविकाश्रम की उपयोगिता न आ जाती हो और वह किसी न किसी रूप में आश्रम की सहायता करने को सन्नद्ध न हो जाता हो।

धीरे-धीरे आश्रम की अच्छी ख्याति हो गई। यहाँ शिक्षा प्राप्त करके अनेक बाइयों ने भिन्न-भिन्न स्थानों में जाकर नए-नए आश्रम खोले और वहाँ विद्या तथा धर्म का प्रचार करना प्रारम्भ किया।

आश्रम खोलने के पश्चात इस सम्बन्ध में आपने भी बहुत भ्रमण किया। एक बार पञ्जाब प्रान्त के हिसार नामक स्थान में परिषद् का अधिवेशन हुआ। वहाँ के लोगों ने इन्हें व्याख्यान देने के लिए बहुत आग्रह किया। कहा—आप अगर बोलें तो यहाँ भी एक कन्याशाला खुल जाय। आपने उनका आग्रह टाला नहीं। व्याख्यान देने के उपरान्त मालूम हुआ कि सभास्थल में ही सात-आठ सौ रुपए मिले हैं। पाठशाला वहाँ खुल गई और धीरे-धीरे उसने बड़ी तरक़्क़ी भी कर ली।

एक बार इन्दौर के सेठ रायबहादुर हुकमचन्द जी ने परिषद को निमन्त्रित किया था। वहाँ जाने का आपको बड़ा उत्साह था। लेकिन स्वास्थ्य अच्छा न था, न्यूमोनिया हो गई थी। डॉक्टर ने जाने की राय न दी। ये बहुत निराश हुईं, परन्तु इन्होंने अपनी एक सहकर्मिणी बाई को यह कहला कर वहाँ भेज दिया कि परिषद में सब से पहले मेरी ओर से २००) रुपए का चन्दा बोल देना।

कलकत्ता में सन् १९०६ ई० में कॉङ्ग्रेस हुई। सब से पहले कॉङ्ग्रेस के मञ्च पर से आपने ही स्त्री-शिक्षा की आवश्यकता पर व्याख्यान दिया। आपका व्याख्यान सुन कर सहस्र-सहस्र उपस्थित व्यक्ति प्रभावित हुए। उस व्याख्यान के लिए एक स्वर्ण-पदक देकर आपको सम्मानित किया गया।

एक बार पञ्जाब में स्त्री-शिक्षा का प्रचार करने के लिए मगनबाई जी को जाना पड़ा। उस समय बाई जी की पुत्री श्रीमती केसरबाई बहुत बच्ची थीं और जाने के समय वे बहुत रोने लगीं, किन्तु मोह से कर्तव्य में हानि होगी, यह समझ कर बाई जी ने उन्हें समझा-बुझा कर शान्त किया और यात्रा नहीं रोकी। इस यात्रा में बाई जी को प्रायः एक मास तक बाहर रहना पड़ा और हस्तिनापुर, मथुरा, मेरठ, दिल्ली, लाहोर, अमृतसर तथा जालन्धर आदि में घूम-घूम कर आपने स्त्री-शिक्षा पर कितने ही प्रभावशाली व्याख्यान दिए।

जिस समय बाई जी जालन्धर गई हुई थीं, उस समय कन्या-महाविद्यालय के संस्थापक देवराज जी ने स्वयं उन्हें विद्यालय का परिदर्शन कराया। यह विद्यालय आर्यसमाज की एक महान सम्पत्ति है और यहाँ के सम्बन्ध में हमारे देशवासी भली-भाँति जानते हैं। बाई जी ने इस विद्यालय की सारी अन्दरूनी बातों का निरीक्षण बड़े ध्यान से किया और उसे अपनी नोटबुक में लिखती गईं। इस यात्रा में इस प्रकार के संयोगों से बाई जी ने

बड़ा लाभ उठाया और ये सारी बातें उनके आश्रम के लिए बहुत हितकर सिद्ध हुईं।

मगनबाई जी बड़ी दयावती, मिलनसार और आदर्श महिला थीं। वे सभी से बड़े प्रेम तथा आदर से मिलती थीं। मिहनत से उनकी तबीयत बिलकुल न घबराती थी और वे घण्टों बैठ कर स्वयं लिखतीं या दूसरों से लिखवाती थीं।

बाई जी के चरित्र का प्रभाव लड़कियों पर बहुत अधिक पड़ता था। अनेक अशिक्षित, झगड़ालू और कर्कशा बालिकाओं तथा स्त्रियों ने बाई जी का सत्सङ्ग पाकर अपने जीवन में आश्चर्यजनक परिवर्त्तन किया है। एक बार एक थोड़ी उमर वाली बाल-विधवा छात्रा आश्रम में आई। वह बहुत कर्कश स्वभाव वाली थी और दिन भर रोती तथा लड़ाई-झगड़ा किया करती थी। उसे आश्रम में ले आते देख कर लोगों ने मगन-बाई से बहुतेरा उसके लिए कहा कि यह न सुधरेगी, इसे आश्रम में न लीजिए, किन्तु बाई जी ने किसी के कहने पर ध्यान नहीं दिया। कुछ समय बाद—बाई जी के चरित्र, स्वभाव और शिक्षा का—उस पर इतना प्रभाव पड़ा कि वह पहले की लड़की ही न रह गई। उसकी रहन-सहन में आश्चर्यजनक परिवर्त्तन हो गया।

जब तक बाई जी के शरीर में शक्ति रही, तब तक आपने तन-मन-धन से देश, जाति तथा धर्म की उन्नति के लिए प्रबल चेष्टा की। इधर ४-५ वर्षों से उनका शरीर क्षीण हो गया था। स्वास्थ्य ठीक नहीं रहता था। धीरे-धीरे भ्रमण आदि का कार्य उनसे छूटता जाता था।

जब से उनका भ्रमण बिलकुल बन्द हो गया, तब से कन्या-विद्यालयों की स्थापना भी प्रायः बन्द सी हो गई, जहाँ-तहाँ पहले के स्थापित विद्यालय हैं, उनमें भी शिथिलता आ गई है।

इधर दो महीनों से उनका स्वास्थ्य विशेष ख़राब हो गया था। इसके पूर्व उन्हें जलोदर रोग था जो आगे चल कर डॉक्टरों की चिकित्सा से अच्छा हो गया। किन्तु फिर अन्त के दिनों में बहुत कमज़ोरी मालूम होने लगी और केवल चार-पाँच दिनों के साधारण ज्वर के बाद ही उनका शरीरान्त हो गया।

दो महीनों से स्वास्थ्य सुधारने की इच्छा से ही बम्बई छोड़ कर वे लोणावला चली गई थीं। वहाँ अच्छी भी हो गई थीं। किन्तु होनहार कुछ और थी। ७ फ़रवरी सन् १९३० को सहसा हृदय की गति रुक जाने के कारण उनका देहावसान हो गया।

मगनबाई जी असाधारण महिला थीं। उनकी मृत्यु से हमारी जो क्षति हुई है, वह कभी पूरी नहीं हो सकती। आपने अपनी ५० वर्ष की सारी आयु स्त्री-शिक्षा और धर्म-प्रचार के ही कार्य में लगा दी थी। आपने मृत्यु के समय भी देश की भिन्न-भिन्न संस्थाओं को साढ़े छः हज़ार रुपयों का दान दिया है। ईश्वर आपकी आत्मा को चिर शान्ति दे और आपकी लगाई हुई कल्प-लता इस देश में फूले-फले, यही कामना है।

—चन्द्रप्रभा देवी

* * *

'चाँद' पर 'माधुरी' की आलोचना

माधुरी के जनवरी अङ्क (पौष तुलसी सं० ३०६) में पृष्ठ १०४२ पर 'चाँद' के ऊपर श्री० 'सुदर्शन' की आलोचना निकली है। आलोचना क्या है, एक मर्म-भेदी बाण 'चाँद' पर छोड़ दिया गया है। किन्तु 'माधुरी' के सुयोग्य सम्पादक श्री० प्रेमचन्द को इस पर भी सन्तोष नहीं हुआ और उन्होंने अपनी सम्पादकीय टिप्पणी से घाव पर विष छिड़क ही तो दिया! अब देखना यह है कि 'चाँद' पर इसका असर होगा या नहीं। 'चाँद' व माधुरी की आपस की खींचातानी को तो वही जानें—पाठक तो 'चाँद' की कलाओं पर उतने ही मुग्ध हैं जितना कि माधुरी के माधुर्य पर। इसलिए कदाचित ही कोई इस खींचा-तानी को पसन्द करे। आपस में मतभेद होना स्वाभाविक है, बल्कि बिना मतभेद के उन्नति करना कठिन सा हो जाता है। किन्तु मतभेद की भी कुछ सीमा होती है। जब यह बात सीमा के बाहर हो जाती है तो उन्नति के बदले अवनति का कारण बन जाती है। मतभेद को सीमा के अन्दर रखने का एक नियम यह भी है कि मत-भेद होने पर व्यक्तिगत आक्षेप न किए जायँ, किन्तु उपरोक्त आलोचना, तथा उस पर श्री० प्रेमचन्द जी की टिप्पणी दोनों ऐसे आक्षेपों से पूर्ण हैं। इन आक्षेपों का उत्तर देना न देना तो 'चाँद' के सम्पादक की इच्छा पर निर्भर है। इस लेख का उद्देश्य केवल इस बात की जाँच करना है

कि व्यक्तिगत आक्षेप के अलावा 'चाँद' पर जो आलोचना हुई है उसमें कितना तथ्य है। अस्तु।

श्री० 'सुदर्शन' का लक्ष्य इस समय 'चाँद' के 'मारवाड़ी-अङ्क' पर है। उदाहरण के लिए आपने 'सेठानी मनिहार,' 'सेठानी नौकर' तथा 'रामकी' को लिया है। प्रथम दो व्यङ्ग-चित्र, तथा तीसरी एक कहानी है। श्री० 'सुदर्शन' की इस आलोचना के दो ही मतलब हो सकते हैं; या तो मारवाड़ी-समाज में ऐसी बातें होतीं ही नहीं, इसलिए 'चाँद' में झूठ लिखा गया है, या ऐसी बातें होती तो हैं, किन्तु उन्हें छिपा कर रखने ही में देश और जाति का गौरव है। इसके विपरीत ऐसी बातों पर प्रकाश डालने से महा अनर्थ हो जाने की आशङ्का है, जिससे देश को बचाना प्रत्येक देश-हितैषी का धर्म है। यदि मेरा यह अनुमान सत्य है तो मैं श्री० 'सुदर्शन' को तथा श्री० प्रेमचन्द को भी यह बतला देना चाहता हूँ कि उनके विचार तथा भावना दोनों ग़लत हैं।

अभी हाल ही में ठीक सेठानी-मनिहार के व्यङ्ग-चित्र की एक सत्य घटना घट चुकी है। एक मेले में एक स्त्री किसी मनिहार से चूड़ियाँ पहन रही थी। स्त्री तरुणी थी, इसलिए पाँच-सात मनचले भी जमा हो गए। चूड़ी पहनते हुए उस स्त्री ने अपने हाथ में कुछ पीड़ा होने का सा भाव दिखाया। इस पर मनिहार ने मुस्करा कर उत्तर दिया—"सरकार, घबड़ाइए नहीं, मैं इतने धीरे......कि आपको बिलकुल दर्द न होगा।" बेचारी देहातिन की समझ में यह गूढ़ वाक्य न आया, किन्तु खड़े हुए मनचलों को आमोद का अच्छा अवसर मिल गया। भाग्य से या दुर्भाग्य से वहाँ कुछ ऐसे भी लोग थे, जिन्हें मनिहार का यह व्यवहार अच्छा नहीं लगा। दोनों ओर से बात बढ़ते-बढ़ते दङ्गा हो गया और इसका अन्तिम फल यह हुआ कि बेचारों को अभी तक कचहरी से रुख़सत नहीं मिली है। यदि 'सुदर्शन' महाशय इस बात को पूर्ण रीति से जानना चाहें तो मैं उन्हें बतला सकता हूँ। अब रही सेठानी-नौकर वाली बात; सो तो मैं आशा करता हूँ कि 'सदर्शन' महाशय ही क्या, हर किसी ने पढ़ी, सुनी और देखी होंगी। यदि नहीं, तो मैं उनसे अनुरोध करता हूँ कि वे या तो 'देश-दर्शन' जैसी पुस्तक को पढ़ने का कष्ट उठाएँ, या कुछ दिन कलकत्ते में रहें। वहाँ 'रामकी' सच्ची कहानियाँ नित्य ही कहीं न कहीं देखने-सुनने को मिल जाया करती हैं। यह माना कि ऐसे चित्र व ऐसी कहानियाँ प्रत्येक व्यक्ति, प्रत्येक समय, प्रत्येक स्थान पर लागू नहीं होतीं, तो भी इनकी संख्या भारत जैसे विशाल देश में इतनी बढ़ती जा रही है कि निरीक्षक का ध्यान उनकी ओर आकर्षित हुए बिना नहीं रहता। ऐसी कहानियों को पढ़ कर भले ही किसी की आँखों में ख़ून उतर आए, किन्तु इनकी सत्यता को कोई अस्वीकार नहीं कर सकता।

अब, सवाल यह उठता है कि 'चाँद' के इन वाक़यातों पर प्रकाश डालने से हानि हो रही है या लाभ? क्या सचमुच इससे स्त्री या बाल-समाज को क्षति पहुँचेगी? इसका उत्तर यह है कि पहले तो 'सुदर्शन' महाशय को यह विदित होगा कि 'चाँद' के लेख, भाव व भाषा ऐसे हैं कि उनका समझना बालक-बालिकाओं तथा मामूली पढ़े-लिखे स्त्री-पुरुषों के लिए कठिन है। इसलिए ये 'चाँद' द्वारा पहुँचाई हुई 'हानि' से सर्वथा वञ्चित हैं। अब रही सयाने तथा अधिक पढ़े-लिखे स्त्री-पुरुषों की बात; सो यह ख़्याल करना कि ऐसे लोग सांसारिक व्यवहारों से इस सदी में बिलकुल अनभिज्ञ हैं, निरी मूर्खता है। भारत में पत्र-पत्रिकाओं का अभी इतना चलन नहीं, जितना कि पाश्चात्य देशों में है। यहाँ पत्र-पत्रिकाएँ अधिकतर उच्च व मध्यम श्रेणी के धनिक लोग ही पढ़ा करते हैं, तो फिर यह कहना कि उन पर 'चाँद' का बुरा असर पड़ेगा, कहाँ तक सत्य हो सकता है? पाश्चात्य शिक्षा तथा साहित्य का ज्ञान, सिनेमा तथा थियेटरों की सैर, बाज़ारों में नङ्गी तस्वीरों का बिकना, इत्यादि सब बातों को देख कर भी यदि कोई भोला-भाला दूध का धोया बना रह सकता है तो फिर इन सत्य घटनाओं को पढ़ने से ही उसकी मति-गति कैसे पलट जायगी, यह बात हम नहीं समझ सकते। ख़ैर, यह तो बीसवीं सदी के करिश्मे हैं, किन्तु 'सुदर्शन' महाशय को ध्यान रहे कि सांसारिक प्रपञ्च, आदम और हव्वा के वक़्त से ही प्रारम्भ हो गया था। श्री० 'सुदर्शन' की राय से 'चाँद' के लेख कामोत्पादक हैं, इसलिए इनका पढ़ना हानिकारक है। मैं पूछता हूँ कि मेडिकल कॉलेजों में छात्रों को जो अनाटोमी (Anatomy) व दाई (Midwifery) का काम सिखाया जाता है, क्या वहाँ पर अश्लील व कामोत्पादक शब्दों का प्रयोग नहीं होता? अगर होता है तो क्या

श्रीमती जी० बी० मेहता

आपने जुन्नर में अखिल भारतीय जैन-महिला-सम्मेलन की सभानेत्री का कार्य बड़ी योग्यता और निपुणता से सम्पादन किया है।

कुमारी डी० ई० जुलियन

आप गुडियत्तम नगर के नवीन अमेरिकन मिशन अस्पताल में प्रधान चिकित्सक का कार्य सम्पादन कर रही है।

ऐसी शिक्षा बन्द कर दी जाय? अबलाओं पर बलात्कार के कई मामले प्रतिदिन अदालतों में अश्लील शब्दों में सुनाए जाते हैं, तो क्या ऐसे मामलों की सुनवाई बन्द कर दी जाय? यूनान की चित्रावली में तथा कई प्राचीन हिन्दू मन्दिरों में नङ्गी मूर्तियाँ अङ्कित हैं, तो क्या इनका बहिष्कार कर दिया जाय? बात तो यह है कि शब्द मात्र अश्लील नहीं होता, बल्कि उसका प्रयोग गन्दा होता है। यदि किसी लेखक का मतलब गन्दगी फैलाने का न हो, बल्कि कोई सचाई दिखलाने का हो, तो उसको अधिकार है कि वह बुरी से बुरी बातों को लेकर आलोचना करे। किसी भी चीज़ का असर भिन्न प्रकृति के मनुष्यों पर भिन्न-भिन्न होता है। जो सज्जन होते हैं वे शिक्षा लेते हैं, अन्यथा दुर्जनों के लिए आमोद तो है ही। जो बुरी राह पर ही तुला हुआ होता है, उसका रक्षक तो भगवान ही है। जज लिण्डसे की "Revolt of the Modern Youth," "Motherhood in Peril," रूसो के "Confessions", बायरन की कुछ कविताएँ इत्यादि, अगर अश्लील व गन्दी नहीं, तो क्या हैं? तथापि कौन कहता है कि इन पुस्तकों के लेखकों का मन्तव्य गन्दगी फैलाने तथा धन जमा करने का था? यदि ये उपरोक्त लेखक भारतीय होते तो मैं नहीं सोच सकता कि 'सुदर्शन' महाशय उनको क्या सज़ा देते! 'सुदर्शन' महाशय से तो मैं परिचित नहीं, किन्तु श्री० प्रेमचन्द जैसे विख्यात व्यक्ति के विपरीत चलते हुए, लेखनी काँप उठती है; तथापि मजबूरन यह लिखना पड़ता है कि कम से कम 'चाँद' के ऊपर उन्होंने हाथ उठा कर अन्याय ही नहीं, बल्कि अत्याचार किया है। जिस व्यक्ति ने 'चाँद' के 'फाँसी-अङ्क' तथा 'भारत में अङ्गरेज़ी राज्य' को छाप कर हज़ारों रुपए की क्षति ही नहीं उठाई, बल्कि जिसके कारण 'चाँद' का सरकार से सम्बन्ध रखने वाली संस्थाओं में

श्रीमती ई० लक्ष्मीकुट्टी

आप कोचीन राज्य के न्याय-विभाग में क्लर्क नियुक्त हुई हैं। इस राज्य में न्याय-विभाग के अधीन कार्य करने वाली आप प्रथम महिला हैं।

कुमारी स्टेला जी० गेल

आप इङ्गलैण्ड की प्रथम महिला हैं, जो पेयटन बन्दरगाह में हारबर-मास्टर के पद पर नियुक्त हुई हैं। आप एक कुशल नाविक हैं। कई नाविक प्रतिद्वन्दिताओं में भी आपने बड़ी निपुणता का परिचय दिया है।

जाना भी रुक गया, तथा जिसने अपने को सरकार की आँखों में किरकिरी बना दिया, उस व्यक्ति को निरा धन का लोभी बतलाना विवेकहीनता नहीं, तो और क्या है?

जो समाज सदियों से सोया हुआ हो, जिस समाज को अपना अन्न, धन, स्वतन्त्रता तथा मान लुट जाने पर भी कुछ ध्यान न हुआ हो, जिस समाज का नियम यह हो कि पति चाहे जितनी स्त्रियाँ रख ले, किन्तु स्त्री पति के मर जाने पर भी उसी के नाम की माला जपा करे, जिस समाज में स्त्रियों का आदर नहीं और उनकी प्रतिष्ठा नहीं, जो समाज अपनी प्यारी दुहिता को साठ-सत्तर वर्ष के वृद्ध से ब्याह देने में न हिचकता हो, जो समाज वर्षों से कुप्रथाओं का घर बन गया हो, ऐसे समाज को ठुकरा-ठुकरा कर जगाना पड़ेगा और ऐसे कार्य के लिए 'चाँद' जैसी पत्रिका की आवश्यकता है। 'चाँद' की बात भले ही किसी को बुरी लगे, किन्तु नियम है कि दवा जितनी कड़वी होती है, रोग उतनी ही जल्दी कटता है। जो लोग दोषों को दबाने में अपना गौरव समझते हैं, वे भले ही तोप-तलवार लेकर 'चाँद' पर धावा बोल दें। सँभलने वाले 'चाँद' की चेतावनी से सँभल जायँ। ईश्वर जाने कितना अन्धकार हमारे समाज के अन्दर है। अभी तो 'चाँद' दूज का है, पूर्णिमा का 'चाँद' तो चमका ही नहीं। अभी तो गूलर के बाहर के ही छेद दिखाई पड़े, पेट फूटना बाक़ी है।

—एन० एस० नेगी, बी० ए०

* * *

क्या हम अछूत-समस्या को हल कर रहे हैं ?

आजकल शुद्धि की धूम है। देश में अछूतोद्धार-सम्मेलन, दलितोद्धार-सम्मेलन तथा कॉन्फ्रेन्सें और सहभोज करने का फ़ैशन चल पड़ा है। समाचार-पत्र भी समय-समय पर इसी विषय के विशेषाङ्क प्रकाशित करते हैं; लेख, कविता तथा गल्प भी लिखे जाते हैं। इन सब बाहरी चहल-पहल को देख कर यह धारणा सहज ही में हो सकती है कि हिन्दू जाति अछूतपन के कलङ्क से शीघ्र ही मुक्त हो जाएगी। परन्तु वस्तुतः अवस्था क्या है? क्या हम सचमुच अछूतपन के कलङ्क को दूर करने में सफल हो रहे हैं? प्रश्न बड़ा महत्वपूर्ण है, पर इसका निश्चित उत्तर देने से पूर्व हमें कुछ दूर आगे बढ़ कर छान-बीन करनी होगी।

माहेश्वरी वैश्यों में विधवा-विवाह का एक दृश्य

यह विवाह होशङ्गाबाद की विधवा-विवाह-सहायक-समिति के प्रबन्ध से हाल ही में बड़े समारोह से सम्पन्न हुआ है। दम्पति का चित्र अन्यत्र दिया जा रहा है।

कुछ ऐतिहासिक चर्चा

अछूतोद्धार और शुद्धि-आन्दोलन को प्रारम्भ करने का श्रेय, निस्सन्देह आर्यसमाज को है। और यह भी ऐतिहासिक सचाई है कि इस बीज का प्रथम वपन पञ्जाब की उर्वरा भूमि में ही हुआ था, वहीं से क्रमशः बढ़ते-बढ़ते यह लहर अब समस्त देश और जाति में फैल रही है। ऋषिवर स्वामी श्रद्धानन्द के "कल्याण मार्ग का पथिक" पढ़ने से भली-भाँति विदित हो जाता है कि आज से लगभग चालीस वर्ष पूर्व, जब उन्होंने जालन्धर आर्यसमाज की ओर से 'रहतियों' की शुद्धि की थी, और उन भाइयों को अपने अन्दर मिलाया था, उन्हें कितनी भारी आपत्तियों का सामना करना पड़ा था। उन दिनों स्वामी जी तथा उनके मित्रों ने जो कष्ट झेले, उनका इतिहास बड़ा मनोरञ्जक है। पर विस्तार-भय से हम यहाँ उसे लिख नहीं सकते। इसके कुछ वर्ष बाद सन १६०० ई० के लगभग पञ्जाब के स्यालकोट ज़िले में मेघ नामक अछूत कही जाने वाली जाति में लाला (अब रायसाहब) गङ्गाराम वकील के प्रयत्न से कार्य प्रारम्भ हुआ। पञ्जाब प्रान्त में और विशेषतः स्यालकोट ज़िले में मेघों की संख्या कई लाख है। ये कबीर-पन्थी हैं, और अधिकांश जुलाहे का काम करते हैं। इस जाति में प्रचार करने के लिए एक 'आर्य-मेघोद्धार सभा' स्थापित की गई, जिसकी अब सरकार द्वारा रजिस्ट्री भी हो चुकी है। इस सभा के द्वारा अच्छा प्रचार हो रहा है। जब मेघ शुद्ध किए गए, और आर्यसमाज की शरण में आए, तब अन्य हिन्दुओं की ओर से उन्हें बहुत कष्ट दिए जाने

लगे। जिन हिन्दू ज़मींदारों की ज़मीन में वे रहते थे, वे उन्हें वहाँ से निकल जाने के लिए तङ्ग करने लगे। इस पर रायसाहब गङ्गाराम ने अपनी ओर से कुछ ज़मीन देकर और कुछ सरकार से दिलवा कर एक "आर्य नगर" बसाया, जहाँ ये सब शुद्ध मेघ भाई आबाद किए गए। उनकी शिक्षा इत्यादि के लिए वहीं पर स्कूल तथा पाठशालाएँ आर्यसमाज की ओर से खोल दी गईं, मन्दिर स्थापित कर दिया गया, और उनकी धार्मिक आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए पण्डित भी रख दिए गए। कुछ समय बाद इन्हीं में से कुछ भाई पञ्जाब की नई आबादी—बार और गञ्जी—अर्थात् ज़िला लायलपुर और मॉन्टगुमरी में चले गए और अब वहीं आबाद हो गए हैं। इस जाति के दो बालक श्री० स्वामी श्रद्धानन्द जी ने गुरुकुल काँगड़ी में भी प्रविष्ट किए थे, जो अब स्नातक होकर समाज में काम कर रहे हैं। स्यालकोट के बाद अछूतोद्धार और शुद्धि के और दो बड़े केन्द्र पञ्जाब में हैं—(१) जम्मू रियासत और (२) गुरुदासपुर और होशियारपुर के ज़िले। जम्मू रियासत में म० रामचन्द्र जी की हत्या के बाद विशेष उत्साह से कार्य प्रारम्भ हुआ था, जो अब साधारण रीति से चल रहा है। गुरुदासपुर और होशियारपुर के ज़िलों में तथा पञ्जाब के अन्य ज़िलों में भी आर्य प्रतिनिधि सभा तथा आर्य प्रादेशिक सभा एवं लाला लाजपतराय जी की "अछूतोद्धार कमेटी" द्वारा यह कार्य प्रचलित है। इस आन्दोलन को देश-व्यापी रूप मलकाना शुद्धि के कार्य ने दिया है, जो सन १९२४ ई० में ऋषिवर स्वामी श्रद्धानन्द ने प्रारम्भ किया था। जब मथुरा और आगरा के ज़िलों में यह कार्य प्रारम्भ किया गया और मुसलमानों द्वारा जगह-जगह अड़चनें डाली गईं, उसी समय शिक्षित जनता ने इसकी आवश्यकता समझी और उत्साह के साथ कार्यकर्त्ताओं का साथ दिया। उसी समय सर राजा रामपालसिंह की अध्यक्षता में 'भारतीय हिन्दू शुद्धि सभा' स्थापित की गई। यद्यपि जनता का उत्साह लगभग एक वर्ष में ही मन्द पड़ गया, पर यह सभा अभी तक साहस के साथ यह कार्य चला रही है। इस समय यू० पी० और बिहार में कई जगह हिन्दू-सभाओं द्वारा और कहीं-कहीं अछूतोद्धार कमेटी अथवा शुद्धि सभाओं द्वारा इस आन्दोलन को जीवित रक्खा जा रहा है। बङ्गाल में श्री० स्वामी सत्यानन्द जी की अध्यक्षता में "हिन्दू मिशन" प्रशंसनीय कार्य कर रहा है। दक्षिण भारत में इस बीज का वपन श्री० स्वामी श्रद्धानन्द जी ने सन १९२३ में ही कर दिया था। उन्होंने स्वयं तीन-चार बार बम्बई और मद्रास प्रान्त का दौरा किया और साथ ही गुरुकुल काँगड़ी के दो सुयोग्य स्नातकों को वहाँ स्थिर रूप से नियत कर दिया, जिनकी निरीक्षकता में अब भी उस प्रदेश में बड़े उत्साह से काम हो रहा है।

श्रीयुत बालाप्रसाद जी माहेश्वरी तथा आपकी धर्मपत्नी श्रीमती सुन्दरबाई

हाल ही में होशङ्गाबाद में विधवा विवाह-सहायक-समिति के प्रबन्ध से आप लोगों का शुभ-विवाह बड़ी धूमधाम से सम्पन्न हुआ है।

सन १९२५ का वायकम सत्याग्रह इसी आन्दोलन का परिणाम कहा जा सकता है, जिसमें सत्याग्रहियों ने विजय प्राप्त कर इसकी प्रगति को द्विगुणित कर दिया। दक्षिण देश में अछूतपन उत्तर भारत की अपेक्षा अधिक भयङ्कर रूप में है। अछूतपन के साथ वहाँ एक और बड़ी व्याधि

कुमारी एम० आर० कोवासजी

आप टेनिस की एक सिद्धहस्त खेलाड़ी हैं। आपने हाल ही में कराची के पारसी इन्स्टिट्यूट टेनिस टूर्नामेण्ट में लेडीज़ चैम्पियन कप जीता है। इसके पहले भी आप कई कप जीत कर अद्भुत निपुणता का परिचय दे चुकी हैं।

कुमारी सविताबहन त्रिवेदी, जी० ए०

आप अहमदाबाद के शारदा-मन्दिर की प्रधान व्यवस्थापिका हैं। आप ही ने छोटे बच्चों के लिए मौन्टिस्सरी पाठशाला खोली थी, जो गुजरात में अपने ढङ्ग की एकमात्र संस्था है।

है, और वह यह कि कुछ जातियाँ ऐसी हैं जिन्हें द्विजातियों के स्पर्श में आने का तो क्या, उनके समीप आने और उनकी दृष्टि में पड़ने तक का अधिकार नहीं है। उनकी छाया-मात्र से ही उच्च वर्णाभिमानी दूषित हो जाते हैं। इसलिए उन्हें आम रास्तों, सड़कों, बाज़ारों इत्यादि में क़दम रखने की भी मुमानियत है। ऐसे प्रान्त में सिर्फ़ दो या तीन कार्यकर्त्ता सर्वथा अपर्याप्त हैं। उत्तर भारत में अगर हमारा मुक़ाबला अधिकतः मुसलमानों के साथ है, तो दक्षिण में ईसाइयों के साथ है, जिनकी मीठी छुरी वहाँ भयङ्कर कार्य कर रही है। उधर विशेष ध्यान दिए जाने की आवश्यकता है। गुजरात-काठियावाड़ में आग़ाख़ानियों और खोजों का बड़ा जाल बिछा हुआ है। ये अपने को कृष्ण और राम के भक्त कह कर भोले हिन्दुओं को मुसलमान बनाते हैं। यद्यपि समाचार-पत्रों में इस धूर्त मत की पोल खुलती रहती है और बम्बई तथा बड़ौदा की हिन्दू-सभा और सूरत-अहमदाबाद के आर्यसमाज इन भूले हुए भाइयों को फिर अपने में मिलाने का प्रयत्न कर रहे हैं, परन्तु अभी तक इस प्रान्त में विशेष रूप से सङ्गठित कार्य नहीं हो रहा है। मध्य-भारत में रियासतों का आधिक्य होने से यह आन्दोलन मृतप्राय ही है। यद्यपि ये हिन्दू रियासतें हैं, तथापि ज़ोर मुसलमानों का हो है। हिन्दू राजाओं की दब्बू नीति के कारण हिन्दू प्रजा को मुसलमानों के हाथों बहुत कष्ट मिल रहा है। इन्दौर में तो हाल ही में दङ्गा हो गया था। बीकानेर, जयपुर, सीकर, करौली इत्यादि रियासतों में कुछ उच्च पदस्थ मुसलमान शासकों की अन्धधार्मिकता के कारण हिन्दू प्रजा पर बहुत अत्याचार हो रहे हैं और इसीलिए उनकी तबलीग़ का बाज़ार गर्म है। हमारी तो धारणा है कि हिन्दू रियासतों में मुसलमानों के साथ वही बर्त्ताव होना चाहिए जो हैदराबाद, भूपाल, रामपुर इत्यादि

पूना के नवीन मराठी शाला के पारितोषिक-वितरण उत्सव पर लिया हुआ ग्रूप

यह स्फूर्तिदायक उत्सव हाल ही में श्रीमती जहाँगीर की अध्यक्षता में सम्पन्न हुआ है।

मुस्लिम रियासतों में हिन्दुओं के साथ हो रहा है। अस्तु। इसके बाद सिन्ध प्रदेश है। वहाँ पर मुसलमानों की संख्या हिन्दुओं से बहुत अधिक है। गाँवों में तो मुसलमानों की गुण्डाशाही पर कोई अङ्कुश ही नहीं है। सिन्ध में "सओगी" नाम की एक अछूत जाति है, जिसकी संख्या कई लाख है। इनमें से कितने ही मुसलमान हो गए हैं, पर अधिकांश हिन्दू धर्म में आना चाहते हैं। कुछ दिन हुए, समाचार-पत्रों में इन्हें शुद्ध किए जाने की चर्चा चली थी और कराँची के कुछ नेताओं की ओर से धन की अपील भी प्रकाशित हुई थी, पर इस कार्य में सिन्ध प्रान्त के हिन्दू नेताओं को कहाँ तक सफलता प्राप्त हुई है—यह अभी तक ज्ञात नहीं हो सका है। कराँची और हैदराबाद की हिन्दू-सभाओं और आर्य-समाजों में अच्छा जीवन है। इसलिए आशा की जा सकती है कि वहाँ के कार्यकर्त्ता इस विषय में अवश्य सजग होंगे।

इस देश-व्यापी आन्दोलन के वर्तमान स्वरूप का संक्षिप्त परिचय यही है। यह उत्साहजनक है या निराशा-जनक—इसका निर्णय आप स्वयं करें। परन्तु प्रश्न तो यह है कि हमने

अछूतपन कहाँ तक दूर किया है ?

शुद्धि और अछूतोद्धार का प्रधान उद्देश यही है कि हिन्दू जाति में जिन ६ करोड़ भाइयों को "अछूत" और "दलित" कहा जाता है, उनका उस अवस्था से उद्धार करके उन्हें ऐसे दर्जे पर रख दें कि हमारे और उनके बीच में न केवल वाणी से बल्कि कार्य से, भी कोई भेदभाव न रह जाय। स्पष्ट शब्दों में, हमारे और उनके बीच में ऐसा ही प्रेम और शिष्टतापूर्ण व्यवहार हो जैसा कि हम अपने भाइयों से करते हैं, अपनी बिरादरी वालों से करते हैं, और जैसा कि द्विजाति कहे जाने वालों का आपस में होता है। संक्षेपतः, दोनों में सदृशता, समानता, तारतम्य और एकरूपता हो। जिन भाइयों के "उद्धार और शुद्धि" करने का हम दम भरते हैं, क्या वस्तुतः हमारा उनके साथ उपर्युक्त व्यवहार है ? कहा जा सकता है कि हिन्दू जाति नई बात को धीरे-धीरे ग्रहण करती है, और जिस जाति ने कई सदियों के बाद अछूतों को गले लगाना शुरू

प्रयाग के कुम्भ मेले में स्वयंसेविकाओं का दल

इन उत्साही स्वयंसेविकाओं ने ऑल इण्डिया सेवा-समिति, इलाहाबाद की ओर से प्रयाग के विगत कुम्भ मेले में प्रशंसनीय लगन और तत्परता से सेवा-कार्य किया है।

किया है, वह समय पाकर मिलाना भी प्रारम्भ कर देगी। प्रथम तो ऐतिहासिक दृष्टि से यह कथन अशुद्ध है कि "शुद्धि" का आन्दोलन हिन्दू जाति के लिए नया है। परन्तु इस ऐतिहासिक वादविवाद को अगर कुछ समय के लिए छोड़ भी दिया जाए और इस उत्तर को ठीक भी मान लिया जावे, तब प्रश्न होता है कि जहाँ पर इस आन्दोलन को प्रारम्भ हुए २५ साल से अधिक हो चुके हैं और जहाँ पर आज से २५ वर्ष पूर्व हज़ारों अछूत कहे जाने वाले भाइयों को हमने साथ मिलाया था—क्या वहाँ सब प्रकार के भेदभाव मिट चुके हैं? हमने इस लेख के प्रारम्भ में पञ्जाब के स्यालकोट ज़िले की मेघ जाति के उद्धार का कुछ संक्षिप्त वर्णन दिया है। इसी प्रकार पञ्जाब के अन्य ज़िलों में भी आज से २५ वर्ष पूर्व कई शुद्धियाँ हुई थीं, परन्तु क्या यह कम खेद की बात है कि इस एक चौथाई सदी में भी हम उन भाइयों के साथ अभी तक वैसा व्यवहार करना नहीं सीख सके हैं जैसा कि हम अपनी बिरादरी वालों के साथ या "छूत" कहे जाने वालों के साथ करते हैं! इन पंक्तियों के लेखक को पञ्जाब के उन गाँवों में बहुधा जाने का अवसर मिला है, जहाँ शुद्ध होने के बाद ये मेघ भाई जाकर आबाद हो गए हैं। उस समय हमें लज्जा और आत्मग्लानि के साथ सिर नीचा करना पड़ा, जब इन भाइयों ने बड़े करुणाजनक शब्दों में यह कहा कि "आर्यसमाजी बन कर हमने बड़ी ग़लती की है। इस समय हम न घर के हैं और न घाट के। अपनी पुरानी बिरादरी में हम बड़े आराम से थे। अब वहाँ से निकल कर जब आपके पास आए हैं तब हमारी कोई सुध ही नहीं लेता। पुरानी बिरादरी में हम मिल नहीं सकते और आप हमें अपनी बिरादरी में मिलाने के लिए तैयार नहीं हैं। बताइए, हम कहाँ जाएँ?" इत्यादि इसी प्रकार के उलहने हमें अन्य शुद्ध हुए भाइयों से भी कई बार और कई जगह सुनने पड़े हैं। कहा जाता है कि शुद्ध होने के बाद हम इन भाइयों के साथ निस्सङ्कोच खान-पान कर सकते हैं। अच्छा, ज़रा इस हौसले की भी पड़ताल कर लीजिए। जम्मू में आज से लगभग ४ वर्ष पूर्व शुद्धि के बाद सह-भोज हुआ। शुद्ध हुए भाइयों ने कहा कि अगर आप

हमें अपने घरों में अपनी स्त्रियों के हाथों से अपने चौके में भोजन कराएँगे तब हम समझेंगे कि आप हमसे घृणा नहीं करते हैं। कुछ आर्यसमाजियों ने उन्हें निमन्त्रण दिया। जब भोजन का समय आया, तब उन महानुभावों की स्त्रियों ने छूतछात दिखाई और व्यवहार भी कुछ रूखा किया। इससे उन शुद्ध हुए भाइयों के हृदय पर जो प्रभाव पड़ा, वह पाठक स्वयं अनुमान कर सकते हैं। और सुनिए। एक बार, कोई ४-५ वर्ष की बात है, एक शुद्ध हुए भाई के यहाँ एक पारिवारिक उत्सव था। उसने इसकी ख़ुशी में स्थानीय आर्यसमाज के अधिकारियों, सभासदों और अपनी बिरादरी के पुरुषों को—सिर्फ़ उन्हें जो शुद्ध हो चुके थे—अपने घर भोजन का निमन्त्रण दिया। समाज के प्रधान मन्त्री तो इधर-उधर के बहाने करके ग़ायब हो गए और मेम्बरों में भी सिर्फ़ तीन ही वहाँ पहुँचे। उन बेचारों के हृदयों पर इससे कितनी ठेस लगी होगी—यह आप स्वयं अनुमान कर लें। हम ऐसे अपनी आँखों देखे कई उदाहरण दे सकते हैं, जिनसे पता लगेगा कि हिन्दू-समाज का सबसे अधिक सुधरा हुआ और अग्रगामी भाग आर्यसमाज भी अभी तक अछूतपन के दोष को, वास्तविक रूप में, गत ३० वर्षों के आन्दोलन-काल में भी नहीं मिटा सका है, तब गड्डा-गति से चलने वाली साधारण हिन्दू जनता का तो कहना ही क्या है? ये तो खान-पान की साधारण बातें हैं, जिनके बन्धनों को हम अभी तक तोड़ नहीं सके हैं। ऐसी अवस्था में, हमारा और इन नवागत भाइयों का कभी आपस में विवाह-सम्बन्ध होगा, यह तो अभी स्वप्न की छाया-मात्र है। इस पर भी हम न सिर्फ़ ६ करोड़ अछूत कहे जाने वालों को, बल्कि ८ करोड़ कट्टर मुसलमानों और १ करोड़ के लगभग ईसाइयों को अपने अन्दर मिला लेने का दम भरते हैं! क्या यह विडम्बना मात्र नहीं है? हमें मौलाना मुहम्मदअली का वह खुला चैलेञ्ज कभी नहीं भूलना चाहिए जो उन्होंने एक आम सभा में भाषण करते हुए और हिन्दुओं को सम्बोधित करते हुए इस प्रकार दिया था—"मेरे हिन्दू दोस्त कहते हैं कि हम अछूतों को शुद्ध करके अपने अन्दर मिला लेंगे। पर क्या उनमें इसकी ताक़त भी है? क्या वे एक मेहतर और भिश्ती के हाथ से पानी का गिलास लेकर पी सकते हैं? अगर पी सकते हैं तो मैं इस सभा में ललकार कर कहता हूँ कि वे आएँ, और पीकर दिखाएँ। और अगर नहीं, तो लाओ, मैं पीता हूँ, और साथ ही उन भाइयों को अपने मज़हब में शरीक होने की, और मेरे साथ खड़े होकर अल्लाह का नाम लेने की दावत देता हूँ......।" हिन्दुओ! आपको वाणी से नहीं, बल्कि अपने आचरण से सिद्ध करना होगा कि मुस्लिम नेता के इस खुले चैलेञ्ज को आप कहाँ तक स्वीकार कर, उसका मुँहतोड़ जवाब देते हैं?

—दीनानाथ, सिद्धान्तालङ्कार

* * *

परदे का पाप

परदे का पाप हमारे ऊपर कब से चढ़ा हुआ है? प्राचीन इतिहास और धर्म-ग्रन्थों में तो इसकी उपयोगिता का प्रमाण हमें कहीं मिलता नहीं; और यह बात नहीं कही जा सकती कि यदि परदा उपयोगी होता, उससे समाज का कोई लाभ होता, वह हमारी धर्म-रक्षा में सहायक होता, तो हमारे ऐतिहासिक और धर्म-ग्रन्थों के प्रणेता, उसे इस प्रकार भुला देते। जब इस प्रकार की कोई चर्चा हमें अपने ऐतिहासिक अथवा धार्मिक ग्रन्थों में नहीं मिलती तो कोई कारण नहीं है कि हम प्राचीनता के नाम पर परदे का पोषण करें और उससे जोंक की भाँति चिपटे रहें।

हमारा इतिहास भी इस बात का साक्षी है। प्रातः-स्मरणीया सीतादेवी से लेकर एक मामूली राजपूत रमणी तक का जीवन-चरित्र देख लीजिए, आपको कहीं परदे का अस्तित्व न दीख पड़ेगा। बड़े-बड़े राजघरानों की स्त्रियाँ, रण-क्षेत्र में अपने पति की सहगामिनी होती थीं और राज्य-सञ्चालन में उनकी सहायिका। जिन देवियों के गौरव के अभिमान से आज भी हम संसार के सम्मुख सिर ऊँचा कर सकते हैं, वे यदि परदे में रहने वाली, कुसंस्काराच्छन्न, रूढ़ियों की ग़ुलाम, अशिक्षित, मूर्ख स्त्रियाँ होतीं, तो क्या उनके द्वारा वे अलौकिक कार्य सम्पन्न हो सकते थे, जिनकी साक्षी इतिहास आज भी पुकार-पुकार कर दे रहा है? वैसी अवस्था में कौन उन्हें जानता? कौन उन्हें प्रातःस्मरणीया, महासती, मङ्गलमयी आदि विशेषणों से स्मरण

करके आदर और श्रद्धा से उनके सम्मुख सिर झुका देता ?

जब दुःशासन कौरवों की सभा में ज़बरदस्ती द्रौपदी को खींच लाया था, उस समय क्या द्रौपदी घूँघट निकाल कर, मुँह फेर कर एक कोने में सिमट गई थी ? कौन हिन्दू का बच्चा नहीं जानता कि उसने वहाँ जो वक्तव्य दिया, जो शब्द कहे, उसे सुन कर वहाँ बैठे हुए बड़े-बड़े राजे-महाराजों के मस्तक लज्जा से झुक गए, सभा में निस्तब्धता छा गई और किसी के मुँह से एक शब्द भी नहीं निकला। वीराङ्गना द्रौपदी यदि परदे में रहने वाली मूर्ख स्त्री होती तो क्या वह भरी सभा में इस प्रकार बड़े-बड़े नीतिज्ञों और युद्ध-विशारदों को लज्जित तथा निरुत्तर कर सकती थी ?

एक द्रौपदी ही क्यों, दमयन्ती, चिन्ता, तारामती, लक्ष्मीबाई आदि सभी वीराङ्गनाओं ने अनेक कष्टों का सामना करते हुए देश और जाति की सेवा तथा अपने धर्म की रक्षा की है। ये स्त्रियाँ अपने वीरतापूर्ण और गौरवमय कार्यों के द्वारा मानव-जाति के इतिहास में अपने नाम को स्वर्णाक्षरों में अङ्कित करने योग्य बना गई हैं। क्या ये स्त्रियाँ परदे में पली थीं ? परदे के भीतर इन वीराङ्गनाओं के गौरवमय जीवन की कल्पना करना भी कितना हास्यास्पद है, कितना युक्तिहीन और मूर्खतापूर्ण !

यह बात निश्चयपूर्वक कही जा सकती है कि भारत में मुसलमानों के आने पर ही परदे का जन्म हुआ है। मसल मशहूर है कि राजा के अनुरूप ही प्रजा होती है। मुसलमान जाति सदा से ही परदे को बहुत महत्व देती रही है। अभी, निकट अतीत में, अफ़ग़ानिस्तान में जो उपद्रव हुए हैं, उथल-पुथल हुई है, उसमें परदे का एक बड़ा हिस्सा रहा है। प्रथमतः मुसलमान शासकों की इसी परदा-प्रियता का प्रभाव हमारी जाति पर पड़ा। किन्तु इसके साथ ही एक दूसरा और सबसे अधिक बलवान कारण भी था, जिसने परदे को सबसे ज़्यादा प्रश्रय दिया और जिसके कारण हमने जान-बूझ कर उसे अपने यहाँ निमन्त्रित किया ; शायद उसे निमन्त्रित करने के लिए हमें मज़बूर होना पड़ा। वह कारण, यवन-शासकों की कामान्धता तथा विलास-प्रियता थी। उस समय यवनों के हाथ में बल था, शक्ति थी, सत्ता थी। वे जो कुछ चाहते, कर सकते थे और करते थे; क्योंकि वे समर्थ थे। कोई उन्हें कुछ कहने वाला न था, उनका कोई नियन्त्रण करने वाला न था। शक्ति और सामर्थ्य पाकर कौन नहीं पागल हो जाता ?

अपनी उसी प्रभुता के घमण्ड में चूर होकर मुसलमान शासक, हिन्दू स्त्रियों पर मनमाना अत्याचार करने लगे। उनके धर्म तथा सतीत्व-धन की रक्षा मुश्किल हो गई। बलपूर्वक वे मुसलमानों के विलास की क्रीड़ा-पुत्तली बनाई जाने लगीं।

तब ? उस समय, इसके प्रतिकार का हमारे पास और उपाय ही क्या था ? यह बात स्मरण रखनी चाहिए कि हम शक्तिहीन थे, ग़ुलाम थे, विवश थे। उस समय सिवा अपने अवरोध के, अपने को छिपा लेने के, रक्षा पाने की और कोई गति न थी। परदे की उपयोगिता उसी समय जान पड़ी, इसकी चलन भी उसी समय हुई।

परदा ही नहीं, उस समय कई उपायों का आविष्कार हुआ। मकान ऐसे बनाए जाने लगे, जिनमें न कोई खिड़की हो और न हवा के आने-जाने का कोई मार्ग। बचपन में ही लड़के-लड़कियों के विवाह कर देने की प्रथा भी उसी समय प्रचलित हुई। किन्तु यह कार्य स्वेच्छापूर्वक, उपयोगी समझ कर नहीं किए गए। इन सभी के अन्तराल में एक भय छिपा था, एक विवशता दबी हुई थी।

किन्तु ग्रहण करने की शक्ति, शायद, आदिकाल से ही हम लोगों में बहुत अधिक रही है। एक बार जिसे ग्रहण कर लिया—वह चाहे अच्छा हो या बुरा—फिर शीघ्र उसे छोड़ने की हमारी इच्छा नहीं होती; भरसक उसे हम नहीं छोड़ते। इसमें भावुकता की मात्रा भले ही अधिक हो, विवेक और व्यावहारिकता तो बिलकुल ही नहीं है।

अपनी रक्षा के लिए, उस समय, हमने जिन उपायों का अवलम्बन किया, आगे चल कर वे ही हमारे सदाचार बन गए। उन्होंने हमसे इतना प्रेम किया, इतनी ममता की कि उनके गुण-अवगुण का विचार छोड़ कर, उनसे चिपटे हुए, सदियों तक हम चिर-निद्रा में सोते रहे। अब, जब उन्हीं के दंशन की ज्वाला से हमारी नींद खुली है, जब हम स्पष्ट यह देख रहे हैं कि हमारे सर्वनाश का यह मूल हमारी ही गोद में पनप रहा है, तो भी, मोह के वश होकर, हम उसे अलग नहीं करना

चाहते। यह कैसी माया है, यह कैसा मोह है? हमारी यह कोमल वृत्ति, यह ममता, यह भावुकता हमें सर्वनाश के किस चिर-तिमिरावृत्त लोक की ओर लिए चली जा रही है?

परदे की उपयोगिता जिस समय थी, किसी ने उसका विरोध नहीं किया। आज भी उस उपयोगिता के विरुद्ध एक शब्द कहने का साहस कोई नहीं कर सकता। किन्तु अब समय ने पलटा खाया है। यवनों का राज्य अब नहीं रहा—यद्यपि यह सच है कि अपना राज्य अभी भी नहीं हुआ, एक विदेशी हटे, दूसरे आए—लेकिन वह समय अब दूर चला गया, वे दिन बदल गए। अब तो जीवन और जाग्रति का युग है, उभड़ने और मरने की घड़ी है, दबने और सिकुड़ने की नहीं। इस समय तो परदे को किसी प्रकार आश्रय नहीं दिया जा सकता; हम स्वयं ही जब आश्रयहीन हो रहे हैं, तो दूसरे को भला क्या आश्रय देंगे?

परदे की प्रथा कुप्रथा है; किन्तु लज्जा हमारे शरीर का आवश्यक और वास्तविक श्रृङ्गार है। यह बात हम स्पष्ट कर देना चाहती हैं कि लज्जा और परदा दोनों बिलकुल भिन्न दो वस्तुएँ हैं। परदा करने वाली निर्लज्जा स्त्रियों का उदाहरण ढूँढ़ने के लिए हमें घर-घर भटकना न पड़ेगा, किसी भी मन्दिर, मेला या उत्सव में इस प्रकार की कोड़ियों स्त्रियाँ मिल सकती हैं; और परदे को हानिकारी और अनावश्यक समझने वाली कितनी ही लज्जाशीला, विनीता कुल-ललनाएँ भी हमारे ही बीच में देखी जा सकती हैं। अतः परदे से लज्जा का कोई नित्य सम्बन्ध है, यह भ्रमात्मक धारणा तो हमें अपने मन से दूर ही कर देनी चाहिए। रह गई परदे की उपयोगिता की बात। ऐसी कोई दलील, ऐसा कोई तर्क या प्रमाण तो उसके पक्ष में हमें मिलता नहीं, जिससे हम उसकी उपयोगिता पर विचार करने का परिश्रम भी करें।

यह तो हुई सिद्धान्त की बात। अब हम आजकल का उसका व्यावहारिक रूप भी देख लें तो अच्छा हो। हमारे घर की बहुएँ सबसे अधिक परदा करती हैं, पर किससे? ससुर, जेठ और घर के अन्य बड़े-बूढ़ों से—मनिहारों, भिखमङ्गों, पीर-फ़क़ीरों और मेलों में घूमने वाले शोहदों से नहीं। चाहिए तो यह था कि वे घर के सब गुरुजनों की सेवा करतीं; उनकी वृद्धावस्था में प्रत्येक भाँति से उनकी सहायता करतीं। किन्तु इसके विपरीत परदे का अड़ङ्गा लगा कर वे सदा उन लोगों के कष्ट और तकलीफ़ का ही कारण बनती हैं। यदि उन्हें किसी वस्तु की आवश्यकता हो, तो वे घण्टों ढूँढ़ते रहें। मालूम होने पर भी बहू जी तो उसे बतला नहीं सकतीं। परदा जो नष्ट हो जायगा!

एक ओर तो घर में परदे की यह हालत, दूसरी ओर मेले-बाज़ारों में देखिए तो मुसलमान चूड़ी वालों के सामने हाथ नङ्गा करके घण्टों बैठे रहने, फेरी वालों से मोल-भाव करके कपड़े और चाट की वस्तुएँ ख़रीदने, आदि से परदा नष्ट नहीं होता। यह सब देख कर परदे की परिभाषा कुछ समझ में नहीं आती बल्कि, और भी जटिल हो जाती है।

इस समय परदे की कुप्रथा के कारण हमारी जाति, हमारे समाज और देश को जो क्षति पहुँच रही है, उसका अनुमान तो वे ही स्त्रियाँ कर सकती हैं, जो परदे को लात मार कर विश्व के रङ्गमञ्च पर अवतीर्ण हुई हैं और ज्ञान तथा अनुभव की आँखों से जिन्होंने अपनी शारीरिक, मानसिक तथा सामाजिक अवस्था पर दृष्टिपात किया है। परदे के कारण ही आज हमारे देश की ९५ प्रतिशत स्त्रियाँ नाना रोगों में ग्रस्त होकर भार-मय जीवन व्यतीत कर रही हैं। स्वास्थ्य के लिए घूमने-फिरने, कसरत करने तथा खेलने-कूदने की नितान्त आवश्यकता है। किन्तु वर्तमान समय में स्त्रियों की दशा देख कर मालूम पड़ता है, मानो स्वच्छ वायु का निर्माण केवल पुरुषों के लिए ही हुआ हो, उससे स्त्रियों का कोई सम्बन्ध ही न हो!

कुछ समय पहले स्त्रियाँ घर का सारा काम-धन्धा अपने ही हाथों करती थीं। इससे भी कुछ व्यायाम हो ही जाया करता था, लेकिन अब तो आलस्य और विलास-प्रियता के कारण वे उसे भी नमस्कार कर बैठीं; अब उनके स्वस्थ रहने और जीने का क्या उपाय है?

मानसिक और सामाजिक उन्नति के लिए शारीरिक उन्नति बहुत आवश्यक है। शरीर की निर्बलता से मन भी निर्बल हो जाता है। निर्बल मन की बुद्धि भ्रान्त हो जाती है, मनुष्य का विवेक नष्ट हो जाता है। अविवेकी मनुष्य का कोई आदर नहीं करता। अस्वस्थ मनुष्य का स्वभाव चिड़चिड़ा हो जाता है। प्रायः स्वभाव की इसी

कमज़ोरी से घर में अनेक प्रकार के कलह-उत्पात हुआ करते हैं।

परदे की दूषित प्रथा ने हमारा सर्वनाश कर डाला है। हमें किसी काम का नहीं रहने दिया है। दिन-रात परदे में पड़ी रहने के कारण, जिन बहिनों को खुली हवा और सूरज की किरणें नहीं मिल सकतीं, वे अविकसित पौधों की तरह कुम्हला कर पीली पड़ जाती हैं, लेकिन हमारे घर की बड़ी-बूढ़ियाँ समझती हैं कि उससे रूप निखर जाता है। स्वास्थ्य की लालिमा में उन्हें सौन्दर्य नहीं दीख पड़ता, अस्वास्थ्य के पीलेपन में ही वे सौन्दर्य का दर्शन करती हैं। यह हमारा अभाग्य नहीं तो और क्या है ?

हमें अपनी दशा पर रहम आती है। हमारी यह विवशता, यह शक्तिहीनता कितनी घातक है, कितनी मर्मान्तक ! विकसित होने के पहले ही जो अङ्कुर मुरझाने के लिए विवश किया जायगा, उसकी क्या दशा होगी ? इस प्रश्न का उत्तर तो बिलकुल ही स्पष्ट और निश्चित है !

दुर्बलता पाप का मूल है। यदि हम दुर्बल हैं, तो संसार का अत्याचार और उत्पीड़न सहने के लिए भी हम बाध्य हैं। बलवान होने पर हमारे सामने आँख उठाने का साहस भी कोई नहीं कर सकता। इतिहास इस बात का प्रमाण है। यवनों के शासन-काल तक स्त्रियों ने अपनी रक्षा अपने बाहुबल से की है। उस समय तक उनके शरीर में, आत्मा में बल था, किन्तु उसके बाद ही परदे का प्रचलन हुआ और साथ ही साथ हमारा सर्वनाश भी हो गया।

शारीरिक बल के साथ ही साथ हमारा आत्मिक बल भी नष्ट हो गया है। आज देश भर में स्त्रियों का जो अपमान और उनकी जो बेइज़्ज़ती हो रही है, उसके मूल में परदे का पाप ही छिपा हुआ है। आज न तो स्त्री-जाति के शरीर में बल रह गया है और न उनकी आत्मा में तेज। आज उनकी कितनी ही ठण्ढी-गर्म 'आहें', कितने ही आँसुओं के सोते निकलते और विलीन हो जाते हैं, पर उनका परिणाम क्या होता है ? घोर अन्धकार ! महा-शून्य !! अनन्त नैराश्य !!! ओफ़—

परदे में रहने के कारण स्त्रियों का मन और उनकी बुद्धि दोनों ही अविकसित रह जाते हैं। न उनकी शिक्षा होने पाती है और न वे कुछ बाहरी ज्ञान ही प्राप्त कर सकती हैं। उनकी बुद्धि की अपरिपक्वता और भोलेपन का लाभ भी ख़ूब उठाया जा रहा है। दुनिया भर के साधु-महन्त और जोगी-फ़क़ीर उन्हें लूटते हैं और अनेक बार उनके धर्म तक का सर्वनाश करने में पश्चात्पद नहीं होते। मेलों और मन्दिरों में, गङ्गा आदि नदियों और रेलवे-स्टेशनों पर, अनेक बार ऐसा देखा जाता है कि भीड़ में स्त्री पुरुष से अलग रह गई और अनजान में दूर तक किसी दूसरे पुरुष के साथ जाकर खो गई। वैसी अवस्था में पुरुष के लिए तो कोई बात नहीं, बेचारी स्त्री को प्रायः लाञ्छित और अपमानित होना पड़ता है।

परदानशीन स्त्रियों की तरफ़ लुच्चे-लफङ्गे घूरते और अकेली पाकर उन्हें अनेक प्रकार से छेड़ते भी हैं। किन्तु मुँह खोल कर स्वतन्त्रतापूर्वक रास्ते पर चलने वाली स्त्री की ओर आँख उठा कर देखने का साहस भी कोई नहीं कर सकता। वह परदा किस काम का, जो अपनी बेइज़्ज़ती का बाइस हो और जिसमें लाभ की अपेक्षा हानि ही अधिक हो !

हमें अपनी बड़ी-बूढ़ियों से भी कुछ प्रार्थना करनी है। वे इस नाशकारी और घातक कुप्रथा की ओर ध्यान दें और इसका मूलोच्छेद करने के लिए दृढ़-प्रतिज्ञ हो जायँ। उनके हाथ में परिवार का शासन-सूत्र है। वे समर्थ हैं, बुद्धिमती हैं, वे यदि चाहेंगी तो सब कुछ कर सकेंगी और उनके द्वारा यह कार्य आसानी से हो जायगा।

परदे के कारण ही सभ्य-समाज में हमारा कोई स्थान नहीं है। अनेक बार हमारे यहाँ की स्त्रियाँ घर के काम-धन्धों की दुहाई देकर शिक्षा और समाज से अपना पल्ला छुड़ाना चाहती हैं, पर यह घातक ख़्याल है। स्त्रियाँ ही समाज की वास्तविक शक्ति हैं, अतः हमें प्रत्येक सामाजिक कार्य में दिलचस्पी लेनी चाहिए। बिना ऐसा किए समाज का मङ्गल नहीं हो सकता; लेकिन इसके लिए परदे को लात मारना होगा, उसे अपने घर से सदा के लिए निर्वासित करना होगा और उसकी झूठी माया-ममता छोड़नी होगी।

—सुन्दरप्यारी माथुर

* * *

जैन-महिला-रत्न

स्वर्गीया श्रीमती मगनबाई जी (जे० पी०)

हमारी अदूरदर्शिता

संसार में प्राणि-मात्र स्वार्थी हैं। परन्तु मनुष्य और इतर प्राणियों के स्वार्थ में इतना अन्तर अवश्य है कि मनुष्य अपने स्वार्थ के चिन्तन में अपनी बुद्धि के द्वारा आगे-पीछे का भी ध्यान रखता है, बुद्धिहीन इतर प्राणियों के समान वह क्षणिक और क्षुद्र लाभ के लिए किसी स्थायी महान लाभ से मुँह नहीं मोड़ता। पशु और मनुष्य में प्रधानतः इतना ही अन्तर है।

बड़े दुःख का विषय है कि शताब्दियों की पराधीनता ने हमारे ज्ञान-विज्ञान का विनाश करने के साथ-साथ हमारी साधारण विवेक-बुद्धि और निजी हानि-लाभ को समझने की शक्ति भी नष्ट कर दी है। समाज की ओर दृष्टि दौड़ाने पर हमें पग-पग पर यह दीख पड़ता है कि लोग एक पैसे के लाभ के पीछे रुपए और गिन्नी को खो रहे हैं। एक दिन पेट भर खाने के सुख के नशे में जन्म भर की जीविका को गवाँ रहे हैं, और बिना प्रयास एक वैतरणी पार करने की धुन में नित्य अनेकों वैतरणियों की सृष्टि कर रहे हैं। जिधर देखिए उधर ही अनाचार और दुराचर मुँह बाए अपना सर्वग्रासी स्वरूप दिखला रहा है। जो ही सुधारक और उपदेशक हैं, वे ही छिपे रुस्तम नज़र आते हैं। असंख्य यातनाओं के चक्र में पिसी हुई अबलाओं के आर्त्तनाद और रोगग्रस्त, शुष्क-कण्ठ शिशुओं के क्रन्दन से समाज में 'त्राहि-त्राहि' मची हुई है, परन्तु किसी विश्वस्त दिशा से त्राण की कोई आशा नहीं दीखती। रक्षा की आशा से जिस किसी की बाँह पकड़ी जाती है, वही पीछे भक्षक सिद्ध हो जाता है। ऐसी दशा में हिन्दू-समाज और हिन्दू देश के उद्धार की आशा कैसे की जाय, यह हमारे सामने एक जटिल समस्या है।

यों तो 'चाँद' में समय-समय पर सामाजिक अनाचारों का प्रकाशन होता ही रहता है, पर मैं अपने कथन को स्पष्ट करने के लिए दो-एक उदाहरण यहाँ दे देना चाहता हूँ। यह मेरा पक्का विश्वास है कि अधिकांश सामाजिक कुरीतियों की जड़ को हमारी एक ही विशेष सत्यानाशी दुर्बुद्धि मज़बूत किए हुए है। वह दुर्बुद्धि यह है कि पाश्चात्य सभ्यता के सम्पर्क में आकर धन को हम सब गुणों के ऊपर महत्व देने लग गए हैं। विशेषतः विवाह-सम्बन्ध में जितने अनाचार फैले हैं, उनका तो एकमात्र यही कारण है। परन्तु समाज का आधार उचित विवाह-सम्बन्ध ही है। जब तक वैवाहिक अनाचार समाज में रहेंगे तब तक कोई उन्नति असम्भव है; क्योंकि जनता में गुण-ग्रहण का भाव नहीं रहने से गुणों के अनुशीलन का प्रोत्साहन नहीं रह जाता, और सब लोग जिस किसी प्रकार धनार्जन को ही परम ध्येय समझने लगते हैं। हमारे यहाँ की विवाह-शादियों में अधिकतर वर-कन्या के गुण को कोई महत्व नहीं दिया जाता, कन्या-पक्ष वाले आँख मूँद कर कन्या को धनी के घर में ढकेल देना चाहते हैं, चाहे घर के अन्दर उसके लिए सर्वनाश का गढ़ा ही क्यों न तैयार हो। वर-पक्ष वाले भी अधिक तिलक और दहेज के लोभ से लूली-लँगड़ी, किसी लड़की के साथ अपने लड़के को ब्याह देने में आगा-पीछा नहीं सोचते, चाहे पीछे उन दोनों का जीवन कैसा ही हो।

ता० १६ जुलाई सन १९२९ की घटना है, आरा ज़िले के एक ब्राह्मण की १८-१९ वर्ष की विवाहिता लड़की हमारे आश्रम में एक मुसलमान युवक के पञ्जे से छुड़ा कर लाई गई। उसकी करुण कहानी सुन कर वहाँ के उपस्थित लोगों को बड़ा ही क्षोभ हुआ, परन्तु समाज की वर्तमान दशा को बनाए रखने में हिन्दू-मात्र के साथ अपने को भी उत्तरदायी समझ कर और अपनी विवशता का ध्यान करके हम लोग कुछ देर के बाद समाहित हो गए। दो-ढाई वर्ष हुए, पिता के देहान्त हो जाने पर लड़की की माता ने एक धनिक घर में ७-८ वर्ष के बच्चे से उसका विवाह यह कह कर कर दिया कि धनिक घर में जायगी तो हर तरह से खाने-पहनने का सुख पावेगी। विवाह के बाद लड़की प्रायः दो वर्ष तक मायके में ही रही, परन्तु गत कार्तिक मास में माता का देहान्त हो गया, लड़की का बड़ा भाई अब उसका संरक्षक हुआ। वह दुश्चरित्र है, उसने बहिन का सोने का कण्ठा बेच कर रुपया ख़र्च कर दिया। इसी बीच में लड़की अपनी ससुराल गई। वहाँ जब विवाह में वर की ओर से दिया हुआ कण्ठा उसके कण्ठ में नहीं दीख पड़ा तो वे लोग नित्य इसे सताने लगे। घर का सारा काम इसीके सिर पड़ा। इतना करने पर भी कल्याण नहीं। लात-घूँसे का भी नियम हो गया। उसकी कोई रक्षा करने वाला नहीं। पतिदेव ठहरे ९-१० वर्ष के नादान।

अब वह करे तो क्या करे ! भाई वैसा, पति ऐसा, जाय तो कहाँ जाय ? सब ओर से हताश होकर १९ जुलाई की रात में अपने शेष गहने तथा कोई बीस रुपए लेकर वह घर से निकली। वह अपनी बड़ी बहिन के पास उसकी ससुराल जाना चाहती थी। रास्ते में मुज़फ़्फ़रपुर के एक मुसलमान युवक से उसकी भेंट हुई। वह ऊपर से सहानुभूति दिखलाते हुए उसे उसकी बहिन के पास पहुँचाने की बात कह कर आरा से पच्छिम जाने के बजाय पूरब पटना की ओर गाड़ी में बैठा कर ले चला, और उसके पास के नोट भी भँजा देने के बहाने उसने अपने हाथ में कर लिए। दीघाघाट पहुँचने पर उपस्थित हिन्दुओं को इन दोनों का आकार-प्रकार देख कर सन्देह हुआ और सारा भेद खुला। तब समस्या यह उपस्थित हुई कि यदि उस विधर्मी को पुलिस के हवाले किया जायगा तो मुक़दमा चलने पर उस लड़की को कचहरी में बार-बार उपस्थित होना पड़ेगा, जो उसके सम्बन्धियों को शायद ही पसन्द हो और उसका दुःखमय जीवन इस तरह कलङ्कित होकर शायद और भी अधिक नारकीय हो जाय। यही सोच कर उसे साधारण ताड़ना के साथ छोड़ देना पड़ा और कन्या को उसके घर पहुँचा दिया गया। ऐसी घटनाएँ देश में रोज़-रोज़ हुआ करती हैं, जिससे हिन्दुओं की पङ्गुता और विवशता दयनीय रूप में प्रकट होती है। हिन्दुओं की इस कमज़ोरी को विधर्मी अच्छी तरह जानते हैं और मौक़े पर इससे लाभ उठाने से कभी बाज़ नहीं आते हैं।

दूसरी करुण कहानी सुनिए। कुछ मास हुए, मैंने बिहार प्रान्तीय हिन्दू-सभा को दरभङ्गे की एक ऐसी युवती ब्राह्मण विधवा की सूचना दी थी जो बार-बार रक्षक वेष वाले भक्षकों के द्वारा सताई जा चुकी है। जिस गाँव में वह रहती है, वहाँ के सारे युवक भ्रष्ट आचरण वाले हैं और उसके अपने श्वसुर और देवर दुर्बलता के कारण उसकी रक्षा करने में असमर्थ हैं। गाँव में जिसे-जिसे भला आदमी समझ कर उसने रक्षा की भिक्षा माँगी, उन सभी ने उसके साथ व्यभिचार करके और भ्रूण-हत्या करा कर उसे नीचे गिराया। ऐसी दशा में भी उसके किसी आश्रम में ले जाने के विरुद्ध सारा गाँव अपनी नाक कट जाने की दुहाई देकर विरोध करने पर तुल गया। मज़ा तो यह कि गाँव में सब जानते हैं कि अमुक-अमुक ने बल और ताड़नापूर्वक इस अबला का सर्वनाश किया है, पर उन्हें कोई दोष देने वाला नहीं। जिसको जो कुछ ज्ञान-गूदरी छाँटनी रहती है, वह उस बेचारी के सामने ही छाँट जाता है। विशेषतः धनिक दुराचारी के विरुद्ध तो कोई कुछ बोल नहीं सकता। वह बेचारी विधवा अभी तक उसी असहाय दशा में पड़ी हुई है। मैं इन करुण कहानियों का यहीं अन्त करके आगे बढ़ता हूँ।

जब आर्यसमाज का जन्म हुआ था तो स्वामी दयानन्द श्राद्ध की निन्दा करने में यह भी कहते थे कि जो लोग माता-पिता को जीते रहने पर पेट भर भोजन और तन ढकने भर कपड़ा नहीं देते हैं, वे उनके मरने पर उन्हें श्राद्ध के द्वारा तृप्त करने का ढोंग रचते हैं। यह उनकी मूर्खता है। मैं सनातनधर्मी होते हुए भी स्वामी दयानन्द के इस कथन से पूर्णतया सहमत हूँ, और इसी सुर में सुर मिला कर कहना चाहता हूँ कि जो लोग अपनी सन्तानों के भरण-पोषण और शिक्षा-दीक्षा में उचित मात्रा में धन व्यय नहीं करते उनके उपनयन और विवाहादि में अपनी शान दिखाने को उचित से अधिक व्यय करते हैं, वे महामूर्ख हैं। आज हमारा समाज ऐसे ही महामूर्खों से भरा हुआ है। जिस लड़की को जन्म से विवाह के समय तक कभी भरपेट दूध अथवा अच्छा अन्न खाने को नहीं मिला है, उसे भी विवाह के समय हज़ार-बारह सौ के गहने और सौ-डेढ़ सौ की बनारसी साड़ी दी जाती है। उन गहनों को बन्द घरों में अपनी देह पर लादे रहने से उनका स्वास्थ्य मिट्टी में मिल जाता है, चोर का जो भय रहता है वह इसके अलावे और दुर्भाग्यवश यदि उसमें से एक-आध खो गया तो उन्हें घर वालों का कोप-भाजन भी बनना पड़ता है।

मैंने ऐसे भी लोग देखे हैं जिनके लड़के समय पर फ़ीस नहीं देने से बारम्बार पाठशाला से निकाल दिए गए हैं, और उन्होंने उनके उपनयन में सैकड़ों रुपए ख़र्च किया है, भोज दिया है, नाच नचाया है !

मैंने ऐसा भी आदमी देखा है जिसने अपने गाँव के किसी बड़े आदमी की बराबरी करने की धुन में अपनी बड़ी कन्याओं के विवाह में इतना अधिक व्यय किया कि उसका दिवाला निकल गया और छोटी कन्या को

एक बूढ़े आदमी के साथ बिना उचित व्यय किए विवाह देना पड़ा।

विवाह की बात यहीं तक रहे। हम लोग दूसरी बातों में भी कैसी नीचतापूर्ण अदूरदर्शिता दिखला रहे हैं, यह भी ध्यान देने योग्य है। हमारा नौकर बीमार है, उसके पास कुछ सञ्चित द्रव्य नहीं है, जिससे उसकी दवा-दारू की जाय। हम लोगों का नियम है कि हम बीमारी के दिनों का वेतन नहीं देते। वह घर में पड़ा-पड़ा कराह रहा है। दो-चार रुपए के ख़र्च से उसका बेड़ा पार हो जायगा। परन्तु यदि वह मर जाता है तो समय पर दूसरा नौकर नहीं मिलने से हमें सैकड़ों रुपए की क्षति सहनी पड़ती है। इस पर भी हमारी आँखें नहीं खुलती हैं।

नौकर की बात जाने दीजिए। अपने बच्चे दूध, घी आदि पौष्टिक भोजन की कमी से साल में अनेक बार बीमार पड़ते हैं, जिसमें डॉक्टर, वैद्य को सैकड़ों रुपए देने पड़ते हैं। परन्तु हमारी आदतें नहीं बदलती हैं। बीमारी छूटने पर फिर भी वही रूखा-सूखा भोजन चलता रहता है।

गर्भिणी स्त्री को पौष्टिक तथा लघुपाक भोजन नहीं मिलने से गर्भ की यथोचित पुष्टि नहीं होती, और प्रसवकाल में या तो प्रसूता को अधिक कष्ट होता है, या गर्भ ही नष्ट हो जाता है। अनेक अदूरदर्शी लोगों के घरों में एक नहीं, अनेक स्त्रियाँ योंही प्रसवकाल में काल के मुँह में चली जाती हैं, पर उनके ज्ञान-चक्षु का परदा नहीं हटता।

परदा-प्रथा के दुष्परिणाम को हम लोग खुली आँखों देख रहे हैं, तब भी पुरानी लकीर से इञ्च भर भी हटने की हमें हिम्मत नहीं हो रही है। हम देखते हैं कि आधा पेट रूखा-सूखा खाकर भी हमारे खेत में मज़दूरी करने वाली, घास छीलने वाली और गाय चराने वाली ग़रीब स्त्रियाँ, चहार-दीवारी के अन्दर गन्दी हवा में २४ घण्टे बन्द रहने वाली उच्च जातियों से धनिक घर की स्त्रियों से कहीं अधिक स्वस्थ और सुखी रहती हैं। प्रसवकाल में उन्हें अधिक कष्ट नहीं होता और उनके बच्चे भी अपेक्षाकृत कम मरते हैं।

हमारा मकान बनाने का पुराना ढङ्ग दुनिया में अपना सानी नहीं रखता है। आप कहीं किसी साधारण पुराने मकान को देखिए, उसमें हवा और रोशनी के आने-जाने का ठीक प्रबन्ध शायद ही कहीं पाइएगा। सच पूछिए तो जहाँ हम अनेक बातों के लिए अपने पूर्वजों की सूझ की तारीफ़ करते हैं, वहाँ हम इस विषय में उनकी करतूत पर हैरान रह जाते हैं। पुराने ढङ्ग से मकानों का बनाया जाना अभी गाँवों में जारी है, जिससे हमारी स्त्रियों और बच्चों की रही-सही तन्दुरुस्ती ख़ाक में मिल रही है। हम जानते हैं कि सत्यानाशी परदा-प्रथा इसकी जड़ में है। उसके रहते इसमें सुधार होना कठिन है।

जिन-जिन कारणों से गाँवों की दुर्दशा हो रही है, उनमें एक यह प्रधान कारण है कि गाँवों के प्रमुख लोग सामूहिक कल्याण से बिल्कुल मुख मोड़े हुए हैं। जब तक उनके अपने घर में आग नहीं लगती है, तब तक वे पड़ोसी के घर की आग बुताने में हाथ बटाना ज़रूरी नहीं समझते हैं। वे यह सोचना भूल गए हैं कि आग नहीं बुतने पर चन्द मिनटों में उनका घर भी उसकी लपट से नहीं बचने पावेगा। यदि गाँव में कोई दुर्व्यसन घुस चुका है, कोई दुराचारी अपना हाथ-पाँव फैला रहा है तो आज नहीं, कल उनके लड़के-लड़कियाँ भी उसके शिकार बन जाएँगी और एक के बजाय चार ख़र्चने पड़ेंगे। ऐसा देखा गया है कि जिस गाँव वा मुहल्ले में एक आदमी ने गाँजा पीना शुरू किया है, वहाँ कुछ ही दिनों में पचासों पीने लग गए हैं। एक व्यभिचारी पुरुष ने अनेक को आचार-भ्रष्ट कर दिया है। दुर्गुण, प्लेग से भी अधिक संक्रामक और घातक होते हैं। इस विषय में हमारी अदूरदर्शिता हमारा सबसे बड़ा अनिष्ट कर रही है। गाँवों की सफ़ाई की भी ठीक यही स्थिति है। एक जगह की भयानक गन्दगी से संक्रामक रोग उत्पन्न होकर सारे गाँव को तबाह कर देता है, पर इस ओर किसी का ध्यान नहीं जाता है।

सम्पत्ति-शास्त्र के तो हम इतने कीड़े हो रहे हैं कि दिन-प्रतिदिन बढ़ती हुई हमारी दरिद्रता न मालूम हमें कहाँ ले जाकर विराम लेगी। व्यापार-चातुरी की बात जाने दीजिए। उसमें तो विदेशियों की एजेण्टगिरी पर ही हम सन्तोष कर रहे हैं और अभी वर्षों तक करते रहेंगे। हमारे देश में अधिकांश लोगों की जीविका जो कृषि है, उसके सम्बन्ध में भी बाप-दादों से प्राप्त सीधी-सादी बातों को हम भूल बैठे हैं। इससे अनर्थ हो रहा

है। कृषि की सफलता के लिए पशुओं का उचित संख्या में पालन-पोषण कितना आवश्यक है, इसको तो हम एकदम भूल ही गए हैं। साथ ही गाँव भर के सहयोग से होने वाले नहर, बाँध आदि के प्रबन्ध का काम बिल्कुल अव्यवस्थित हो गया है, जिससे सब लोगों की अपार क्षति हो रही है। जिस बाँध की मरम्मत में अथवा जिस नहर के उड़ाहने में १००) रु० की ज़रूरत है, उसके समय पर न किए जाने से एक हज़ार की क्षति लोग अपनी आँखों देखते और बरदाश्त करते हैं, पर आगे वर्ष भी समय पर उस काम को करने की ओर किसी का ध्यान नहीं जाता है।

संक्षेप में, हमारे जीवन की सारी बातें इसी प्रकार अदूरदर्शितापूर्ण होती चली जा रही हैं, पर समाज की आँखें अभी भी नहीं खुल रही हैं। हमारी आयु दिन-दिन घटती जा रही है, देश में दुःख और दरिद्रता की वृद्धि हो रही है, पराधीनता की ज़ञ्जीर मज़बूत होती जा रही है, तो भी हमारे हृदय में आत्म-गौरव की ज्योति नहीं जग रही है, हमारी दृष्टि पैनी नहीं हो रही है—यह बड़ी ही करुणाजनक दशा है। संसार में अन्यत्र कहीं इसकी तुलना नहीं मिल सकती है। इस विषम स्थिति को सुलझाने का सारा भार देश के उन युवकों तथा युवतियों पर है, जिनमें उत्साह हो, चिन्तन-शक्ति हो, अपने निर्णय पर अटल रहने की दृढ़ता हो, जिन्हें अपने विश्वास के सामने प्रबल से प्रबल विरोध भी कच्चा धागा सा जँचे, और सर्वोपरि जिनमें लोक-सेवा और आत्म-त्याग का भाव हो। ईश्वर की असीम कृपा से ऋषि-मुनियों के इस प्राचीन, पवित्र यज्ञ-भूमि में ऐसे दिव्यात्माओं की झलक जहाँ-तहाँ दीखने लगी है। आशा है, यह धारावाही होकर निकट भविष्य में सारे देश को ज्योतिर्मय कर देगा।

—रामनिरीक्षणसिंह, एम० ए०

* * *

बनावटी सौन्दर्य

विगत अप्रैल मास के 'चाँद' में 'सौन्दर्य-साधना' शीर्षक एक लेख प्रकाशित हुआ है। यह लेख, जैसा इसके नाम से ही प्रगट होता है, मनोरञ्जक है। जिन लोगों की विवेक-शक्ति प्रौढ़ है, उनके लिए यह शिक्षाप्रद भी हो सकता है। इसमें सुयोग्य लेखक ने बड़ी निपुणता के साथ दिखाया है कि बनावटी सौन्दर्य की उपासना करने वाले मनुष्यों को कैसे-कैसे दुर्द्धर्ष व्यापार करने पड़ते हैं, कैसे-कैसे कष्ट सहने पड़ते हैं, और किस प्रकार प्रायः मन की शान्ति से भी हाथ धोना पड़ता है। वह लिखते हैं :—

जो स्त्रियाँ सौन्दर्य के वर्तमान आदर्श पर पहुँचने का सङ्कल्प करती हैं, उन्हें उसके लिए कठिन तपस्या करनी पड़ती है, बड़ी-बड़ी यन्त्रणाएँ तक सहनी पड़ती हैं।

भोजन कर लेने पर जब आराम करने की इच्छा होती है, तब एक सौन्दर्य-प्रिय स्त्री को खड़ा रहना पड़ता है, क्योंकि उसका विश्वास है कि ऐसा अभ्यास उसकी सुन्दरता बढ़ाएगा। इतना ही नहीं, वरन सोते समय उसके लिए तकिए लगाना वर्जित है। ऊँचे-ऊँचे तकिए लगाने से ठोड़ी के नीचे का मांस लटक कर दूसरी ठोढ़ी का रूप धारण कर लेता है। मीठी और स्वादिष्ट चीज़ों को वह त्याग देती है; प्यास से गला चटखने पर भी ठण्ढा शर्बत पीने का उसे साहस नहीं होता; टहलते समय उसे बातचीत करने की मोहलत नहीं मिलती; पन्द्रह मिनट में एक मील तय करना होता है; चलते समय कौन सा भाग कड़ा, तना हुआ रखना है, कौन सा विशेष रूप से ढीला छोड़ना है—यह उसे याद रखना पड़ता है। सारा वज़न छोड़ कर सोफ़ों पर झूलना उसके लिए वर्जित है और जाँघों पर काफ़ी ज़ोर देकर तने हुए बैठना उसके लिए एक अत्यन्त आवश्यक कार्य है।

घण्टों टरकिश बाथ या अन्य प्रकार का स्नान करना; शरीर के भिन्न-भिन्न भागों को मलना; जहाँ-तहाँ उस पर पट्टी बाँधना; जहाँ से मांस कम करना हो, उस सुकोमल भाग को औज़ारों से पीटना; उस पर रोलर फेरना—यह सब एक

अध्यापिकाओं के ट्रेनिङ्ग स्कूल में श्रीमती स्टनले

मद्रास के गवर्नर की पत्नी श्रीमती बी० स्टनले कोकनाडा में अध्यापिकाओं के जुबिली ट्रेनिङ्ग स्कूल का निरीक्षण कर रही हैं।

आदर्श सुन्दरी के कर्त्तव्य हो जाते हैं। एक परिमित वज़न से ऊपर हो जाना बड़ी लज्जा का कारण समझा जाता है। अतः इस कलङ्क से बचने के उद्देश्य से आधुनिक स्त्रियाँ पतला और सुडौल शरीर बनाने के लिए अत्यन्त कष्टदायक उपचार भी सहज ही में सह लेती हैं।"

इस प्रकार के कृत्रिम और जी उबाने वाले उपचारों का एक विस्तृत और मनोरञ्जक वर्णन देने के बाद विद्वान लेखक ने जहाँ इनसे कुछ निष्कर्ष निकालने का प्रयत्न किया है वहाँ वह अपने सच्चे और स्वाभाविक रास्ते से बहक गए हैं। अपने लेख के अन्त में उन्होंने जो विचार प्रगट किए हैं वे भ्रमात्मक हैं, और स्वयं उन्हीं के लेख से उन विचारों का खण्डन भी हो जाता है। अतः इस विषय में यहाँ कुछ विस्तार से लिख कर मैं कतिपय भ्रमों का निवारण करना चाहता हूँ।

लेखक महोदय की सम्मति है कि हम लोगों को "अपनी आवश्यकता की पूर्ति, रुचि के परिष्कार और शृङ्गार-कला में सुधार करने के लिए" "पाश्चात्य देशों के शृङ्गार-टेबुल पर से कुछ चीज़ें चुन कर अपने शृङ्गार-दान में रख" लेनी चाहिए। यद्यपि मैं विदेशी कला को अपनाने का सर्वांग में विरोधी नहीं हूँ, तथापि मैं इस बात का पक्षपाती अवश्य हूँ कि इस कला को अपनाने में विवेक से काम लेना चाहिए। भारतवर्ष ने अपनी राजनीतिक ग़ुलामी के प्रसाद-स्वरूप बहुत सी भली-बुरी बातें अपने विदेशी मालिकों से सीखी हैं। बनाव-शृङ्गार के पश्चिमी ढङ्ग भी उन्हीं बातों में से एक हैं। अङ्गरेज़ी शिक्षा के साथ-साथ इस ढङ्ग की बड़े ज़ोरों से वृद्धि हुई है और कुछ बड़े-बड़े शहरों तथा प्रतिष्ठित समझे जाने वाले कुछ परिवारों में तो इसकी यहाँ तक वृद्धि हो चुकी है कि अब इसकी मर्यादा बाँधना आवश्यक प्रतीत होता है। यूरोप में, विशेषतः इटली में, मर्यादा बाँधने की यह क्रिया आरम्भ भी हो गई है। परन्तु भारतवर्ष में अभी इसमें विलम्ब है। इसका कारण यह है कि भारतवर्ष ग़ुलाम है। हम लोग हर एक बात में अपने पाश्चात्य मालिकों की नक़ल करते हैं, और इसलिए यह आवश्यक

'लाला रूख़' नाटक का एक दृश्य

यह नाटक मैसूर के महारानी कॉलेज के छात्रों ने कॉलेज-दिवस के उत्सव पर बड़ी सफलता के साथ अभिनीत किया है। यह पहिला ही अवसर है, जब मैसूर में यह नाटक खेला गया है।

है कि हर एक बात में हम उनसे कम से कम पचास वर्ष पीछे रहें। यूरोपीय देश अपने वर्तमान फ़ैशन और सभ्यता को छोड़ने के लिए बेचैन हैं; हम बेचैन हैं उनके जूठे फ़ैशन और छोड़ी हुई सभ्यता को अपनाने के लिए! अतः इन चीज़ों के मीठे और कड़वे फलों का अनुभव करने में हमें कुछ समय और लग ही जायगा।

सम्भव है, मेरी ये बातें कुछ लोगों को बहुत कड़वी लगें, पर कम से कम इतना तो प्रत्येक विचार-शील मनुष्य को मानना पड़ेगा कि सौन्दर्य-प्राप्ति के इन पाश्चात्य साधनों के पीछे दीवाने हो जाने के पहले इन्हें प्राप्त करने के उद्देश्य पर एक बार विचार कर लेना बुरा न होगा। यूरोप और अमेरिका में, जैसा कि 'सौन्दर्य-साधना' के सुयोग्य लेखक ने बताया है, सदा सुन्दरी और युवती दीख पड़ने की चिन्ता विशेषतः उन्हीं स्त्रियों को होती है, जो अभिनेत्रियाँ या फ़िल्म-स्टार्स हैं, क्योंकि रूप और हाव-भाव का प्रदर्शन ही उनकी जीविका का एकमात्र साधन है। उनसे उतर कर इस विषय में इन महिलाओं का स्थान है, जो दूकानों या ऑफ़िसों में काम करती हैं। इनके लिए भी अपने रूप की रक्षा करना आवश्यक है, क्योंकि इन्हें रखने वाले लोग ग्राहकों को आकर्षित करने के लिए सुन्दरी और युवती स्त्रियों को ही चुन कर अपनी नौकरी में रखते हैं। यूरोप में दाम्पत्य जीवन की जो अवस्था है, उसके कारण वहाँ की गृहस्थ ललनाओं को भी सौन्दर्य-रक्षा की कुछ चिन्ता करनी पड़ती है, पर अभिनेत्रियों और दूकान पर काम करने वाली स्त्रियों की अपेक्षा बहुत ही कम। अब प्रश्न यह उठता है कि भारतीय स्त्रियों को इनमें से कौन सा काम करना है, जिसके लिए वे बनाव-श्रृङ्गार की दौड़ में अपनी पाश्चात्य बहिनों के साथ बाज़ी मार ले जाने की चेष्टा करें?

यदि वेश्याएँ सौन्दर्य-प्रतियोगिता में भाग लें और अभिनेत्रियाँ अपनी रूप-राशि की रक्षा में लाखों रुपए पानी की तरह बहा दें तो इसमें कोई आश्चर्य नहीं; यह उनका व्यवसाय है। पर भारतीय ललनाएँ, जिनकी आमदनी न अमेरिकन फ़िल्म-स्टार्स की आमदनी की भाँति भारत के वाइसराय की तनख़्वाह से तिगुनी है,

'पृथ्वीराज' नाटक का एक दृश्य

इस नाटक में भाग लेने वाले सभी पात्रों का अभिनय केवल महिला विद्यार्थियों ने ही किया है। यह नाटक मैसूर के महारानी महिला कॉलेज की छात्राओं ने कॉलेज-दिवस के उत्सव पर बड़ी सफलता के साथ खेला है।

और न जिन्हें दूकान पर बैठ कर ग्राहकों को आकर्षित करना है, ऐसा क्यों करें? यह बात समझ में नहीं आती। ऐसा करने के लिए अन्ध-परम्परा के अतिरिक्त और कोई कारण नहीं दीखता। पुरानी चाल के लोग आँखें मूँद कर पुरानी बातों से चिपटे हुए हैं; नई रोशनी के युवक और युवतियाँ आँखें बन्द कर विदेशी चाल-ढाल के पीछे दौड़ी जा रही हैं। परन्तु हैं ये दोनों बातें अन्ध-परम्परा ही—दोनों ही अज्ञान-मूलक और दोनों ही एक समान घातक। अनुकरण का यह प्लेग भारतवर्ष की पढ़ी-लिखी स्त्रियों में बड़े ज़ोरों के साथ फैल रहा है। सार्वजनिक स्थानों और सड़कों पर ऐसी गृह-देवियों का दिखाई पड़ना, जिनकी वेश-भूषा देख कर उन्हें वेश्याओं से पृथक कर सकना असम्भव हो, आजकल कोई विरल बात नहीं है। अनेक बार तो ये फ़ैशनेबल देवियाँ उन अङ्गों को भी खुला रखती हैं, जिन्हें खोल कर चलना वाराङ्गनाएँ भी शील के विपरीत समझती हैं। क्या कला और सौन्दर्य का कोई भी प्रेमी यह बता सकता है कि जिन गृह-ललनाओं का उद्देश्य है अपने पति का साहचर्य, बच्चों का पालन-पोषण, अतिथियों का स्वागत, गुरुजनों की सेवा, उनके लिए ऐसी वेश-भूषा की क्या आवश्यकता है? उन्हें ऐसे कपड़े क्यों पहनने चाहिए, जिससे उनके अधिकांश अङ्ग खुले रहें? उन्हें अपने रूप को ऐसा क्यों बनाना चाहिए जिसमें मादकता का बाहुल्य हो? क्या इन बातों से गुरुजनों की सेवा में, बच्चों के पालन-पोषण में अथवा अन्य पारिवारिक कर्तव्यों के निबाहने में कोई सहायता मिलती है?

यह सच है कि नर-नारी के पारस्परिक आकर्षण में सौन्दर्य का बहुत बड़ा हाथ है, परन्तु उस आकर्षण को स्थायी बनाने के लिए, उस आकर्षण से उत्पन्न होने वाले सम्बन्ध को—दाम्पत्य सम्बन्ध को—सरस और मधुर बनाने के लिए सौन्दर्य की अपेक्षा सेवा और त्याग, भक्ति और वात्सल्य की आवश्यकता कहीं अधिक है। जिस स्त्री के हृदय में पति के प्रति सेवा, गुरुजनों के प्रति भक्ति, सन्तति के प्रति वात्सल्य का भाव न हो, वह चाहे

दिल्ली में विराट अन्तर्जातीय सहभोज

('चाँद' के लिए रात में फ़्लैश लाइट से लिया हुआ विशेष फ़ोटो)

यह सहभोज दिल्ली महिला लीग के प्रबन्ध से सरस्वती-भवन में बड़ी धूमधाम से हुआ था। कहा जाता है कि भारत की राजधानी में अपने ढङ्ग का यह पहला उत्सव था। अन्तिम पंक्ति में दाहिनी ओर से—श्रीमती बी० एन० मित्र, (२) श्रीमान राजा साहब, जब्बल, (३) श्रीमती रानी साहिबा, मण्डी, (४) सर पुरुषोत्तमदास ठाकुरदास, (५) श्रीमती बृजलाल नेहरू, (६) श्री० जयकर, (७) श्रीमती सरोजिनी नायडू (८) मौलवी मुहम्मद याक़ूब

कितनी ही रूपवती क्यों न हो, चाहे वह स्वर्ग की अप्सरा ही क्यों न हो, उसका दाम्पत्य जीवन सुखमय नहीं हो सकता। यह आशा करना कि कोई भी स्त्री चरित्र की सुन्दरता के अभाव में केवल मात्र शारीरिक सौन्दर्य के कारण अपने पति को आजीवन भुलावा देकर अपने क़ब्ज़े में रख सकेगी, निरी दुराशा-मात्र है। पाश्चात्य देशों में भी दाम्पत्य का क़िला केवल शारीरिक सौन्दर्य की नींव पर ही नहीं टिका हुआ है; उसका वास्तविक आधार प्रेम और सेवा ही है। अतः भारतीय महिलाओं को यूरोप या अमेरिका की अभिनेत्रियों और फ़िल्म-स्टार्स की नक़ल करने के पहले इसके हानि-लाभ पर एक विचारपूर्ण दृष्टि अवश्य डाल लेनी चाहिए।

पुरुष यदि यह पसन्द भी करें कि स्त्रियाँ कृत्रिम सौन्दर्य और बनावटी हाव-भाव द्वारा उनकी विकृत रुचि को परितृप्त करें तो भी स्त्रियों को तो इस मार्ग से कदापि नहीं जाना चाहिए। बनाव-शृङ्गार की दौड़ में कोई भी शृङ्गार-कुशल वाराङ्गना एक सती, साध्वी गृह-ललना को मात कर दे सकती है। ऐसी दशा में यदि सौन्दर्य ही पारिवारिक जीवन की सफलता का रहस्य हो तो वाराङ्गनाओं के मुक़ाबले में बहुत सी सतियों का ठहरना मुश्किल हो जाय। परन्तु सेवा और त्याग ऐसे अस्त्र हैं, जिनके द्वारा कैसी भी कुरूप स्त्री अपने पति के हृदय की सच्ची स्वामिनी बन सकती है। एक कठोर हृदय और शुष्क स्वभाव वाला पुरुष सौन्दर्य को ठुकरा दे सकता है, पर प्रेम और त्याग को ठुकराना इतना आसान नहीं है।

'सौन्दर्य-साधना' के लेखक ने ठीक ही लिखा है कि शृङ्गार और सौन्दर्य के विषय में मनुष्यों की रुचि सदा

दिल्ली में विराट अन्तर्जातीय सहभोज

('चाँद' के लिए रात में फ़्लैश लाइट से लिया हुआ विशेष फ़ोटो)

सहभोज समाप्त होने पर श्रीमती सरोजिनी नायडू अभ्यागतों की ओर से, प्रबन्ध करने वाली महिलाओं को धन्यवाद दे रही हैं। श्रीमती नायडू की दाहिनी ओर श्री० साहनी तथा बाईं ओर क्रमशः श्री० जयकर, श्रीमती बृजलाल नेहरू, रायसाहब हरविलास शारदा और लाला गिरधारीलाल जी बैठे हैं।

बदलती रहती है। अतः जो स्त्रियाँ शारीरिक सौन्दर्य के द्वारा अपने पति को आकर्षित करना चाहती हैं, उनका मार्ग अगम है; उन्हें समय की गति के अनुसार पुरुषों की बदलती हुई रुचि को तृप्त करने के लिए नित्य नए-नए आविष्कार करने पड़ेंगे; नए-नए प्रकार के फ़ैशन ग्रहण करने पड़ेंगे। परन्तु जिस देवी ने चरित्र के सौन्दर्य की ओर ध्यान दिया, उसने मानो सुख और सुन्दरता दोनों के मूल को पकड़ लिया; उसे अँधेरे में इधर-उधर भटकने की ज़रूरत नहीं। प्रेम, सेवा और त्याग की कसौटी, सुन्दरता की कसौटी की भाँति, रोज़-रोज़ बदला नहीं करती; वह नित्य, सत्य, सनातन और स्थायी है। इसीलिए प्रेम और सेवा के आधार पर निर्मित दाम्पत्य-भवन स्थायी होता है। जिस रूप और सुन्दरता की कल्पना प्रत्येक घड़ी, प्रत्येक पल में बदल रही है, उसके आधार पर स्थायी दाम्पत्य सम्बन्ध कैसे स्थापित हो सकता है?

निस्सन्देह पाश्चात्य देशों के कुछ बड़े-बड़े वैज्ञानिकों ने अब तक शारीरिक सौन्दर्य के बढ़ाने के साधन ढूँढ़ने में अपनी शक्ति का सदुपयोग या दुरुपयोग किया है। परन्तु अब तो विज्ञान ने भी इधर से मुँह मोड़ना आरम्भ कर लिया। यूरोप और अमेरिका में विज्ञान अब केवल शारीरिक भोग-विलास की वस्तुएँ इकट्ठी करने का साधन नहीं समझा जाता। उन देशों में तो अब विज्ञान के द्वारा मन और आत्मा के विषय तक की आलोचना की जा रही है। अतः भारतीय स्त्रियों को भी इन समस्याओं पर अधिक गम्भीरता और उदारता के साथ विचार करना चाहिए।

—एक सौन्दर्य-प्रेमी

[श्रीमती शकुन्तलादेवी जी गुप्ता 'हिन्दी-प्रभाकर']

१० साल के लड़के का स्वेटर

आवश्यक वस्तुएँ—४ औंस ऊन; ४ सलाइयाँ। आरम्भ—नीचे की ओर से आरम्भ में ८० फन्दे चढ़ाओ। १ इञ्च सीधी बुनती बुनो। फिर एक फन्दा उलटा, एक सीधा, इस प्रकार १३ इञ्च बुनना होगा।

बाँहों के लिए दोनों ओर से घटाना होगा और मध्य से गले के लिए।

इसके घटाने के लिए—पहली लाइन १ जोड़ा ३८ फन्दे बुन कर एक जोड़ा, फिर लौटा लो। बाक़ी फन्दे छोड़ दो। पहले एक ही ओर का कन्धा बुना जायगा।

स्वेटर का नमूना

दूसरी लाइन, बिना घटाए बुनो।
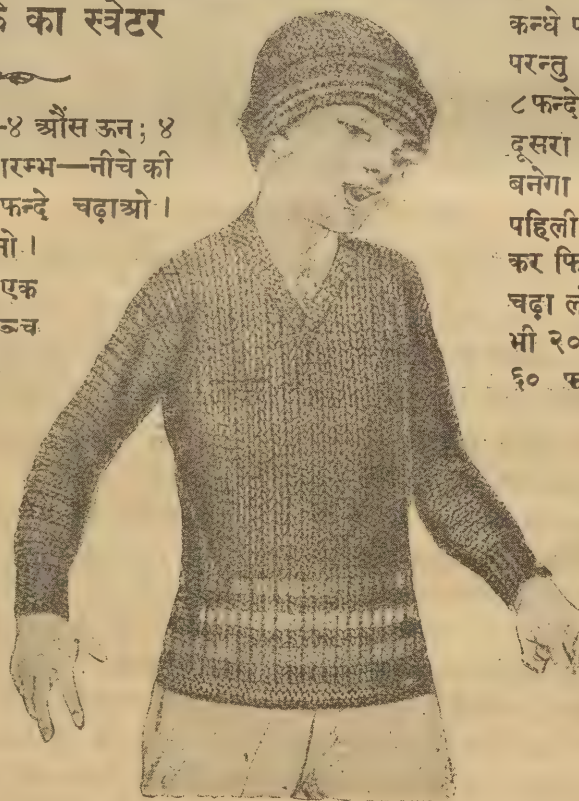
तीसरी लाइन—एक आरम्भ में जोड़ा, एक अन्त में, इस प्रकार बुनते जाओ, जब तक कि कन्धे पर २० फन्दे न रह जाएँ, परन्तु बग़ल की ओर से केवल ८ फन्दे घटाने हैं। बाक़ी सीधा। दूसरा कन्धा भी इसी प्रकार बनेगा। फिर पीठ के लिए पहले पहिली सलाई के २० फन्दे बुन कर फिर बीच के २० फन्दे भी चढ़ा लो और दूसरी सलाई के भी २० फन्दे इसीमें कर लो, ६० फन्दे हो जाएँगे। अब पूर्वोक्त बुनती से बुनते जाओ और दोनों ओर से हर तीसरी लाइन में दोनों ओर से एक-एक फन्दा बढ़ाते जाओ, जब तक कि सारे ८० फन्दे न हो जायँ। फिर १३ इञ्च बुन कर १ इञ्च सीधा बुनो, फिर बन्द कर दो।

बाँहें—दोनों एक जैसी। आरम्भ में ८० फन्दे चढ़ाओ, फिर २½ इञ्च दो फन्दे उलटे, दो सीधे

(शेष मैटर ८३ पृष्ठ के पहले कॉलम में देखिए)

[श्री० धनीराम जी 'प्रेम' साहित्य-कोविद]

स्त्रियों के लिए घरेलू व्यायाम

इस लेख का शीर्षक पढ़ कर हमारी बहिनें आश्चर्यित होंगी। वे सोचेंगी कि अभी तक तो पुरुषों के ही लिए व्यायाम पर लेख निकला करते थे, परन्तु अब स्त्रियों को भी इसकी शिक्षा दी जाने लगी। परन्तु यदि वे आधुनिक भारतीय स्त्री-समाज की शारीरिक दशा का अध्ययन करें, तो अवश्य ही उन्हें इसकी आवश्यकता और उपयोगिता प्रतीत होगी।

यूरोप, अमेरिका आदि देशों में स्त्रियों को पुरुषों के ही समान अधिकार मिले हुए हैं। उनको शारीरिक और मानसिक उन्नति करने के लिए प्रत्येक प्रकार की सुविधाएँ प्राप्त हैं। वे अपने स्वास्थ्य को ठीक रखने के लिए जिस प्रकार का उपाय चाहें, काम में ला सकती हैं। वे पुरुषों की ही भाँति टेनिस, बैडमिण्टन, क्रिकेट, फ़ुटबॉल, गॉल्फ़ आदि खेल खेलती हैं। इसके अतिरिक्त वे तैरना, नाव खेना तथा भाँति-भाँति के जिमनास्टिक के खेल भी सीखती हैं। बालिकाओं को इन सब बातों की शिक्षा देने के लिए विदेशों में अनेकों विद्यालय खुले हुए हैं। इतना होने पर भी उन स्त्रियों के लिए, जो इन सब खेलों में अपना समय नहीं दे सकतीं, विविध प्रकार के घरेलू व्यायामों के आविष्कार किए जा रहे हैं। यही नहीं, उन आविष्कारों के अनुसार बहुत-कुछ कार्य भी किया जा रहा है।

परन्तु भारतवर्ष की दशा विदेशों से नितान्त भिन्न है। इन सब प्रकार के खेलों का खेलना तो दूर रहा, भारतीय ललनाओं को स्वच्छ वायु में विचरण करने का भी सौभाग्य प्राप्त नहीं होता। वे बन्दियों की भाँति घरों की चहार-दीवारी के अन्दर बन्द रक्खी जाती हैं। स्वच्छ और स्वच्छन्द वायु के झकोरे उनके लिए विष के समान माने जाते हैं। इतना ही नहीं, यदि वे कभी किसी कार्यवश घर से बाहर निकलती हैं, तो उनके इक्के के चारों ओर ऐसा पर्दा लगाया जाता है कि उसके भीतर वायु भी नहीं प्रवेश कर सकती। यदि साहस करके कोई बहिन कभी खुली वायु में घूमने को निकल भी आती है, तो अन्य भोली बहिनें उसको तिरस्कार की दृष्टि से देखने लगती हैं। हमारे एक कान्यकुब्ज मित्र की स्त्री प्रायः रोगिणी रहा करती थीं। उन्होंने कुछ मित्रों के बहुत कहने-सुनने पर एक लेडी डॉक्टर से अपनी स्त्री की स्वास्थ्य-परीक्षा कराई। उनकी परीक्षा कर लेडी डॉक्टर ने कहा—'इनके रोग का कारण स्वच्छ वायु का न मिलना है। यदि आप इन्हें जीवित रखना चाहते हों तो आज से ही इनको दो घण्टे खुले स्थान में नित्य टहलाया करें।' हमारे मित्र तो किसी प्रकार सहमत हो गए, परन्तु पुराने विचार की उनकी बूढ़ी माता यह सुन कर कह उठीं—'बाबा! अब बहुएँ भी मेमों की तरह घूमने जाया करेंगी! इससे अधिक कलयुग और कब आएगा!' परिणाम यह हुआ कि वे बहिन कुछ ही दिनों के बाद इस असार संसार को छोड़ कर चल बसीं।

भारत की उन्नति के मुख्य उपायों में से एक यह भी है कि उसकी भावी सन्तान नीरोग, बलिष्ठ तथा वीर बने।

नम्बर ६ से १० तक के अभ्यास

बालकों में ये गुण तभी आ सकते हैं, जबकि माताएँ स्वस्थ, बलवती तथा वीराङ्गनाएँ होंगी। परन्तु अपने देश के स्त्री-समाज की दशा देख कर विदित होता है कि ६० प्रतिशत स्त्रियाँ रोग-शय्या पर पड़ी रहती हैं। अधिकांश तो क्षय-रोग की शिकार हो जाती हैं। इसका भयङ्कर परिणाम यह हो रहा है कि शिशुओं की मृत्यु-संख्या दिन पर दिन बढ़ती जाती है, और जो बालक बच भी जाते हैं वे निर्बल, रोगी तथा कायर होते हैं। हम इस लेख में पर्दा के हानि-लाभों पर विचार करने नहीं बैठे हैं, परन्तु इतना अवश्य कहेंगे कि यदि हमारी बहिनों को शारीरिक स्वास्थ्य ठीक रखने और सुधारने के लिए स्वच्छ वायु में घूमने आदि की भी स्वाधीनता न दी जायगी तो इस भयानक रोग की चिकित्सा असम्भव ही होगी।

स्त्रियों के व्यायाम दो भागों में विभक्त किए जा सकते हैं—(१) पहले वे जो मिल कर किए जायँ, जैसे टेनिस, वैडमिण्टन, गॉल्फ़ आदि, (२) दूसरे वे जो एकान्त में किए जायँ। इसी में हम घरेलू व्यायाम और टहलने आदि को स्थान देते हैं। हम देखते हैं कि जब तक स्त्रियों को बाहर निकलने की स्वाधीनता नहीं दी जाती या उसे वे स्वयं ही प्राप्त नहीं कर लेतीं, तब तक उनके लिए दूसरे प्रकार के वे व्यायाम जो घर पर ही किए जा सकें, अधिक सुविधाजनक तथा लाभदायक होंगे। जो बहिनें चौका-बर्त्तन करना, चक्की चलाना, भोजन बनाना आदि गृह-कार्य करती रहती हैं, उनके लिए तो यह व्यायाम लाभदायक होंगे ही; परन्तु विशेष लाभ उनको होगा, जो नौकरों ही द्वारा घर के सारे कार्य करा लेती हैं और जिन्हें स्वयं पलङ्ग पर बैठने के अतिरिक्त और कोई कार्य नहीं रहता। यदि वे बहिनें नीचे लिखे व्यायामों को ध्यान से पढ़ कर नियमपूर्वक करती रहेंगी तो उन्हें अजीर्ण, क़ब्ज़, संग्रहणी, ज़ुकाम आदि रोग कभी न सताएँगे।

नीचे दस प्रकार के व्यायामों का विवरण दिया जाता है। इनको भली-भाँति समझ कर और कुछ को चित्र में देख कर व्यायाम प्रारम्भ करना चाहिए। धीरे-धीरे अभ्यास होने पर सब बातें स्वयं याद हो जाती हैं। हाँ,

व्यायाम करने के समय कुछ नियमों पर अवश्य ध्यान रखना चाहिए। व्यायाम जिस कमरे में किया जाय, वह स्वच्छ और हवादार हो। उसकी सारी खिड़कियाँ खुली रक्खी जायँ। व्यायाम करते समय शरीर पर अधिक वस्त्र न होने चाहिए। जो वस्त्र पहने जायँ वे स्वच्छ, ढीले तथा ऐसे होने चाहिए, जिनसे व्यायाम करने में कोई असुविधा न हो। व्यायाम करने के बाद थोड़ी देर खुले आँगन में टहलना लाभदायक है। व्यायाम इस प्रकार हैं:—

नं० १—सीधी खड़ी हो जाओ। एड़ी मिली हुई हों और दोनों हाथ कमर पर। धीरे-धीरे घुटने झुकाओ। पञ्जों के बल बैठ जाओ, फिर खड़ी हो जाओ। (छः बार)

नं० २—एक स्टूल पर बैठो। दोनों हाथ कमर पर हों। कमर की हड्डी बिलकुल सीधी होनी चाहिए। हाथों से कमर पर ज़ोर डालो। कन्धे ऊपर न उठने पाएँ। हाथों को कमर से उठा कर दोनों ओर स्टूल पर रख लो। शरीर ढीला कर दो और फिर दुहराओ। (चार बार)

नं० ३—पैरों को फैला कर खड़ी हो जाओ। कमर को दाहिनी ओर नीचे को झुकाओ। एक हाथ की उँगली से फ़र्श छुओ और दूसरे को सर के ऊपर सीधा फैलाओ। अपने ऊपर के हाथ की ओर दृष्टि रक्खो। अपनी पहली दशा में फिर खड़ी हो जाओ। फिर बाईं ओर झुको। (छः बार)

नं० ४—सीधी खड़ी हो जाओ। हाथों से घुटने को पकड़ कर छाती तक लाओ। हाथ कमर पर ले जाओ। फिर पैर को धीरे-धीरे नीचे लाओ और हाथ गिरा दो। एक बार सीधे पैर से, दूसरी बार बाएँ से। (दस बार)

नं० ५—पाँव फैला कर खड़ी हो जाओ। दाहिनी ओर कमर झुकाओ। दोनों हाथों से घुटना पकड़ने का उद्योग करो। दूसरी बार दूसरी ओर झुको। सर गिरा हुआ न रहे। (दस बार)

नं० ६—पृथ्वी पर सीधी लेट जाओ। बायाँ घुटना दोनों हाथों से छाती पर दबाओ। पहली दशा में ले जाओ। फिर सीधा घुटना छाती पर दबाओ। फिर दोनों एक साथ दबाओ। (दस बार)

नं० ७—पृथ्वी पर लेट जाओ। पैर के तलवे पृथ्वी पर हों, परन्तु घुटने सिकुड़े हुए हों। पेट के स्नायुओं (Muscles) को भीतर की ओर सिकोड़ो। थोड़ी देर उसी अवस्था में रहो। फिर स्नायुओं को फैलाओ। (पाँच बार)।

नं० ८—खड़ी हो जाओ। पैर मिले हुए हों। हाथ गर्दन के पीछे हों। उँगलियाँ मिली हों, परन्तु कुहनियाँ पीछे की ओर हों। कमर को आगे की ओर धीरे-धीरे झुकाओ। पैर सीधे रहें। फिर सीधी दशा में हो जाओ। (चार बार)

नं० ९—पैर मिला कर सीधी खड़ी हो जाओ। हाथ कमर पर हों। धीरे से कूद कर पैरों को फैलाओ। पञ्जों के बल खड़ी हो। फिर वापस आ जाओ। (पाँच बार)

नं० १०—एड़ियों पर ज़ोर देकर खड़ी हो जाओ। छाती उभरी हुई रहे। पेट के स्नायु दृढ़, सर ऊपर को तथा ठुड्डी अन्दर की ओर रहे। धीरे-धीरे श्वास लो और हाथों को दोनों ओर कन्धों के बराबर ले जाओ। हथेलियाँ ऊपर की ओर हों। श्वास धीरे-धीरे निकालो और हाथों को फिर बग़ल में ले जाओ। (पाँच बार)

व्यायाम करते समय अधिक ध्यान इस बात पर रखना चाहिए कि व्यायाम अधिक मात्रा में न हो जाय, अपनी सामर्थ्य के ही अनुसार किया हुआ व्यायाम लाभदायक होता है। इसका प्रमाण यह है कि थकावट न मालूम पड़े। साथ ही यह व्यायाम ख़ाली पेट करना चाहिए। इन व्यायामों का करना गर्भवती बहिनों के लिए वर्जित है। किसी प्रकार का व्यायाम न करने से ही भारतीय माताएँ ३० वर्ष की ही अवस्था में वृद्धा कहाने लगती हैं। उनकी सारी शक्तियाँ शिथिल हो जाती हैं। यदि बहिनों ने इन व्यायामों पर कुछ भी ध्यान दिया और इनको नियमपूर्वक करती रहीं तो वे आयुष्मती होकर बहुत दिनों तक जीवन का सच्चा सुख भोग सकेंगी।

विवाह का वयस

विगत २ मार्च के 'आज' में काशी के सुप्रसिद्ध विद्वान बाबू भगवानदास का एक विद्वत्तापूर्ण लेख उपरोक्त शीर्षक से प्रकाशित हुआ है। हम आशा करते हैं कि जो लोग शारदा-क़ानून को शास्त्र-विरुद्ध समझते हैं, उनका भ्रम इस पाण्डित्य और गवेषणापूर्ण लेख के पढ़ने से दूर हो जायगा। इस क़ानून के जारी होने के साथ भारत के इतिहास में एक नवीन युग का आरम्भ हुआ है। यदि हम लोग सच्चे हृदय से इस क़ानून को सार्थक बनाने की चेष्टा करें तो, हमारा विश्वास है, कुछ ही वर्षों के भीतर भारतीय समाज के जीवन में एक अपूर्व तेज और कान्ति का सञ्चार हो जायगा; हमारे नवयुवक पुष्ट, बलवान और तेजस्वी होंगे, युवतियाँ स्वस्थ, सुन्दरी और प्रवीण। हमारे कुछ भाई, दुःख के साथ कहना पड़ता है, ऐसे मङ्गलमय विधान को भी शास्त्र-विरुद्ध समझते हैं और अज्ञान-वश इसे विफल करने की चेष्टा कर रहे हैं। ऐसे ही भाइयों के भ्रम-निवारणार्थ यह लेख लिखा गया है। क्या हम आशा करें कि ऐसे महानुभाव इस लेख को ध्यान से पढ़ने तथा इसकी युक्तियों पर शान्ति के साथ विचार करने की चेष्टा करेंगे? अब दूरदर्शिता इस बात में नहीं है कि शारदा-क़ानून को विफल करने का प्रयत्न किया जाय, बल्कि सच्ची दूरदर्शिता इस बात में है कि जब यह क़ानून पास हो ही चुका है तब इससे अधिक से अधिक लाभ उठाने का प्रयत्न किया जाय। नीचे हम उपरोक्त लेख को अविकल रूप से उद्धृत कर रहे हैं:—

अठारह (१८) वर्ष से कम वर, चौदह (१४) वर्ष से कम वधू न हो, ऐसा धर्म (क़ानून) देश की मुख्य धर्म-परिषद (लेजिस्लेटिव असेम्बली) ने, श्री० हरविलास शारदा के प्रस्ताव पर, बना दिया। इस धर्म का प्रवर्त्तन १ अप्रैल से होगा। इस कारण से हज़ारों ब्याह जल्दी में, उक्त तिथि से पहिले, इधर कई महीनों के अन्दर, कर डाले गए। और सुन पड़ता है कि अब ज्योतिषियों के अनुसार विवाह-लग्न भी समाप्त हो गया। मानो उक्त धर्म के प्रवर्त्तन की तिथि को स्वयं ज्योतिषियों ने और समीप खींच लिया। पर अभी भी इस धर्म-क़ानून के विरोध में आन्दोलन जारी है। मैंने सुना कि चुनार ऐसे छोटे स्थान में भी काशी के कुछ पण्डितों ने आकर व्याख्यान दिए। एक सज्जन मुझसे इस विषय में शङ्का-समाधान करने आए। मेरा मत तो गतानुगतिक प्रथा से भ्रष्ट है ही, प्रायः मित्रों को विदित है, तो भी उक्त सज्जन के अनुरोध से, 'आज' के सम्पादक जी से पत्र में प्रकाश कर देने की प्रार्थना करता हूँ।

प्रसिद्ध ही है कि हिन्दुओं के, अर्थात् भारतीय आर्यों के, धर्म की मूल पुस्तक, व्यवहारतः, मनुस्मृति है। चाहे उसकी भी जड़ में वेद हों।

य: कश्चित्कस्यचिद् धर्मो मनुना परिकीर्तितः ।
स सर्वोऽभिहितो वेदे सर्वज्ञानमयो हि सः ॥

—मनु० अ० २, श्लोक ७

जो जिसका धर्म मनु ने कहा है वह सब वेद के, सज्ज्ञान के, अनुसार ही कहा है। मनु सर्व ज्ञानमय हैं। विद् से वेद।

सत्तायां विद्यते, ज्ञानेवेत्ति, विन्ते विचारणे ।
विन्दते विन्दति प्राप्तौ, कारणे वेदयत्यपि ।
चेतनाख्यानवासेषु तथा वेदयतेऽपि च ॥

तो मनु ने विवाह की उमर के विषय में क्या कहा है? छपी पोथी में प्रायः यह पाठ देख पड़ता है:—

त्रिंशद्वर्षोद्वहेत्कन्यां हृद्यां द्वादशवार्षिकीम् ।
त्र्यष्टवर्षोऽष्टवर्षां वा धर्मे सीदति सत्वरः ॥

—अ० ९, श्लोक ९४

पर मैंने कहीं हस्त-लिखित देखा, या किसी वृद्ध विद्वान् से सुना, मेरा संस्कार ऐसा पड़ा है कि शुद्ध पाठ यों है—

त्रिंशद्वर्षे द्वहेत्कन्यां हृद्यां द्विदश वार्षिकीम् ।
त्र्यष्टवर्षोऽष्टि वर्षां वा धर्मेण त्वरितो यदि ॥

प्रचलित मुद्रित पाठ का अर्थ है—"तीस वर्ष का पुरुष बारह वर्ष की कन्या से विवाह करे, अथवा, यदि धर्म का अवसाद होता हो, और इस हेतु से त्वरा हो, तो चौबीस वर्ष का पुरुष आठ वर्ष की कन्या से विवाह कर ले।" जो पाठ मुझे शुद्ध जान पड़ता है उसका अर्थ यह है—"तीस वर्ष का ब्रह्मचारी बीस वर्ष की ब्रह्मचारिणी से विवाह करे, अथवा यदि काम-प्रेरणा रूपी अपना स्वभाव, अपनी विशेष प्रकृति का कर्म उसके, त्वरा करे, और उसमें तीस वर्ष तक अविप्लुत ब्रह्मचर्य रहने की आत्म-निग्रह शक्ति न हो, तो चौबीस वर्ष की उमर तो पूरी करे और सोलह [अष्टि] वर्ष की कन्या से विवाह करे।"

विचारशील सज्जन स्वयं समझ लें कि कौन पाठ और प्रकार अधिक युक्तियुक्त है। तीस वर्ष का बीस वर्ष से और चौबीस का सोलह से ब्याह होना अक़्ल के मुताबिक़ है कि बारह और आठ से। आठ वर्ष की बच्ची कौन से सीदते धर्म की पूर्ति कर देने में सहायता दे सकती है? हाँ, जिनका यह डिंडिम है कि धर्म में बुद्धि को स्थान नहीं, ऐसे बुद्धि के शत्रुओं से तो बुद्धि के शत्रु ही उचित रीति से उक्ति-प्रत्युक्ति कर सकते हैं।

"शास्त्र, शास्त्र, शास्त्र" की दोहाई-तिहाई दी जाती है। तो सब शास्त्रों के मुख, "सर्वेषामेव शास्त्राणां न्याय व्याकरणं मुखं" तथा वेद का अन्त, पराकाष्ठा, वेदान्त, सभी कहते हैं कि सब से अधिक बलवान् प्रमाण, प्रत्यक्ष प्रमाण है। "प्रत्यक्ष पराप्रमितिः, प्रत्यक्षपराणि प्रमाणानि, न प्रत्यक्षेऽनुपपन्नं नाम, नहि श्रुतीनां शतमपि घटं पटयितुमीष्टे"—यह सब वाक्य न्याय और वेदान्त के ग्रन्थों के ही हैं, और मनु की आज्ञा है:—

प्रत्यक्षं चानुमानं च शास्त्रं च विविधागमम् ।
त्रयं सुविदितं कार्यं धर्मशुद्धिमभीप्सता ॥

—अध्याय १२, १०५

केवल "शास्त्र" ही नहीं, किन्तु प्रत्यक्ष और अनुमान और विविध आगम रूप शास्त्र, तीनों की अच्छी तरह परीक्षा किए बिना यह निश्चय नहीं हो सकता कि क्या धर्म शुद्ध है, क्या अशुद्ध है। आग में मत कूदो, कुएँ में मत गिरो, आँख से काम लो, ख़ाहमख़ाह ठोकर मत खाओ—इसके लिए क्या किसी लिखित पोथी, किसी शास्त्र की आवश्यकता है? ये बातें क्या प्रत्यक्ष सिद्ध नहीं हैं? अति बालक-बालिका-विवाह तो इसी प्रकार का जान-बूझ कर कुएँ में कूदना और आग में गिरना है। यदि इस पर बुद्धि न जमे—क्योंकि हिन्दू दासों की बुद्धि तो आज चिरकाल से लुप्त कर दी गई है, है ही नहीं, जमेगी क्या—तो पोथी का वचन भी ऊपर लिखा है। और

(७८ पृष्ठ का शेषांश)

बुनो। फिर १२ इञ्च एक सीधा, एक उलटा बुन कर बन्द कर दो।

गले के लिए—८ फन्दे चढ़ा कर सीधी बुनती की गले के बराबर पट्टी बुन कर सी दो, जैसी कि चित्र में दिखाई गई है।

बाँहों को कन्धे के साथ सी दो, फिर दोनों तरफ़ों से भी सी दो। यह यथेष्ट छोटा बड़ा भी हो सकता है।

* * *

सुश्रुत नाम का वैद्यक का ग्रन्थ भी तो आप महार्षकृत मानते हो, बल्कि उससे भी बढ़के, अवतारकृत। दिवोदास धन्वन्तरि के अवतार, और धन्वन्तरि विष्णु के। उनके उपदेशों को उनके शिष्य सुश्रुत ने लिखा। सो सुश्रुत भी उत्तम धर्म-शास्त्र ही गिना जाना चाहिए। और प्रत्यक्ष ही बलिष्ठ, इस न्याय से यह अन्य धर्म-शास्त्रों से अधिक बलवान् है, क्योंकि वे तो अदृष्ट फल वाले हैं, यह तो प्रत्यक्ष दृष्ट फल वाला है। सो सुश्रुत में लिखा है:—

ऊनषोडशवर्षायामप्राप्तः पञ्चविंशतिम्।
यद्याधत्ते पुमान् गर्भं कुक्षिस्थः स विपद्यते॥
जातो वा न चिरञ्जीवेत् जीवेद्वा दुर्बलेन्द्रियः।
तस्मादत्यन्त बालायां गर्भाधानं न कारयेत्॥

चौबीस वर्ष को पूरा करके पच्चीसवें में जो वर पहुँचा नहीं, उसका विवाह पूरे सोलह वर्ष से कम उमर की कन्या से यदि किया जाय तो सन्तान गर्भ ही में मर जाय, या नहीं तो अल्पायु और दुर्बलेन्द्रिय होगी।

मनु के उक्त शुद्ध पाठ के द्वितीय कल्प से यह सुश्रुत का वाक्य ठीक-ठीक मिल जाता है। तो जहाँ धर्म-शास्त्र और वैद्यक-शास्त्र मिल जायँ वही ठीक निश्चित शुद्ध धर्म समझना चाहिए। और भी मनु की आज्ञा है:—

त्रीणि वर्षाण्युदीक्षेत कुमार्यृतुमती सती।
ऊर्ध्वं तु कालादेतस्माद्विन्देत सदृशं पतिम्॥
काममामरणात्तिष्ठेद् गृहे कन्यर्तुमत्यपि।
नचैवैनां प्रयच्छेत्तु गुणहीनाय कर्हिचित्॥

—अध्याय ९, श्लो ८९, ९०

"रजोदर्शन के बाद तीन वर्ष तक कन्या कुमारी ही, ब्रह्मचारिणी ही रहे, शरीर और बुद्धि की पुष्टि के लिए। इसके बाद अपने सदृश योग्य पति से ब्याह करे। यदि योग्य पति न मिले तो आमरण भी, ऋतुमती भी, अनब्याही रहे, गुणहीन से ब्याह न करे।"

पुराणों में नन्दनवन और स्वर्ग आदि का जहाँ वर्णन है, वहाँ लिखा है कि देवों का वयस पञ्चविंशति वर्ष के समान, और देवियों का षोडश के, रहता है। यह भी वही सूचना है कि यह वयस विवाह के लिए उचित है।

यदि चिरकाल से हवा बिगड़ जाने के कारण मनु का द्वितीय कल्प भी अब असह्य, असाध्य जान पड़ता हो, तो भाई, एक तीसरा कल्प तो मानो, और "क्रमशो वर्धयंस्तपः" के न्याय, से उससे फिर से हवा बनाना, पुनर्नवा का प्रयोग करना, शुरू करो। तीसरा कल्प यह,

अथैतदप्यशक्यं चेत् चिरसंभृतदोषतः।
अष्टादशाब्दो विवहेत् चतुर्दशसमां वधूम्॥

विवाह की उमर बढ़ाने में ही देश का कल्याण विविध प्रकार का है। सब से पहिले, कच्चे माता-पिता के शरीरों से रोज़-रोज़ अधिकाधिक कच्ची सन्तान की उत्पत्ति, और जाति का अधःपात रुक गया। देश की हवा बदलेगी, सबके मन में यह भाव फैलेगा कि कच्ची उमर में काम-विकार नहीं होना चाहिए. लड़के-लड़कियों का दूषण नहीं होना चाहिए, ब्रह्मचर्य से, आत्म-निग्रह से, इन्द्रिय-निग्रह से, रहना चाहिए, विवाह की उमर तक, कम से कम इससे न केवल शरीर ही अगली पुश्त का पुष्ट होगा, बल्कि उनका चित्त भी, बुद्धि भी, साहस भी।

ज्ञानं शौर्यं महः सर्वं ब्रह्मचर्ये प्रतिष्ठितम्।

वीर्य और शौर्य प्रायः पर्याय हैं, जैसे वीर और शूर। जो आत्म-निग्रही है उसका दूसरे जल्दी निग्रह नहीं कर सकते। यदि भारत में ब्रह्मचर्य की वृद्धि हो, आत्म-निग्रह बढ़े तो आत्म-निग्रह और आत्मवशता, स्ववशता, स्वराज्य, यह सब तो पर्याय ही हैं। जो इन्द्रिय-निग्रही नहीं, प्रत्युत इन्द्रियाधीन है, उसके हृदय में साहस नहीं होता, इन्द्रियों में ओजस नहीं होता, शरीर में बल नहीं होता, बुद्धि में ज्ञानग्राही तेजस, वर्चस नहीं होता। कीर्ण, शीर्ण, क्षीण. सबके आगे उसको हीन, दीन होना पड़ता है। भारत की पराधीनता के कारणों में एक यह भी बड़ा कारण समझना चाहिए कि देश कच्चे ब्याह की कची सन्तान से भर गया है, और शूर पुरुष यहाँ कम हो गए हैं। जिसका हृदय शूर होता है, उसको अपने पर विश्वास और भरोसा होता है, जिसको अपने पर विश्वास होता है उसको दूसरे पर भी विश्वास होता है, क्योंकि उसको दूसरे का भय नहीं होता। जहाँ परस्पर भय नहीं, परस्पर विश्वास है, वहाँ परराज का सम्भव ही नहीं। आज भारत में असंख्य जात्युपजात्युपोपजाति वाले और तरह-तरह के परस्पर विवाद करते धर्म वाले, एक दूसरे से सर्वथा त्रस्त, अविश्वस्त हो रहे हैं, क्योंकि उनकी बुद्धि भी लुप्त हो गई है, और उनमें शूरता भी नहीं है।

यह सब दोष क्रमशः विवाह की उमर बढ़ाने से और ब्रह्मचर्य के पालने से दूर हो जाएँगे।

और अवान्तर गुण और लाभ यह है कि देश में रोज़गार की कमी के कारण से भी बहुत ब्याह और बहुत सन्तान की गुञ्जाइश नहीं रही है। जितने के खाने का ठिकाना हो उतने ही का पैदा होना, नीरोग जीना और ब्याह होना अच्छा है। अक्सर हिन्दू जातियों में यह रस्म है कि वर-वधू के गृह-प्रवेश के समय वर अपनी वधू को गोद में उठा कर मण्डप के स्तम्भ के चारों ओर घूमता है। कुटुम्बियों के लिए विनोद तो है ही, पर असल मतलब यह है कि भार्या के और सन्तान के भरण-पोषण की, भार-वहन की शक्ति, भर्ता में होनी चाहिए, इसका प्रत्यक्ष प्रमाण देना चाहिए। जल्दी ब्याहना, जल्दी ब्याना, जल्दी मरना, तीनों काम में जल्दी करना नहीं अच्छा है। इस प्रकार की जल्दी पशु-सृष्टि में जितना नीचे जाओ, उतनी ही अधिक देख पड़ती है, जितना ऊँचे आओ, उतनी कम। साठा तब पाठा—यह हाथी के लिए विशेष रूप से कहावत है। पचास-साठ वर्ष में हाथी युवा, प्रौढ़ होता है, और दो सौ-ढाई सौ वर्ष जीता है। जितने वर्ष ब्रह्मचर्य का पालन, वीर्य का रक्षण हो सके, प्रायः उसके चौगुने वर्ष प्राणी जीता है, कुछ ऐसा सामान्य नियम सा जान पड़ता है। पशुओं पर अन्तरात्मा की दया है कि उनकी प्रकृति ही ऐसी है कि उनके "ब्रह्मचर्य" का विप्लव उचित समय से पहिले नहीं हो सकता। मनुष्य को यह सौभाग्य नहीं प्राप्त है। वह अपना मालिक बना दिया गया है, उसको अपना भला-बुरा स्वयं करने का अधिकार दिया गया है, सो प्रायः बुरा ही कर लेता है।

"शतायुर्वैपुरुषः," यह वेद की प्रतिज्ञा है, पर शर्त यह है कि "चतुर्थमयुषोभागं", कम से कम पचीस वर्ष, गुरुकुल में अविप्लुत ब्रह्मचर्य रह कर शरीर को और बुद्धि को परिपुष्ट कर ले। यदि नए विधान के अनुसार अठारह वर्ष भी पूरा कर लेगा तो सत्तर-बहत्तर वर्ष की आयु में प्रायः टोटा नहीं पड़ेगा। इतना ब्रह्मचर्य "असम्भव है, असम्भव है" कहना व्यर्थ है, कोई बात असम्भव नहीं। हवा बाँधने की बात है। जैसे ही हवा बिगड़ती है, वैसे ही बन भी सकती है। सन् १८९१-९२ में, कल के पानी के विरोध में "राम हल्ला" हो गया. आज, कल के बिना काम ही नहीं चलता। जिस ओर जनता का मन लग जाय, वही सहज हो जाता है।

यह सौभाग्य की बात अवश्य है कि जनता का ध्यान इस परम आवश्यक सुधार की ओर अब फिरा है। कुछ लोग, जो ज़माना नहीं पहिचानते; देश, काल, अवस्था से अनभिज्ञ हैं; जो बहुश्रुत नहीं हैं, केवल "धर्मशास्त्र" के ही दो-चार ग्रन्थों को रटा करते हैं, वे इन ग्रन्थों का भी अर्थ ठीक नहीं समझ सकते।

विभेत्यल्पश्रुताद्वेदो मामयं प्रतरिष्यति।

अल्पश्रुत लोगों से, जिन्होंने दुनिया की व्यावहारिक दशा को नहीं देखा-विचारा है, जो केवल दो-चार पोथी के पत्रों में ही मुँह गाड़े हुए हैं, उनसे वेद बेचारा बहुत डरता है कि ये मेरी प्रतारणा करेंगे, मुझको ठगेंगे, मेरे अर्थ का अनर्थ कर डालेंगे। कोई तो प्रतरिष्यति के स्थान में प्रहरिष्यति पद कहते हैं, अर्थात् वेद डरता है कि ये प्रहार करेंगे और मुझको मार ही डालेंगे। सो अर्थ भी ठीक ही है। शुद्ध पाठ को बिगाड़ कर नितरां अशुद्ध और भ्रष्ट कर डालते हैं। सुश्रुत में भी ऐसा ही कहा है:—

नह्येकमेव शास्त्रं जानानः किंचिदपि शास्त्रं जानाति।
तस्माद् बहुश्रुतः शास्त्रं विजानीयात् प्रयत्नतः॥

लोक से वेद का, वेद से लोक का, शास्त्र से व्यवहार का, व्यवहार से शास्त्र का, परस्पर नित्य संस्करण, संशोधन होते रहना चाहिए। सो आजकल व्यवहार का ज्ञान, बिना पाश्चात्य विद्याओं को थोड़ा-बहुत जाने, प्रायः नहीं ही हो सकता। इसी कारण से भारत के केवल संस्कृत जानने वाले, और पुराने संस्कारों में ही पले, पण्डित जन, जो सचमुच निःस्वार्थ और सरल हृदय और आदरणीय हों, वे भी, अपने अटल "पुराणमित्येवहि साधु सर्वं" विश्वास के कारण, भारत के पुनरुद्धार के साधक होने के स्थान में बाधक ही होते हैं। भारत की अन्तरात्मा परराज और पराधीनता के घोर कष्ट को भी सह कर पाश्चात्य विज्ञानों को जो यहाँ लिवा लाई तो क्या नितरां मूर्ख ही थी? इसीलिए लिवा लाई कि यहाँ के शास्त्रियों और अशास्त्रियों और शस्त्रियों ने मिल कर; परस्परानुग्रह तन्त्रीभूत्वा, शास्त्र को भी और शस्त्र को भी मार डाला था, उसका फिर से प्राणोद्धार हो।

जब भारत में स्वराज्य था, सब व्यापारों का प्रकर्ष था, व्यवहार जाग्रत-जीवत था, तब शास्त्र, धर्म-शास्त्र, राज-शास्त्र, राजनीति-शास्त्र, भी जीवत-जाग्रत् था।

आवश्यकता पड़ने पर नए धर्मों की कल्पना कर ली जाती थी।

स्त्रियो रत्नान्यथो विद्या धर्माः शौचं सुभाषितं ।
विविधानि च शिल्पानि समादेयानि सर्वतः ॥

—मनु० अध्याय २, श्लोक २४०

तथा महाभारत, शान्ति, अ० ८९ में लिखा है कि राज्य की धर्म-व्यवस्थापक सभा में चार वैद्य होने चाहिए। जिस मण्डली में मनुष्य के शरीर का ज्ञान न हो, और जीव का ज्ञान न हो, जो मनुष्य की प्रकृति को ही नहीं जानती, वह मण्डली मानव-धर्म का निर्णय क्या कर सकती है ?

अन्त में एक बात और कह देने योग्य है। वधू की उमर चौदह वर्ष से कम न हो—यह नया विधान है। अष्टवर्षा और नववर्षा और द्वादश वर्षा इत्यादि मध्य-युगीन संस्कार पण्डित मण्डली के मन में बैठी है, कम से कम दूसरों को कहने के लिए, क्योंकि यह प्रसिद्ध है कि दान, दहेज, शुल्क आदि की कुप्रथा से और लोभ-लालच के दुर्भावों की वृद्धि से, और पंक्ति-पावनता के अहङ्कारादि से (जिसका उत्तम रूपक कृष्ण मिश्र ने हज़ार वर्ष पुराने 'प्रबोध चन्द्रोदय' नाटक में दिखाया है), और धनाभाव से अच्छे-अच्छे "जाति-श्रेष्ठ" श्रोत्रिय घरों में भी कुमारी वृद्धा हो जाती हैं, और मनु का "काममामरणात्तिष्ठेत्" श्लोक अक्षरशः चरितार्थ हो जाता है। इन दोनों के, नए क़ानून के और कुछ पुराने संस्कार के, समन्वय का उपाय यह है कि वाग्दान जल्दी कर दिया जाय, पर विवाह सप्तपदी आदि की विधि से, पीछे हो। किसी-किसी जातियों में विवाह और द्विरागमन की चाल चल रही है। उसके स्थान पर वाग्दान और विवाह कर दिया जाय। मतलब वही सधेगा और कई और गुणों का लाभ होगा। कुमारावस्था में लड़के-लड़की का मन एक-दूसरे से बँध जाना अच्छा ही है। यदि घरों की मानस-हवा अच्छी रहे और भद्दी बातें चारों ओर न होती रहें, तो यह बाल्य प्रेम शुद्ध-सात्विक रूप धरेगा, दोनों के मन में परस्पर स्नेह बढ़ेगा, और कुचालों से दोनों की रक्षा करता रहेगा।

पुंसः स्त्रिया मिथुनी भावमेतं तयोर्मिथो हृदयग्रन्थिमाहु।

—भागवत ५,५,८

इस हृदय-ग्रन्थि का अनुभव प्रत्येक जीव के लिए, प्रवृत्ति मार्ग पर, आवश्यक है, यद्यपि निवृत्ति मार्ग में जाकर पीछे से इस ग्रन्थि का भेदन भी आवश्यक होगा। तो जहाँ तक बन पड़े वहाँ तक इस ग्रन्थि को सात्विक स्वरूप देना उचित है। इसी रीति से, वाग्दान जल्दी हो जाय, विधिवत् विवाह पीछे हो। इस रीति से अकाल मृत्यु जनित वैधव्य आदि दोषों का भी परिहार हो जायगा, और वयः प्राप्ति पर, विवाह के पहले, एक-दूसरे से यदि मन न मिले तो पितृकृत वाग्दान को अपने अधिकार से बदल देने का, और नया सम्बन्ध अपनी तुष्टि के अनुसार खोज लेने का अवसर भी युवा और कन्या को मिलेगा, और "शास्त्राग्रह" की भी बात रह जायगी।

* * *

चेचक के रोगियों के लिए

आजकल कई प्रान्तों में चेचक का प्रकोप बड़े ज़ोरों से फैला हुआ है। महात्मा गाँधी ने, 'अपने जीवन के अन्तिम युद्ध' की तैयारी में व्यस्त रहते हुए भी, 'नवजीवन' में चेचक के रोगियों की सुश्रूषा और औषधि के विषय में एक ख़ासा लम्बा लेख लिखा है, जिसका हिन्दी रूपान्तर विगत २० फ़रवरी के 'हिन्दी नवजीवन' से हम नीचे उद्धृत कर रहे हैं। हम आशा करते हैं कि 'चाँद' की पाठक पाठिकाएँ इससे लाभ उठाएँगी।

चेचक के रोगियों की सुश्रूषा और इलाज के बारे में लिखने के लिए मित्रों ने मुझसे आग्रह किया है। उद्योग-मन्दिर में भी बच्चों को चेचक निकली है। सात में से एक के लिए यह घातक साबित हुई है। यह कहा जा सकता है कि उस रोगी की सुश्रूषा उतनी अच्छी तरह न हो सकी जितनी औरों की हुई है। वह पहला केस था, उसके सम्बन्ध में मुझे जितनी दृढ़ता से काम लेना चाहिए था, मैंने नहीं लिया, अपना यह गुनाह मैं क़बूल करता हूँ। ठण्डे पानी के प्रयोग में मुझे पूरी-पूरी श्रद्धा होते हुए भी उस बालिका को उसका लाभ नहीं मिला और सिर्फ़ तरल या प्रवाही ख़ुराक देने के बदले उसे कठिन ख़ुराक भी दी गई थी। जो अच्छे हुए हैं और अब भय-

युक्त माने जा सकते हैं, उनका इलाज नीचे लिखे ढङ्ग से किया गया था :—

१—सम्पूर्ण आराम ;

२—सम्पूर्ण हवा ;

३—खिड़कियों और दर्वाज़ों के सामने लाल कपड़े के ऐसे पर्दे टाँगे गए थे, जिनसे हवा और रोशनी के आने में रुकावट नहीं पड़ती थी;

४—ख़ुराक कठिन नहीं, बल्कि केवल तरल पदार्थों की ही दी गई थी; बुख़ार न होने की हालत में बराबर मिक़दार में दूध और पानी दिए गए थे; बुख़ार होने की हालत में सन्तरा या नारङ्गी का रस अथवा सूखी दाख का पानी दिया जाता था और बुख़ार के कम होने की हालत में पानी मिला हुआ दूध दिया जाता था;

५—जब आवश्यकता हो तब जुलाब और एनिमा;

६—'वेट-शीट-पैक' यानी ठण्डे पानी में भिगोई हुई चादर को अच्छी तरह निचोड़ कर उसमें रोगी को सिर से पैर तक लपेटना और ऊपर से कम्बल ओढ़ाना। पसीना छूटने या रोगी को सर्दी मालूम होने पर गीली चादर निकाल डालना चाहिए।

सन् १९१५ में जब यह बीमारी फूट निकली थी, मुझे चेचक के दो गम्भीर बीमारों की सुश्रूषा करनी पड़ी थी, जिनका सारा बदन चेचक के दानों से भर गया था। उस समय लाल पर्दों के ज़रिए रोशनी पहुँचाने के बारे में मैं कुछ नहीं जानता था। १९१६ में जिन्हें यह बीमारी हुई थी उन्हें मैंने नीम के पत्ते डाल कर उबाले हुए पानी से नहलाया था। 'कोण्डीज़ फ़्लुईड' नाम की जो दवा बतलाई जाती है, मैं मानता था कि यह पानी उसकी ग़रज़ पूरी करता है। चेचक के कुछ नरम होने पर बालकों की तबियत पहले की अपेक्षा बहुत ही सुधर गई थी। हैरोल्ड विल्सन कृत 'व्हाय वैक्सीनेट' (टीका क्यों लगाया जाय ?) नामक छः आने की एक छोटी सी पुस्तक में दी गई सूचनाएँ नीचे दी जाती हैं। पुस्तक नेशनल एण्टी-वैक्सी नेशन लीग, ५० पार्लमेण्ट स्ट्रीट, लन्दन, एस० डब्ल्यू० के पते से मिल सकेगी।

"बड़ी उम्र के रोगियों के लिए १०२ डिग्री गर्मी वाले पानी से भरा हुआ रोगी के माप का एक टब तैयार करो। उसमें उबलते हुए पानी में पहले ही से मिलाया हुआ एक औंस परमैंगनेट ऑव पोटाश का पानी डालो। बालकों के लिए आधा पानी और आधा औंस परमैंगनेट ऑव पोटास काफ़ी होगा।

ठण्डे पानी में भिगो कर निचोड़ा हुआ तौलिया रोगी के सिर पर लपेटो। रोगी टब में बैठा हो और तौलिया गरम हो जाय, अथवा रोगी को कम्बल में लपेटा हो और तौलिया तप जाय, तब उसे बदल कर दूसरा ठण्डा पानी का तौलिया लपेटो। इससे रोगी का सिर ठण्डा रहेगा। जब-जब सिर गरम हो जाय तब-तब इसका उपयोग किया जा सकता है।

अगर रोगी को दिल की कमज़ोरी का रोग न हो तो २० मिनट तक टब में सुला रक्खो और उस पानी में समय-समय पर भिगोए हुए मुलायम स्पञ्ज से रोगी का मुँह भिगाते रहो। (स्पञ्ज मुँह पर घिसो मत)।

२० मिनट के बाद रोगी को उसमें से निकाल कर और बदन पोंछे ही लम्बे कम्बल में सिर से पैर तक लपेट दो ; गर्दन, बाहुओं और पैरों की जगह कम्बल को इस तरह दबा दो कि जिससे हवा बिलकुल भी न घुसने पाए; आवश्यक होने पर दूसरा कम्बल लपेटो (जाड़े में तो इसकी आवश्यकता होगी ही)। इसका हेतु यह है कि चमड़ी के सत्तर लाख छेदों में से पसीने के ज़रिए चेचक का ज़हर निकल जाय। आध घण्टे के बाद ऊपर का कम्बल निकाल डालो और निचले को थोड़ा ढीला करो। इसके दस-पन्द्रह मिनट बाद रोगी की बग़ल वग़ैरा भागों को देख लो कि वे सूख गए हैं या नहीं। अगर सूख गए हों तो वह वापस अपने बिछौने पर जा सकता है। इस तरह दो-तीन बार नहाने से बहुतेरे रोगी अपने आप कपड़े पहन सकते हैं और उठ-बैठ भी सकते हैं।

इस तरह के स्नान अगर रोगी में ताक़त हो और चेचक का ज़ोर बहुत ज़्यादा न हो तो दिन में दो-तीन बार भी कराए जा सकते हैं और मामूली रोग में चार दिन या एक सप्ताह तक भी कराए जा सकते हैं। बुख़ार के बिलकुल उतर जाने और दानों के सूखने लगने पर रोगी को पहले की ही तरह एक-दो बार नहलाओ और कम्बल में लपेटो, किन्तु इस बार परमैंगनेट ऑव पोटाश के बजाय एक औंस सल्फ़्यूरिक एसिड डालो, जिससे परमैंगनेट से चमड़ी पर जो दाग़ पड़े हों वे धुल जायँ।

एनिमा नियम से देने की आवश्यकता रहती ही है। एनिमा में पहले एक पाइण्ट कुनकुना पानी रख कर उसका

ले लेने के बाद अधिक गर्म पानी तीन-चार पाइण्ट तक जाने दो। इस तरह एकाध हफ़्ते तक हर रोज़ एनिमा दो और पिछले तीन दिनों में दूसरी बार के गर्म पानी के बाद आधा पाइण्ट ठण्डा पानी दो। रोगी इस पानी को पेट ही में रखने की कोशिश करे। यह बाद में पेशाब के रास्ते निकल जायगा।

कठिन ख़ुराक कदापि न दो। पहले तीन-चार दिन तक उसे ४ पाँइण्ट तक नींबू का पानी दो। ताज़े नींबू का रस निकाल कर उसमें उबलता हुआ पानी डालो और एक प्याला तैयार करके उसे धीरे-धीरे पिलाते जाओ। जौ का पानी भी नींबू के साथ या बग़ैर नींबू के भी दिया जा सकता है।

बुख़ार छूटने और रोगी के अच्छा होने लगने पर पक्की दाख, जिसके छिल्के और बीज निकाल लिए हों, नारङ्गी, उबाले हुए सेव, दूध और उबला हुआ ठण्डा पानी दिया जा सकता है।

रात-दिन खिड़कियाँ खुली रक्खो।

मुँह और दाँत ख़ूब साफ़ रक्खो।

जहाँ नहलाने के लिए टब न मिल सके वहाँ रोगी के शरीर को हर दूसरे घण्टे के बाद कुनकुने पानी के पोते से गीला करते रहना चाहिए, बुख़ार बहुत ज़्यादा हो तो ठण्डे पानी से भी बदन पोता जा सकता है। बुख़ार के कम होने पर अगर पानी कुछ गर्म भी हुआ तो हर्ज नहीं। शरीर को नरम तौलिए से पोंछने के बजाय हल्के हाथों तौलिया फिरा कर उसे सुखाना चाहिए। रोगी के पैर गर्म रहने ही चाहिए। जहाँ मामूली हालत में पैर गर्म न रहें वहाँ गर्म पानी में फ़लालेन भिगो कर निचोड़ लो और उसे पैरों के आस-पास लपेट दो। इससे पैर गर्म रह सकते हैं। 'वेट-शीट-पैक' से काम लिया जाय तो वह भी एक अच्छी चीज़ है, ('वेट-शीट-पैक' का वर्णन ऊपर लिखी छः सूचनाओं में आ गया है)।"

मेरे विचार में निस्सन्देह बहुतेरे रोगी तो रोग के बजाय रोग के डर ही से ज़्यादा मरते हैं। अपने बालकों को भी मैंने इस तरह डरते देखा है, क्योंकि बचपन ही से उन्हें इस रोग से डरने की शिक्षा दी जाती है। यह मानना कि और रोगों की अपेक्षा इस रोग में ज़्यादा मौतें होती हैं, फ़िज़ूल है। और रोगों की तरह इस रोग में भी क़ुदरती इलाज पूरी तरह कारगर होते हैं। यह रोग शरीर के ज़हरीले तत्वों को निकाल फेंकने का एक क़ुदरती रास्ता है। रोगी निर्भय बने और भोले-भाले लोग टीका लगाने के लिए आतुर न हो उठें, इस हेतु से यह बताने के लिए कि टीका लगाने का रिवाज कितना ग़ैर-ज़रूरी और कभी-कभी कितना ख़तरनाक होता है तथा उसमें कितनी गन्दगी रहती है, उक्त पुस्तक में से कुछ सतरें नीचे देता हूँ :—

टीके का रस तैयार करने की रीति का एक डॉक्टर ने इस तरह वर्णन किया है :—

"बछड़े को मेज़ के साथ कस कर बाँध देते हैं, जिससे कि वह चूँ-चपड़ न कर सके। इसके बाद उसका पेट अच्छी तरह घिस कर धो डाला जाता है। बाद में उस जगह के सब बाल निकाल डाले जाते हैं और फिर उसके पेट पर १०० से १२० जगहों पर अलग-अलग चीरे लगाए जाते हैं, और उन छेदों या घावों में चेचक का पीप भरा जाता है। पीप के अच्छी तरह भीतर घुस जाने पर उस बेचारे को छोड़ देते हैं और खूँटे से बाँधते समय उसका सिर इस तरह रक्खा जाता है कि वह उन घावों को अपनी जीभ से चाट न सके। यों आठ दिन तक वह बाँध कर रक्खा जाता है। आप में से बहुतों को यह अनुभव होगा कि हाथ पर कहीं नन्हा सा फोड़ा होने से कितना कष्ट होता है। फिर यदि आपके पेट पर १०० से लेकर १२० तक फोड़े या घाव हों और वेदना को कम करने या मिटाने का कोई उपाय न हो तो क्या हाल होते होंगे, ज़रा सोच लें। आठ दिन के बाद बछड़े को फिर से उस मेज़ के साथ कस कर बाँधा जाता है और उन फोड़ों को फोड़-फोड़ कर, दबा-दबा कर उनमें से वह गन्दा रस निकाला जाता है। बालक के हाथ में से यह रस या पीप जितनी आसानी से निकाला जा सकता है, उतनी आसानी से न निकलने पर उन फोड़ों को ख़ूब दबाया जाता है, अक्सर उन्हें ऊपर से काट कर भीतर से पीप निकाला जाता है और सो भी कुरेद-कुरेद कर। बाद में इस पीप के साथ ग्लीसरीन मिला कर इसका उपयोग किया जाता है।"

डॉ० वाल्टर हेडवेन ने टीका लगाने के विरुद्ध अपनी जो राय दी है, वह जानने योग्य है:—

"एक डॉक्टर की हैसियत से मैं कहता हूँ कि टीका लगाना सामान्य बुद्धि के विरुद्ध है, विचार-दोष है, इसके

प्रयोग में ख़ामी है और इसका परिणाम शून्य या हानि-कारक होता है। हाँ, और इस तरह की गन्दी चीज़ को लेकर आप उसका ज़हर मनुष्य के शरीर में डाला चाहते हैं तो इस बात का विश्वास हमें दिलाइए कि उसका असर वही होगा जो आप कह रहे हैं, किसी तरह का बुरा असर बिलकुल न होगा। ब्रिटिश राज्य के किसी भी डॉक्टर को मैं चुनौती देता हूँ कि वह, अगर उसमें साहस हो, इस तरह का विश्वास पैदा करे। अगर इस तरह की गैरण्टी न दी जाती हो तो क़ानूनन टीका लगाने को अनिवार्य बनाने का किसी को अधिकार नहीं है।

"जहाँ-जहाँ चेचक की बीमारी फैली है, वहाँ-वहाँ टीका लगाने वाले आदमियों के द्वारा ही फैली है। शुरुआत ही ऐसे लोगों से हुई है और रोग के शिकारों में बहुतेरे टीका लगाने वाले ही होते हैं। अतएव टीका लगाना अनिवार्य करने के बदले टीका लगाए हुए आदमियों से रक्षा करने वाला क़ानून बनना चाहिए।

"जब से टीका अनिवार्य हुआ है, नौजवानों में गुह्येन्द्रिय के रोग चौगुने बढ़ गए हैं।"

इस पुस्तक में टीके के विरोध में बहुतेरे वैद्यकीय सबूत पेश किए गए हैं।

* *

अध्यापिका-वर्ग

प्रयाग विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग के प्रधान, अध्यापक धीरेन्द्र वर्मा, एम० ए० ने आजकल के अध्यापिका-वर्ग के विषय में 'उषा' में एक विचारपूर्ण लेख इस प्रकार लिखा है :—

कुछ दिन पहले अपने देश में स्त्रियों के बीच में पढ़ना-लिखना विधवाओं का कार्य समझा जाता था और प्रारम्भ में प्रायः होता भी ऐसा ही था। यदि कोई थोड़ा-बहुत पढ़ना-लिखना जानने वाली स्त्री दुर्भाग्यवश विधवा हो जाती थी और फिर यदि परिवार में कोई अन्य संरक्षक न हुआ तो वह धीरे-धीरे कुछ और तरक़्क़ी करके अध्यापिका का कार्य कर जीवन-निर्वाह करने लगती थी। अपने देश के स्कूलों में अध्यापिका-वर्ग में बहुत बड़ा समुदाय इसी श्रेणी की स्त्रियों का है।

जब से कॉलेज और यूनिवर्सिटी में लड़कियाँ पहुँचने लगी हैं और धीरे-धीरे ऊँची पढ़ाई के लिए स्त्रियों की आवश्यकता पड़ने लगी है, तब से "कुमारियों" का एक नया वर्ग अपने देश में भी बनने लगा है। कॉलेज तथा यूनिवर्सिटी के अध्यापिका-वर्ग में प्रायः बड़ी उम्र की अविवाहिता 'कुमारियाँ' हैं, अथवा ऐसी विवाहिता स्त्रियाँ हैं जिनका दाम्पत्य जीवन किसी कारण से सफल नहीं रह सका है।

मेरी समझ में, कन्याओं की शिक्षा में सब से बड़ी त्रुटि यह है कि उनकी अध्यापिकाएँ प्रायः विधवाएँ अथवा कुमारी-वर्ग की हैं। अध्यापक के रहन-सहन, आचार-विचार आदि का विद्यार्थियों पर, जाने और बिना जाने, दोनों तरह से, कितना प्रभाव पड़ता है, यह वे ही भली प्रकार जानते हैं जिन्होंने इस विषय का विशेष रूप से अध्ययन किया है। जिन कन्याओं को गृहिणी होना है, उनके लिए विधवा अथवा कुमारी-वर्ग का आदर्श हितकर नहीं हो सकता।

छोटी-छोटी बातों में इस तरह के आदर्शों का कुप्रभाव प्रकट होने लगता है। पचास रुपए पाने वाली वह अध्यापिका, जिसके आगे-पीछे कोई नहीं है, कुल रुपया अपने ऊपर ख़र्च कर सकती है। साफ़-सुथरी तथा निर्द्वन्द रहने वाली अध्यापिका, कोमल मस्तिष्क वाली कन्याओं के लिए आदर्श-स्वरूप हो जाती हैं। किन्तु भविष्य में विवाहित हो जाने पर शायद ही किसी लड़की को अपनी अध्यापिका की तरह साफ़-सुथरी तथा निर्द्वन्द रहने का अथवा अपने ऊपर पचास रुपए ख़र्च करने का अवसर मिल सके। ऐसी हालत में स्कूल की पढ़ी लड़कियाँ यदि सफल गृहिणी न निकल सकें तो आश्चर्य की कोई बात नहीं है।

मैंने स्वयं अपने कानों से ऊँचे दर्जे की लड़कियों को कहते सुना है कि गृहस्थी झञ्झट है, बच्चे मुसीबत की चीज़ हैं, पति अथवा सास-ससुर के अङ्कुश में रहना दुःसाध्य है। बहुतों को यह इच्छा प्रकट करते भी सुना है कि हमारे जीवन का आदर्श तो उच्च शिक्षा प्राप्त करके फलानी टीचरेस या हेडमिस्ट्रेस या लेडी प्रिन्सिपल की तरह रहने और जीवन व्यतीत करने का है। इस तरह का आकर्षण स्वाभाविक है। जब ये कन्याएँ देखती हैं कि हमारी अध्यापिका नित्य एक नई बढ़िया साड़ी बदल

कर आती हैं, और माँ हफ़्ते में दो या एक बार ही मुश्किल से धोती बदल पाती हैं, जो कभी उतनी उजली रह ही नहीं पाती; अध्यापिका जी की साड़ी, रूमाल तथा शरीर से सदा सुगन्धि निकला करती है, माँ के हाथ और कपड़ों से हल्दी, मिर्च, मसाले की दुर्गन्धि; अध्यापिका जी नित्य सन्ध्या को बैडमिण्टन खेलती हैं, माँ दफ़्तर से लौटे हुए बाबू जी को नाश्ता खिलाती हैं और रोते हुए भैया को चुपाती हैं; अध्यापिका जी सप्ताह में कम से कम एक बार मित्रों के साथ सिनेमा, थियेटर या पिकनिक पर जाती हैं, माँ बेचारी को पिछली सोमवती पर भी गङ्गा जी जाने को नहीं मिला था; तब क्या आश्चर्य है कि लड़की विवाहिता माँ के आदर्श को छोड़ कर अध्यापिका जी को अपने जीवन का आदर्श बनाना चाहती है और यदि सौभाग्य अथवा दुर्भाग्य से उसे ऐसी कुमारी अध्यापिका अथवा विधवा अध्यापिका न बन कर गृहस्थिन माँ बनना पड़ता है तो उसका सारा जन्म दुःख में कटता है!

अपनी कन्याओं की शिक्षा के सम्बन्ध में अध्यापिकाओं के आदर्श का यह प्रश्न अत्यन्त महत्वपूर्ण है। यदि इस ओर ध्यान नहीं दिया गया तो धीरे-धीरे लड़कियों की शिक्षा बढ़ने पर समस्त समाज को भारी धक्का पहुँच सकता है। मेरी समझ में सबसे पहली आवश्यकता इस बात की है कि अध्यापन के कार्य को विधवा और कुमारी-वर्ग का कार्य न समझ कर उत्तरदायित्व समझने वाली गृहस्थिन स्त्रियों का कार्य समझना चाहिए। बड़े-बूढ़ों को अपनी पढ़ी-लिखी बहुओं को वैतनिक या अवैतनिक रूप में पढ़ाने का काम करने को भेजने में हिचकिचाहट नहीं होना चाहिए, बल्कि उन्हें उत्साहित करना चाहिए। इस झूठी लज्जा के कारण अपनी लड़कियों के नैतिक आदर्शों में बहुत भारी पतन हो जाने का भय है जो समाज को समूल नष्ट कर सकता है।

हमारे लड़कों की संस्थाओं में रँडुओं का सा निर्द्वन्द जीवन व्यतीत करने के उद्देश्य से आजन्म अविवाहित रहने वाले अध्यापक कितने फ़ी सदी निकलेंगे?

पुरुष-समाज

[सम्पादक—श्री० किरण-
कुमार मुखोपाध्याय
(नीलू बाबू)]

राग कालिङ्गड़ा—कहरवा

(८ मात्रा)

[शब्दकार तथा स्वर-लिपिकार—
श्री० केदारनाथ जी 'बेकल'
बी० ए०, एल० टी०]

फूल खिला कुम्हलाय, पिया बिन, जोबन बीता जाय।

सखी सहेली करत ठठोली
कूक कोयलिया मारे बोली
नार कामिनी बाली भोली
कर मल-मल पछताय—
पिया बिन...............

चुन-चुन कलियाँ सेज सजाऊँ
सादर प्रेम-दुकूल उढ़ाऊँ
मन-मन्दिर में आओ बिठाऊँ
नैन मूँद—हरषाय
पिया बिन...............

घर आँगन मोहे कुछ न सुहावे
मदन विरह के तीर चलावे
'बेकल' पिया मोहे काहे सतावे
तड़प-तड़प जिया जाय
पिया बिन...............

स्थायी

ताल	ध ×	गे	ना	ति	ना ०	के	धि	ना
	(स) ऩ	स	स	स	(म) ग	—	ग	ग
	फू	—	ल	खि	ला	—	कु	म
	(प) म	—	म	म	ग	म	प	प
	ला	—	य	पि	या	—	बि	न
	प	ध॒	प	न	ध॒	प	म	प
	जो	—	ब	न	बी	—	तो	—
	ग	म	ग	प	म	ग	र॒	स
	जा	—	—	—	—	—	—	य

अन्तरा

ताल ×	गे	ना	ति	ना॰	के	धि	ना
प	ध	प	प	न	—	सं	—
स	खी	—	स	हे	—	ली	—
नसं	रं	सं	न	—	सं	न	ध
कर	त	ठ	ठो	—	ली	—	—
ध	प	ध	न	न	सं	—	—
कू	क	को	य	लि	या	—	—
रं	सं	रं	सं	न	सं	न	ध
मा	रे	—	बो	—	ली	—	—
प		न	सं	रं	सं	न	सं
ना	र	का	—	मि	नी	—	—
गं	मं	गं	रं	सं	न	सं	न
बा	ली	—	भो	—	ली	—	—
सं	न	सं	न	सं	न	ध	प
कर	म	ल	म	ल	प	छ	ता
ध	प	म	ग	म	प	—	—
—	य	पि	या	—	बि	न	—
प	ध	प	न	ध	प	म	प
जो	—	ब	न	बी	—	तो	—

राग-विवरण (दोहा)—तीवर हैं नि, ग, दो जहाँ, कोमल ध, म, रि तीन।

ध, ग वादी सम्वादि ते, कालिङ्गड़ा कह दीन ॥ (रागचन्द्रिका सार)

दिल की आग उर्फ़ दिल-जले की आह !

["पागल"]

चतुर्थ खण्ड

१०

डॉक्टर साहब से मैं अपने इस अनोखे विवाह पर उनकी सम्मति सुनना चाहता था, क्योंकि मनुष्य को अपनी धारणा का समर्थन बड़ा प्रिय होता है। मुझे भी इस समय उनसे यही आशा थी कि वह मेरे विचारों को सही बताते हुए यह अवश्य कहेंगे कि सरो निस्सन्देह तुम्हारी स्त्री है। प्रेम के बन्धन में अटल रूप से बँध जाना ही विवाह का उद्देश्य है। यही असली शादी है। संसार को दिखाने के लिए वेदी पर झूठी प्रतिज्ञाओं का टण्ट-घण्ट करना तो कोरा पाखण्ड, दिखावा या अधिक से अधिक प्रेम को किसी तरह फुसला कर एक बन्धन में बाँधने का उद्योग है, जिसकी सफलता भाग्य के अधीन है। इसमें न वह दृढ़ता हो सकती है और न वह महत्व। परन्तु डॉक्टर साहब सरो की बुद्धि की प्रशंसा में इतने मस्त थे कि उन्होंने इन बातों पर, हाय! कुछ भी ध्यान नहीं दिया। वह बार-बार यही कहते थे कि—अहाहा! होली का दिन अपनी प्रतिज्ञा-पालन के लिए स्थिर करने में सरो ने बेशक बड़ी ही बुद्धिमानी दिखाई है। इसका मर्म अब समझा। सेन्दुर की लाली की आड़ में छिप जाने के लिए ही उसने यह दिन निश्चित किया था।

इसी तरह की तारीफ़ें सुनते-सुनते एक दफ़े मैं कह बैठा—मगर डॉक्टर! मुझे उसकी बुद्धिमानी की आवश्यकता न थी। मैं तो उसका प्रेम चाहता था।

सन्तोषानन्द—तो पाया तो। यह उसका प्रेम ही था, जिसने तुम्हारे प्रस्ताव को उससे स्वीकार कराया और इसका ध्यान उसके दिल में बराबर बनाए रक्खा, क्योंकि उसीने होली के एक दिन पहले तुम्हें इसकी सुधि दिलाई थी, और उसीने तुम्हें इसके लिए अवसर भी दिया, वरना बिना उसके प्रेम के यह सब क्या मुमकिन था?

मैं व्याकुल होकर बोला—आह! डॉक्टर, मुझे भी उन्हीं विचारों ने उन दिनों उन्मत्त बना रक्खा था। मैं जानता था सरो मेरी है। उस पर मेरा अटल विश्वास था। संसार उसे मुझसे कभी छीन नहीं सकता। मेरा धरोहर कभी लूटी नहीं जा सकती। एक न एक दिन वह मेरे ही गले का हार होगी। मगर उफ़! ईश्वर के लिए इस सुख-स्वप्न पर जल्दी पर्दा गिरा दो। सुधा बरसाने वाले उन दिनों की याद इस समय मुझ पर वज्र गिरा रही हैं। उस हत्यारे डिप्टी को क्या कहूँ, जिसकी परछाहीं सरो पर ऐसी पड़ी कि मेरी शिक्षाओं का प्रभाव धीरे-धीरे उलट गया। नहीं तो—

सन्तोषानन्द—कौन डिप्टी?

मैं—उसका नाम न पूछो। मारे जलन के मुझसे उसका नाम तक नहीं लिया जाता। वह सेठ जी के किसी मित्र का लड़का था। हज़रत हाल ही में कॉलेज से निकल कर डिप्टी मैजिस्ट्रेट हुए थे। काम सीखने के लिए पहले-पहल यहाँ ही नियुक्त होकर आए और अपने बाप की मित्रता के बल पर सेठ जी के यहाँ ठहरे। नौजवान, रँगीले और चलते-पुर्ज़े थे। सेठ जी के सजातीय थे ही। यहाँ इन्द्रासन का अखाड़ा देखा। बस न जाने कहाँ से नाता जोड़ कर उनके रिश्तेदार भी बन गए और यों अपना बसेरा अच्छी तरह से जमा लिया। × × ×"

इतने में आश्रम की चपरासिनी घबड़ाई हुई आकर बोली—ताराबाई सीढ़ियों पर से गिर पड़ी हैं। बड़ी देर से बेहोश हैं। जल्दी से बेहोशी की दवा लेकर चलिए।

हम लोग जब आश्रम के द्वार पर पहुँचे तो माता जी बाहर आकर कहने लगीं—अब तो तारा होश में आ गई है। कहती है कि घबड़ाने की कोई बात नहीं है और न दवा की अब ज़रूरत है। यह मेरी पुरानी बीमारी का एक हल्का सा दौरा था। बाप रे बाप! यहाँ तो

सबके प्राण सूख गए और उसके आगे यह ख़ाली हल्का सा दौरा रहा। बड़े पोढ़े दिल की है।

शाम को माता जी ने मुझसे एकान्त में चुपके से कहा—सुना अलिन्द, तारा की पीठ में तो टेढ़ी-टेढ़ी बहुत सी नन्हीं-नन्हीं लकीरें बनी हैं। ऐसी जगह हैं कि उन्हें मैं उसकी बीमारी में भी देख न सकी थी, ठीक कमर के पास, जिसके ऊपर धोती बाँधी जाती है। वह तो आज उसके गिरने में संयोग से उसकी साड़ी का बन्धन खुल गया था और मैं चोट के निशानों को ढूँढ रही थी तब जाकर मुझे उनका पता चला। मगर और किसी ने नहीं देखा। यह तो अजीब बात है। क्यों अलिन्द ?

मैं—लच्छन होगा। इसमें ताज्जुब क्या है ?

माता जी—नहीं, वह तो गोदना ऐसा मालूम होता है।

मैं—तो गोदना ही सही। अब तो पढ़ी-लिखी स्त्रियाँ चेहरे पर गोदना नहीं गोदवातीं, और जो इसे बहुत ज़रूरी समझती हैं तो अपने बदन पर ऐसी जगह गोदवा लेती हैं जहाँ किसी की नज़र न पड़ सके।

माता जी—हाँ ? तब तो पढ़ी-लिखी स्त्रियाँ बड़ा अन्धेर करती हैं। मगर वह अजब ढङ्ग का है।

मैं—तब मुमकिन है कि उसे उस जगह कभी फोड़ा निकला हो जो चीर कर सिया गया होगा। नश्तर के निशान भी तो गोरे रङ्ग पर अकसर गोदना ऐसे बन जाते हैं !

आज डिप्टी का प्रसङ्ग उठने से मेरी तबीयत बहुत परेशान थी। रह-रह कर वही पुराने दिन आँखों के सामने नाच रहे थे और मैं क्रोध और डाह से जल रहा था। इसलिए माता जी की बातें मुझे कुछ भी रुचिकर नहीं जान पड़ीं। अस्तु, किसी तरह वह सन्तुष्ट हुईं, यही बड़ी बात हुई। मगर वैसे ही डॉक्टर साहब बाहर से घूम-घाम कर आए और मुझे अपने साथ घसीट ले गए।

मुझे विवश होकर फिर उसी डिप्टी का हाल कहना पड़ा, जिसने मेरे सोने का संसार मिट्टी कर दिया—क्या कहूँ डॉक्टर, जिस दिन से उसका सेठ जी के घर में पाँव पड़ा उसी दिन से मेरा दुखड़ा आरम्भ हुआ, वरना इसके पहले सरो और हम, यद्यपि चकई-चकवा की भाँति सदा एक-दूसरे से दूर ही दूर रहते आए, तथापि हम दोनों एक प्राण दो शरीर थे। एक-दूसरे को दिल ही दिल में पूर्ण रूप से अपना ही अपना समझते थे। परन्तु उसने आते ही ऐसी-ऐसी युक्तियाँ करनी शुरू कर दीं, जिससे मेरे लिए सरो का दर्शन भी दुर्लभ होने लगा। पहले तो उसने सेठ जी पर रङ्ग जमाया और उन्हें सुझा दिया कि सरो अब सयानी हो चली। इसे किसी पराए पुरुष के पास बैठ कर पढ़ना उचित नहीं है। उधर मेरे पढ़ाने के समय लड़कियों को गान-विद्या सिखाने का ढोंग रच कर ख़ुद हारमोनियम लेकर बैठ जाता। सरो को भी विवश होकर उसमें सम्मिलित होना पड़ता। मैंने अपने पढ़ाने का काम जारी रक्खा। मगर पढ़ने के लिए बस लड़के ही आते थे। अगर किसी दिन सरो आने का अवकाश पा जाती तो उसी डिप्टी के इशारे पर सब लड़कियाँ फट पड़तीं और उसे अपने साथ पकड़ ले जातीं। इसके बाद उसने दो-एक लड़कों को स्कूल में भर्ती कराया और उन लोगों के पढ़ाने के लिए, सेठ जी से यह कह कर कि जिससे स्कूल में पढ़ना है उसी से घर पर भी पढ़ना अधिक उत्तम है, एक स्कूल ही का मास्टर भी नियुक्त करा दिया। इस तरह पढ़ाने के बहाने वहाँ बैठने का सिलसिला मेरा अन्त हो गया।

सन्तोषानन्द—तब तो सचमुच वह तुम्हारी जड़ खोदने ही पर लगा था।

मैं—अरे ! डॉक्टर, उसके अनर्थों को कहाँ तक कहूँ ? उसने थोड़े ही दिनों में मुझे सेठ जी के घराने में बिल्कुल ही पराया बना दिया।

सन्तोषानन्द—क्या सरो की दृष्टि में भी ?

मैं—नहीं, उसकी दृष्टि में तो नहीं। फिर भी परिस्थिति धीरे-धीरे उसके हृदय पर भी अपना प्रभाव अवश्य डालती रही होगी। वरना वह इतनी आसानी से मुझे कदापि त्याग नहीं सकती थी। यही तो मेरी सबसे बड़ी मूर्खता थी, जो परिस्थिति का मैंने कुछ भी ख़्याल नहीं किया। यद्यपि मैं मारे जलन के नित्य ही कुढ़ता था, तड़पता था, रोता था, तथापि मैं अन्धविश्वास में पड़ा हुआ था कि कुछ हो, सरो मेरी है, स्वप्न में भी वह अन्य किसी की हो नहीं सकती। × × ×

सन्तोषानन्द—अब तो तुम्हें भी उससे मिलने में सङ्कोच होता होगा। × × ×

मैं—हाँ डॉक्टर ! पढ़ाना बन्द हो जाने से उससे मिलने के लिए कोई बहाना ही नहीं पाता। उसके बाहर निकलने में भी रोक-टोक होने लगी। और भीतर बे काम के नित्य जाते हुए मुझे अलग हिचक मालूम होती थी, ख़ास कर ऐसी हालत में जब मैं वहाँ अब बेजाने की तरह देखा जाता था। फिर भी दूसरे-तीसरे आँख बचा कर किसी न किसी तरह सरो के समीप पहुँचता ही था। केवल आँखों ही आँखों में बातें होकर रह जाती थीं। मगर हाय ! यह सौभाग्य भी मेरा लूट लिया गया।

सन्तोषानन्द—यह कैसे ?

मैं—इस बीच में डिप्टी साहब के घर के लोग आगए, जिन्हें मुझसे पर्दा हुआ ही चाहे। इसलिए भीतर आना-जाना मेरा बन्द हो गया। कुछ दिनों में यद्यपि डिप्टी साहब को अलग मकान लेना पड़ा, तथापि उनके यहाँ की स्त्रियों के साथ रहने के कारण सरो के घराने से इतनी आत्मीयता बढ़ गई थी कि एक दिन वह लोग आती थीं तो दूसरे दिन यह लोग जाती थीं और शाम को डिप्टी साहब मोटर लिए डटे ही रहते थे। कभी हारमोनियम में सरो को बझाए रखते थे और कभी लड़कियों को सिनेमा दिखाने या टहलाने के बहाने ले जाते थे। वह आत्मीय थे, रिश्तेदार थे, उनके लिए सब उचित था।

सन्तोषानन्द—भला सरो इन बातों में कभी आना-कानी नहीं करती थी ?

मैं—कैसे कर सकती थी ? विवश थी। डरती थी कि ऐसा करने में लोग ताड़ जाएँगे कि उसके भाव मेरे प्रति कैसे हैं।

सन्तोषानन्द ने मुस्करा कर कहा—नहीं अलिन्द ! यह परिस्थिति का प्रभाव था, जो तुम्हारे लिए उसके हृदय की व्यग्रता शिथिल करता जाता था। बाल्य स्वभाव को मोटर की सवारी, हारमोनियम की मधुर रागिनी, घूमने का शौक़, सिनेमा का तमाशा, प्रेम से कहीं अधिक रुचिकर होता है। मगर तुममें भी बला का सब्र था कि उसकी उदासीनता देख कर भी तुम प्रेम से मुँह न मोड़ सके।

मैं—हाय ! प्रेम पर किसी का वश हो तब तो कोई ऐसा करे ? दूसरे मैं तो सरो को अपनी स्त्री समझता था। तीसरे वह कभी-कभी मेरे यहाँ अपने घर की अन्य स्त्रियों के साथ किसी काम-काज में जब आती थी और मुझे बहुत परेशान पाती थी तो अवसर पाकर कहती थी—आप नाहक़ इतने परेशान होते हैं। और यही वह मेरे ख़तों के उत्तर में भी लिख कर मुझे सन्तोष देती थी

सन्तोषानन्द—अरे ! ख़त-किताबत का हाल तुमने कहाँ कहा ? यह तो शायद तुम छोड़ ही गए।

मैं—नहीं डॉक्टर ! अब तक मुझे पत्र लिखने में स्वयं ही सङ्कोच होता था। मैं डरता था कि शायद उसकी लापरवाही से अन्य किसी के हाथ में पड़ कर कोई भारी अनर्थ न पैदा कर दे। मगर जब उसके विवाह की बातचीत होने लगी और उसकी भनक मेरे कानों में भी पड़ी, तब मैं सब्र न कर सका और अपना हाल लिख कर किसी न किसी तरह उसके हाथों में मैंने ख़ुद ही दिया, क्योंकि अन्य किसी पर मैं विश्वास नहीं कर सकता था। इसी तरह सौ-सौ मुसीबतें झेल कर और कई-कई दिनों की कोशिशों में कहीं एक ख़त उसके पास तक पहुँचा पाता था। मगर हाय ! वह उत्तर देने में बड़ी कन्जूस थी। मेरे सौ-सौ आग्रह पर वह मुश्किलों से दो-तीन शब्दों में उत्तर देती थी। और वह भी इतना गोल और भ्रमपूर्ण कि अपने विचार के अनुसार जो जी में आता था वही मैं समझ लेता था। कभी लिखती—"घबड़ाने से क्या लाभ ?" कभी—"क्या आपको मुझ पर विश्वास नहीं ?" कभी—"मैं जो थी वही हूँ।" इसी तरह के एकाध वाक्य लिख कर उसके नीचे "आपकी मैं" लिख कर समाप्त करती थी। मैं इतने ही में निहाल हो जाता था। सारी दुनिया की सम्पत्ति मुझे उसके एक ही शब्द "आपकी" में मिलता था। मगर धीरे-धीरे उसके पत्र के वाक्य और भी भ्रमपूर्ण होने लगे, क्योंकि अब वह लिखती—"ईश्वर मालिक है।" कभी—"जो मेरे कर्म में लिखा है वही तो होगा।" कभी—"एक तरफ़ आप और दूसरी तरफ़ लोक-लाज और तमाम घर वाले। उफ़ ! बड़ी कठिन समस्या है।" कुछ दिनों में यह रङ्ग भी उड़ गया और उसके वाक्यों में कुछ रूखापन आने लगा और अन्त का सन्तोषजनक शब्द "आपकी" भी अलोप हो गया।

सन्तोषानन्द—अरे ! यार, इतने स्वाभाविक ढङ्ग से तो उसके हृदय का परिवर्त्तन होता गया और फिर भी तुम अन्धविश्वास में पड़े रहे ? बड़े मूर्ख हो ।

मैं—हाँ भाई, मूर्ख तो था ही । प्रेम में, हाय ! बुद्धि कब काम देती है ? इसीलिए तो ज्यों-ज्यों उसकी उदासीनता बढ़ती थी, त्यों-त्यों मेरी व्यग्रता उधम मचाती थी और मैं व्याकुल हो-होकर ख़त पर ख़त लिखता था । मगर अफ़सोस ! अब सौ तरकीबें करने पर भी मैं उसे एक भी पत्र देने का अवकाश नहीं पाता था ।

सन्तोषानन्द—महज़ इसलिए कि परिस्थिति ने उस पर अपना इतना प्रभाव डाल दिया कि अब वह तुमसे पत्र-व्यवहार भी रखना नहीं चाहती थी । अवकाश का दोष देना वृथा है, क्योंकि यह तो प्रेमिका के अधीन होता है, कुछ परिस्थिति के नहीं ।

मैं—ठीक कहते हो डॉक्टर ! यही बात थी । तभी एक दिन जब वह द्वार पर खड़ी थी और संयोग से इधर-उधर कोई देखने वाला न था, मैं पत्र लेकर उसके पास बदहवास दौड़ा । मगर हाय ! जैसे ही मैंने हाथ बढ़ा कर उसे अपना पत्र देना चाहा वैसे ही उसने अपना हाथ खींच लिया और भीतर चली गई । मेरे कलेजे पर साँप लोट गया । उस दिन से फिर कभी मुझे पत्र लिखने का साहस न हुआ और हताश होकर मैं बीमार पड़ गया । अभी मैं बीमारी से अच्छा भी नहीं हुआ था कि मैंने अपने कोठे पर से देखा कि वह अपने दोमञ्ज़िले की खिड़की से एक लिफ़ाफ़ा गिरा रही है । नीचे उसके यहाँ के एक नौकर का छोटा लड़का था । मेरा हृदय बाँसों उछल पड़ा । मैं समझ गया कि वह पत्र मेरा है । वरना इतनी गुप्त रीति से उसे भेजने की क्या आवश्यकता थी ? इसलिए मुझे अब रुकने की ताब न रही । बीमारी ही की हालत में मैं दौड़ा और छोकड़े से झट वह पत्र छीन कर आँखों से लगा लिया । मगर हाय ! उस पर डिप्टी साहब का नाम देखते ही मेरे हाथ जैसे जल से उठे और मैं उसे फेंक कर भागा ।

सन्तोषानन्द ने मुस्करा कर पूछा—अब तो तुम्हारा और सरो का सम्बन्ध टूट सा गया होगा ।

मैं—नहीं डॉक्टर ! यह वह सम्बन्ध नहीं, जो लग कर फिर कभी टूट सके ।

सन्तोषानन्द—हत् तुम्हारे की ! अब भी नहीं चेते ?

मैं—इसमें चेतने की क्या बात थी ? सम्भव है उसने डिप्टी साहब से हारमोनियम या ग्रामोफ़ोन मँगवाया हो या कहीं जाने के लिए मोटर माँगी हो । ऐसी ही कोई बात रही होगी । फिर भी यह ज़रूर है कि मैं इसे सहन न कर सका और उसी दिन से मेरा स्वास्थ्य बिगड़ने लगा । यहाँ तक कि कुछ ही दिनों में मैंने चारपाई पकड़ ली । जब मेरा बुख़ार किसी तरह से उतरता नज़र नहीं आया तो डॉक्टरों ने शहर की हवा हानिकारक बता कर मुझे ज़बरदस्ती पहाड़ पर भिजवा दिया । कई महीने के बाद जैसे ज़रा चलने-फिरने की शक्ति आई वैसे ही मैं फिर भाग कर यहाँ आया । मगर हाय ! लौट कर सुना कि सरो की शादी हो गई × × ×

सन्तोषानन्द एकबारगी चौंक कर बोल उठे—अरे ! उसकी शादी हो गई ? तब उसकी आशा कैसी ? पराई स्त्री के लिए यह दीवानगी, यह पागलपन ! छिः ! मैं तो समझता था कि वह शायद सचमुच तुम्हारी स्त्री है । राम ! राम !!

डॉक्टर के एक-एक शब्द मुझे जलते हुए अङ्गारे के समान लगे । मैं किसी तरह भी उनके पास बैठ न सका और तड़प कर यह कहता हुआ वहाँ से भागा—तुम भी, हाय ! तुम भी इस दग़ाबाज़ और पाखण्डी दुनिया के साथी निकले ! नाहक़ तुम्हारे आगे अपना दुखड़ा रोया । आह ! मेरे लिए सहानुभूति कहीं नहीं है, सचमुच कहीं नहीं । × × ×

चतुर्थ खण्ड समाप्त

(क्रमशः)

अपराधी

क्या उत्तर दें ?

एक देवी के पत्र को हम नीचे ज्यों का त्यों उद्धृत कर रहे हैं :—

सिरीमान महासय जी नमस्ते

मैं एक अच्छे घर याने ब्राह्मण सनायड़ (सनाढ्य ?) की लड़की हूँ। मैं हिन्दी भी अच्छी तरह पढ़ी हूँ और कुछ संसकृत भी जानती हूँ। मेरी शादी हुए क़रीब ४-५ साल हुए होंगे। सोई मेरे ऊपर सङ्कट पड़ा। मेरे सुसराल वाले खूब मालदार थे। मेरे पिता मेरी सुसराल वालों के मुकाबिले के नहीं थे। मेरे पिता ने मेरे लिए केवल धन देखा था। जिसके साथ मेरी शादी हुई थी वह बिलकुल बेवकूफ था। उसे किसी बात की तमीज न थी। ऐसा ही मेरा ससुर भी था। मेरा ससुर मेरे ऊपर बड़ी मुहब्बत करता था। मैं समझती थी कि इस सुसरे की मेरे ऊपर निगाह खोटी है। फिर धीरे-धीरे वह मुझे छेड़ने लगा। जहाँ अकेली देखे वहीं मुझे पकड़ ले। परन्तु मैं उस बेईमान के फन्दे से छूट कर भाग आती थी। अब मैं किससे कहूँ ? मैंने उससे कहा जिसके साथ मेरी सादी हुई थी। परन्तु उसने कुछ सुनाई न की। अब मैं किससे कहूँ ? और मेरा ससुर किसी को घर न आने दे। मेरा ससुर सब गाँम वालों से और कुटुम्बिओं से लड़ाई रखता था। कुटुम्बी कोई न तो औरत आवे न कोई बच्चा आवे न मर्द आवे। फिर धीरे-धीरे मेरी सास को खबर पड़ी तो मेरी सास भी ऐसी निकली जो मेरे सामने तो ससुर से नाराज होकर हल्ला करती थी। फिर पीछे बेईमान ससुरे से कुछ नहीं कहती थी। फिर भी उस ससुरे का वैसा हो हाल रहा। और ससुरे के यहाँ दुसरे गाँम के आदमी आया करते थे वह भी पूरे बदमास थे। एक पण्डित ज्यादा आया करता था। वह बड़ा बदमास था। वह मेरे से प्यार करता था। फिर धीरे-धीरे मुझे छेड़ने लगा। तब मैं चारों तरफ़ से घिर गई। अब मैं कैसे करूँ ? फिर मैंने जिसके साथ शादी हुई थी उससे कहा कि तुम अपने लिए ब्याह करके लाए थे या अपने बाप के लिए या बाहर के आदमियों के लिए ? तो फिर उसने कुछ न कहा। मेरा जी घबड़ने लगा। फिर मैंने उसी से कहा जिसके साथ सादी हुई थी कि मैं किसी दिन चली जाउँगी तो वह बोला कि चली जा। परन्तु उसने ऊपर के मन से कहा। सचमुच वह मुझ पर बड़ा प्यार करता था। परन्तु मुझे तो दिन-रात यही सोच था कि अपना ईमान कैसे बचाऊँ। फिर मुझे कोई ढङ्ग न दीखा तो मुझे अपने पीहर को भागना सूझा। मैं रात के चार बजे अपना सब जेवर लेकर अपने पीहर को चली। फिर मेरे ससुराल वालों को खबर पड़ी तो मेरा पीछा किया और मुझे पकड़ लिया। मेरे सब जेवर छीन कर मुझे निकाल

दिया। अब फिर वह लड़का जो ब्याह के ले गया था अपने बाप-माँ से छिप कर मुझे लिवाने तीन बार आया। वह तो मुझे छिप कर लिवाने आया। फिर महासय जी उसके साथ मेरा जाना कैसे ठीक होता? मैंने उससे यह कहा कि अपने बाप से अलग हो जाओ तो मैं चलूँ। तो वह बोला कि अलग नहीं हूँगा। अब उस ससुरे ने अपने लड़के को दूसरी सादी कर ली है। मैं तो यह कहूँगी कि मेरी छाती पर जिसने अपनी लड़की दी है और जिसने सादी कराई है उनका परमात्मा बुरा करे। उसने अपनी लड़की दी है तो इस बात की खबर तो ले लेता कि पहिली लड़की में क्या कसूर था। अब देखिए महासय जी अब किस की गलती है? मेरे साथ में यह अनरथ हुआ है। अब महासय जी मुझको आप बतावें कि मैं किस तरह से दिन काटूँ? हमारे हिन्दू समाज में ऐसे ऐसे अनरथ हो रहे हैं।

[इस देवी ने अपने पत्र के अन्त में लिखा है—"आपकी छोटी सी कन्या × × ×"। हम अपनी इस छोटी सी कन्या को क्या उत्तर दें? हमारी समझ में नहीं आता। इस पत्र में कौन सी बात लिखने से रह गई है, जिसे हम अपनी ओर से लिखें? "मेरी छाती पर जिसने अपनी लड़की दी है और जिसने सादी कराई है उनका परमात्मा बुरा करे। उसने अपनी लड़की दी है तो इस बात की खबर तो ले लेता कि पहली लड़की में क्या कसूर था?"—इन शब्दों में कितनी करुणा है! कितनी मर्मस्पर्शी व्यथा! जो माता-पिता बहु-विवाह करने वाले पुरुषों के साथ अपनी कन्याओं का विवाह कर देते हैं, उनका पाषाण-हृदय क्या इन पंक्तियों को पढ़ कर पिघलेगा? ऐसे घरों में कन्या देने से स्वयं अपनी कन्या का अपकार तो होता ही है, परन्तु साथ ही साथ उसकी निरपराध सौतों का जो सर्वनाश होता है, इसका पाप किस पर चढ़ेगा? "मेरी छाती पर जिसने अपनी लड़की दी है और जिसने सादी कराई है उनका परमात्मा बुरा करे"—कौन कह सकता है कि यह अभिशाप व्यर्थ होगा? यह किसी कर्कशा का कोसना नहीं है, एक निरपराध सताई हुई सती की आह है। इसका व्यर्थ होना सम्भव नहीं। शायद ऐसी ही आहों और व्यथा-पूर्ण उद्गारों पर लक्ष्य रखते हुए मनु ने कहा था :—

यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते सर्वास्तत्राफलाः क्रियाः।

जहाँ स्त्रियों की पूजा नहीं होती वहाँ यज्ञ-यागादि मङ्गल क्रियाएँ भी निष्फल हो जाती हैं। यह तो कहा गया है उस देश के विषय में जहाँ 'स्त्रियों की पूजा' नहीं होती, परन्तु जिस देश में स्त्रियाँ दिन-रात सताई जा रही हैं, जहाँ पद-पद पर उनका अपमान किया जा रहा है, उस देश की कैसी दशा होगी? जब हमारे समाज में निरपराध देवियों पर दिन-रात इस प्रकार के रोमाञ्चकारी अत्याचार हो रहे हैं तब क्या आश्चर्य है यदि हमारी सभी मङ्गल क्रियाएँ व्यर्थ हो जायँ, और हम नाना दान, पुण्य, तीर्थ, स्नान, पूजा, प्रायश्चित्त, यज्ञ, जाप आदि करते हुए भी, उन्नत होने के बदले दिनोंदिन पतित, कङ्गाल, दरिद्र और दुःखी होते चले जायँ?

हिन्दू पुरुषों ने बहु-विवाह-सम्बन्धी अपने अधिकार का जो भीषण दुरुपयोग किया है, उसे देखते हुए यह कहने के लिए विवश होना पड़ता है कि अब इस अधिकार में कमी होनी चाहिए। एक ओर पुरुषों के लिए यह क़ानून बनना चाहिए कि वे, कुछ विशेष-विशेष अवस्थाओं के अतिरिक्त, साधारण दशा में, एक पत्नी के जीवित रहते दूसरा विवाह नहीं कर सकें, दूसरी ओर स्त्रियों को यह अधिकार मिलना चाहिए कि वे कुछ विशेष-विशेष आपत्तियों में (जिनका वर्णन इस मास के सम्पादकीय विचार में विस्तार के साथ किया गया है) अपना दूसरा विवाह कर सकें। यदि इस प्रकार का कोई क़ानून होता तो आज इस पत्र-लेखिका के समान निरपराध देवियों को असहाय न होना पड़ता। परन्तु जब तक इस प्रकार का कोई क़ानून नहीं बन जाता तब तक ऐसे मामलों में चुप्पी साध कर बैठना अत्यन्त हानिकारक है। क़ानून के अभाव में भी, सदाचार की रक्षा के लिए, हमें ऐसे अत्याचारों का प्रतिकार करना ही पड़ेगा।

जिन देवी जी ने यह पत्र लिखा है उनसे हमारा अनुरोध है कि उनमें यदि संयम और त्याग का भाव काफ़ी प्रबल हो—यदि उन्हें पक्का विश्वास हो कि वह आजन्म संयम के साथ रह सकेंगी—तो वह ऐसे नपुंसक पति और नारकी ससुर को परित्याग करके अपने को स्त्री-जाति

की सेवा के लिए प्रस्तुत करें, यथेष्ट योग्यता प्राप्त करके वह अपने जीवन को स्त्री-जाति की सेवा में उत्सर्ग कर दें। इस महान कार्य में उन्हें एक पति और दो-चार बच्चों की सेवा करने की अपेक्षा कहीं अधिक रस और आनन्द मिलेगा। परन्तु यदि वह अपने में इतनी दृढ़ता अनुभव न करें—यदि वह आजन्म ब्रह्मचारिणी रहने में अपने को असमर्थ पाती हों—तो उनके लिए तथा उनके समान दशा में पड़ी हुई अन्य बहिनों के लिए दूसरा मार्ग है।

संसार में रहने के दो ही प्रकार हैं, एक, संसार से विरक्त होकर—संसार के मोह-माया, सुख-दुःख, मान-अपमान, सबकी उपेक्षा करके—और दूसरा, इनमें अनुरक्त होकर। जो लोग संसार से विरक्त होने में असमर्थ हों, उन्हें निर्भयता और दृढ़ता के साथ इसमें अनुरक्त होना चाहिए। निर्भयता और दृढ़ता के साथ इसलिए कि जब संसार के सुख-दुःख, प्रेम-घृणा, मिलन-विरह, मान-अपमान, कीर्ति-कलङ्क, सब भोगना ही है, तो इन्हें लुक-छिप कर, डरते-डरते, अपने को पतित और अधम, तुच्छ और घृणित समझते हुए क्यों भोगा जाय? खुल्लम-खुल्ला, सबके सामने सिर ऊँचा करके, इनका स्वाद क्यों न चखा जाय? अगर आप इन्द्रिय-संयम करने में असमर्थ हैं, यदि लाख प्रयत्न करने पर भी आपकी इन्द्रियाँ विषय-भोग की ओर दौड़ने से नहीं मानतीं, तो आप छिपे-छिपे व्यभिचार क्यों करते हैं? प्रकट रूप से विवाह करके अपनी वासनाओं को तृप्त करते हुए, मन को वश में लाने का प्रयत्न क्यों नहीं करते? छिप कर डरते हुए काम करने से मनुष्य के हृदय में किसी अज्ञात अमङ्गल की आशङ्का छिपी रहती है, जो उसे सदा परेशान और बेचैन किए रहती है। इस तरह होते-होते उस मनुष्य का मन दुर्बल हो जाता है। वह स्वयं अपनी नज़रों में गिर जाता है तथा अपने को पापी और अधम समझने लगता है। पाप की यह दुःखद अनुभूति उसके जीवन को नष्ट कर देती है, वह सदा के लिए सुख और शान्ति खो बैठता है।

इसीलिए हमने अपने पत्र-प्रेषकों को बराबर यह राय दी है कि वे समाज के झूठे आतङ्क से डर कर कोई काम छिपे-छिपे न करें। जिस काम को किए बिना उनका मन नहीं मानता हो—जो काम करना उनके मन की शान्ति के लिए नितान्त आवश्यक हो—उसे वे करें, अवश्य करें, परन्तु भय के साथ नहीं, छिपे-छिपे नहीं, बल्कि प्रकट रूप से, बहादुरी और निर्भयता के साथ। छिप कर भोग करने से तृप्ति नहीं होती, बल्कि इससे मन की तृष्णा और भी बढ़ती है, और मनुष्य का हृदय इस तृष्णा की आग में जलने लगता है। परन्तु इसके विपरीत प्रगट रूप से भोग करने से, और इसके लिए यदि आवश्यक हो तो निर्भयता, दृढ़ता और वीरतापूर्वक समाज के हाथों कष्ट और अपमान भी सहने से मनुष्य को एक अनिर्वचनीय आनन्द मिलता है, एक अलौकिक बल प्राप्त होता है, जिसे आत्मबल, चरित्रबल या मनोबल कहते हैं। और यह बल ही सब प्रकार की स्वाधीनता सुख, सन्तोष और शान्ति का मूल है। जिसके पास यह बल है वह सदा सुखी है, जिसके पास नहीं, वह सदा दुखी; क्योंकि बल से ही स्वाधीनता मिलती है और स्वाधीनता से सुख, निर्बलता से पराधीनता मिलती है और पराधीनता से दुःख। इसलिए मनुष्य को सदा वही काम करना चाहिए जिससे उसका चरित्र सबल बने। जान-बूझ कर, सोच-समझ कर कष्ट सहने से चरित्र में बल आता है; और विलासिता तथा ऐशो-आराम की ओर झुकने से चरित्र दुर्बल होता है। इसलिए जो लोग सच्चे सुख और अक्षय शान्ति के भूखे हों, उन्हें छिप कर सुख भोगने का उद्योग कभी नहीं करना चाहिए, बल्कि जो कुछ करना हो उसे प्रगट होकर करना चाहिए, और इसके लिए यदि आवश्यक हो तो कष्ट सहने को भी सदा तैयार रहना चाहिए।

इस पत्र को लिखने वाली देवी से भी हमारा यही अनुरोध है। यदि वह आजीवन संयम के साथ रह सकें तब तो सब से अच्छी बात है। परन्तु यदि वह इस कठोर व्रत के पालन की शक्ति अपने भीतर नहीं अनुभव करती हों, तो उन्हें साफ़-साफ़ शब्दों में अपने पति से यह बात कहनी चाहिए—पुनः पुनः कहनी चाहिए। इसके बाद भी यदि उनका पति उनकी रक्षा करने के लिए तैयार न हो, तो उनका सीधा और सच्चा कर्त्तव्य यह है कि वह पाप का मार्ग—छिप कर व्यभिचार करने का मार्ग—न पकड़ें, बल्कि किसी सुयोग्य और सच्चरित्र पुरुष के साथ पुनर्विवाह कर लें। हम जानते हैं कि इस कार्य में कठिनाइयाँ हैं, सामाजिक और क़ानूनी कठिनाइयाँ हैं, तथा इनके अलावे भी और बहुत सी कठिनाइयाँ पैदा

हो सकती हैं। परन्तु किया क्या जाय? सच्चे धर्म और सच्चे सदाचार की रक्षा के लिए इन सभी कठिनाइयों का सामना करना अत्यन्त आवश्यक हो गया है।

इस पत्र को लिखने वाली बहिन तथा इनके समान दशा में पड़ी हुई अन्य बहिनों को यह बात अच्छी तरह समझ लेनी चाहिए कि ऐसा विवाह करना—एक पति द्वारा त्याग दी जाने पर उसके जीवित रहते ही दूसरा विवाह करना—आजकल क़ानून के मोताबिक़ जायज़ नहीं समझा जाता, और इसीलिए जो स्त्रियाँ ऐसा विवाह करेंगी उन्हें वे अधिकार नहीं मिल सकते, जो विवाहिता स्त्री को क़ानून के अनुसार मिला करते हैं।

ऐसे विवाह में मुख्य दो कठिनाइयाँ हैं। पहिली कठिनाई यह है कि पहला पति अगर चाहे तो अपनी त्यागी हुई स्त्री को भी अपने पास रहने के लिए मजबूर कर सकता है। अगर उसकी स्त्री भाग कर अपने नैहर अथवा किसी अन्य पुरुष के पास चली जाय तो वह अदालत में नालिश करके उसे फिर से पाने का दावा कर सकता है। इसलिए जो स्त्रियाँ इस प्रकार पुनर्विवाह करना चाहें, उन्हें सब से पहले इस बात के लिए तैयार होना पड़ेगा कि चाहे कुछ भी क्यों न हो जाय—चाहे उनके प्राण ही क्यों न चले जायँ—वे दूसरे पति को छोड़ कर पहले पति के पास किसी भी हालत में लौट कर नहीं जायँगी।

दूसरी कठिनाई यह है कि दूसरा पति उन्हें जब चाहे तभी छोड़ दे सकता है। वह न तो उन्हें ख़र्च देने के लिए मजबूर किया जा सकता है, न उनके बच्चों को जीविका देने के लिए। इसलिए यदि ऐसा विवाह करना हो तो सदा ऐसे ही पुरुष से करना चाहिए, जिस पर स्त्री का अटल विश्वास हो, जिसका चरित्र इतना उत्तम हो कि वह स्त्री को कभी धोखा न दे सके, उसे कभी त्याग न सके।

इन कठिनाइयों को देखते हुए यह आसानी से समझा जा सकता है कि ऐसे विवाह के टूट जाने की सम्भावना बहुत अधिक है। ज़रा सी अनबन होते ही स्त्री पुरुष एक-दूसरे को त्याग दे सकते हैं। उनके बीच ऐसा कोई सामाजिक अथवा क़ानूनी बन्धन नहीं है, जो मन न मिलने पर भी उन्हें एक साथ बाँध कर रख सके। ऐसी दशा में ऐसे विवाह को स्थायी बनाने वाली एक ही वस्तु है, और वह है स्त्री और पुरुष दोनों की सच्चरित्रता, दोनों का एक-दूसरे के प्रति अटूट प्रेम। उनके बीच यदि सच्चा प्रेम है, उनका स्वभाव यदि अत्यधिक चञ्चल नहीं है, तो उनका वैवाहिक जीवन भी उतना ही सुखमय और पवित्र हो सकता है, जितना संसार के किसी भी दम्पति का। परन्तु यदि थोड़ी देर के लिए यह मान भी लिया जाय कि ऐसे विवाह दो-चार साल या दो-चार महीनों के बाद टूट ही जाएँगे तो भी इतना तो निस्सङ्कोच कहा जा सकता है कि व्यभिचार की अपेक्षा यह विवाह कहीं उत्तम, कहीं श्रेष्ठ और कल्याणदायक है। इस बात को कौन अस्वीकार कर सकता है कि छिप कर पाप करते रहने के मुक़ाबले में खुल कर विवाह कर लेना—चाहे वह कुछ समय बाद भङ्ग ही क्यों न हो जाय—कहीं अधिक पवित्र और श्रेयस्कर है?

ऐसे मामलों में हमें अपने नवयुवकों से भी एक विशेष प्रार्थना करनी है, वह यह कि यदि उनमें स्वल्प-मात्र भी पुरुषोचित साहस, थोड़ा सा भी आत्म-सम्मान और लेश-मात्र भी सत्यनिष्ठा बाक़ी रह गई हो तो उन्हें ऐसी देवियों को अपनाने में सङ्कोच नहीं करना चाहिए। जिस स्त्री ने इतनी कठिन परिस्थितियों में भी अपने सम्मान की रक्षा की है, वह निस्सन्देह देवी है, सती है, पुरुषों द्वारा पूजी जाने योग्य है। यह भारत का घोर दुर्भाग्य है कि हमारे देश में ऐसी देवियाँ अपमानित और लाञ्छित की जाती हैं। यह देवी जिसकी सहधर्मिणी होना स्वीकार करें, हम उस पुरुष को भाग्यशाली समझते हैं। क्या हम आशा करें कि भारतीय नवयुवक ऐसी देवियों के सम्मान की रक्षा के लिए कुछ कष्ट सहने, कुछ स्वार्थ-त्याग करने, और पाखण्डी तथा अविवेकी समाज की कतिपय घृणित परम्पराओं की उपेक्षा करने का साहस दिखाएँगे?

—सम्पादक 'चाँद']

* * *

महन्थ का विवाह

सारन ज़िला (बिहार) से एक सज्जन लिखते हैं :—

महाशय,

मेरे यहाँ के शीतलपुर मठ के उदासीन महात्मा

धवदास जी ने अपनी ही जाति की कन्या से अपना विवाह इसलिए कर लिया है कि भविष्य में ब्रह्मचर्य्य की रक्षा उनसे सम्भवतः नहीं हो सके। महन्थ जी एक विद्वान तथा २४ वर्ष के होनहार नवयुवक हैं। उनके विवाह का कुछ लोग समर्थन एवं कुछ लोग निन्दा कर रहे हैं। ऐसी दशा में आपकी सम्मति आवश्यकीय प्रतीत होती है। कृपया यह लिखें कि आपकी सम्मति में उनका यह कार्य कैसा हुआ है।

[हमारी सम्मति में महन्थ धवदास जी का यह कार्य सर्वथा प्रशंसनीय और धर्म-सङ्गत है। समाज के मतामत की परवा न करके अपनी अन्तरात्मा की आज्ञा मानने में महन्थ जी ने सचमुच साधु-जनोचित सत्यनिष्ठा का ही परिचय दिया है। लौकिक मानापमान से विरक्त होना, वैराग्य का सब से पुष्ट लक्षण है, और हमें हर्ष है कि हमारे देश के कम से कम एक महन्थ में तो इतना आत्मबल है कि वह सांसारिक सम्मान के मुक़ाबले में आन्तरिक शान्ति को अधिक मूल्यवान समझता है। महन्थ धवदास जी निस्सन्देह एक वीर साधक हैं और हमें पूरी आशा है कि इस विवाह के बाद, विचारपूर्वक भोग करते हुए, वह अपनी वासनाओं का क्षय करके परम शान्ति लाभ करने की चेष्टा करेंगे।

यदि अन्य महन्थों में भी इतना आत्मबल और ऐसी ही सत्यनिष्ठा होती तो आज हमारे मठ और मन्दिर दुराचार के अड्डे क्यों होते? हमारे अधिकांश मठों और मन्दिरों में आज ठाकुर जी को ठुकरा कर वारुणी और वाराङ्गना की जो उपासना हो रही है, वह क्यों होती? जिन लोगों के मन में वैराग्य का भाव पुष्ट नहीं हुआ है, उन्हें भेख दे देने से यही दुष्परिणाम निकलता है। आजकल के प्रायः सभी साधुओं ने मन रँगाने के बदले केवल वस्त्र रँगा डाला है, और इसीका यह परिणाम हो रहा है कि इन साधुओं में न तो तपस्या और त्याग है, और न उनसे देश का कोई लाभ हो रहा है। आजकल बहुत से लोग इन साधुओं को इसलिए कोसा करते हैं कि वे देश की सेवा नहीं करते। परन्तु वास्तविक बात तो यह है कि वे देश की सेवा कर ही नहीं सकते। इसके लिए वे सर्वथा अयोग्य हैं। उन्हें न तो कोई शिक्षा मिली है और न उनके चरित्र में इतना बल है कि वे किसी को सुधार सकें। ऐसी दशा में यदि वे चाहें भी तो देश की क्या सेवा कर सकते हैं? अतः देश और साधु-समाज दोनों का हित इसी बात में है कि जिन साधुओं के मन में प्रवृत्ति का भाव प्रबल हो, उन्हें इस बात के लिए उत्साहित किया जाय कि वे छल-कपट छोड़ कर विवाह कर लें, और यथेष्ट भोग करते हुए अपनी वैराग्य-बुद्धि को पुष्ट करें। भोग से ही त्याग होता है। जब भोग से तृप्ति हो जाय तभी उनके लिए गैरिक वस्त्र और जटाजूट धारण करने का समय आएगा, और तभी उनसे कुछ देश-सेवा भी हो सकेगी, अन्यथा सच्चे वैराग्य के अभाव में केवल भस्म रमा लेने से तो समाज में ढोंग, कपट और दुराचार की ही वृद्धि हो रही है। हम आशा करते हैं कि और भी बहुत से साधु और महन्थ धवदास जी के इस प्रशंसनीय साहस का अनुकरण करेंगे।

जो लोग धवदास जी के विवाह की निन्दा कर रहे हैं, उन्हें क्या यह नहीं मालूम कि न जाने कितने महन्थों ने केवल झूठे लोक-लाज के फेर में पड़ कर विवाह नहीं किया है, पर वे आए दिन स्त्रियों को उड़ाया करते हैं, वेश्या-गमन करते हैं, और न जाने और कौन-कौन से नारकीय दुष्कर्म करते रहते हैं? क्या विवाह कर लेना इन वीभत्स पापों और दुराचारों से भी अधिक हानिकारक है? इतनी सीधी सी भी बात जिनकी समझ में नहीं आती, उन लोगों के साथ तर्क करना व्यर्थ है।

—सम्पादक 'चाँद']

* * *

पति का कर्त्तव्य

१

एक बहिन अपनी कहानी इस प्रकार लिखती है:—

श्रीमान सम्पादक जी,

नमस्ते!

आजकल मैं बड़े दुख में हूँ और इसीलिए आपको यह पत्र लिख रही हूँ। मैं एक बड़े ऊँचे

ब्राह्मण कुल की लड़की हूँ। मेरी उम्र इस वक्त १८ वर्ष की है। मेरा गौना हुए अभी एक ही वर्ष हुआ है। लेकिन मेरे पति मुझसे बोलते तक नहीं। वे कॉलेज में पढ़ते हैं। लेकिन घर नज़दीक होते हुए भी कभी घर नहीं आते हैं। तीन महीने की छुट्टी में भी घर पर नहीं आते। और अगर आते भी हैं तो दो-तीन रोज़ रह कर बिना मुझसे मिले ही चले जाते हैं। इसका कारण यही है कि जब मैं अपने मायके में थी तो मेरा एक युवक से, जोकि रिश्ते में मेरा भतीजा लगता था, बुरा सम्बन्ध हो गया और इसीसे मुझे गर्भ भी रह गया था। बाद में जब मुझे चेत हुआ ता मैं बहुत पछताई और अब भी मुझे कभी-कभी बड़ी शर्म आती है। अपने पति से मैंने बहुत माफ़ी माँगी, हाथ जोड़े, लेकिन उन्होंने मेरे कहने पर बिल्कुल ध्यान नहीं दिया। मैं इतने दिन तक इन्तज़ार करते ऊब गई हूँ और मुझे डर है कि मैं फिर न कहीं पाप कमा बैठूँ। आप मुझे सलाह दीजिए कि मुझे क्या करना चाहिए।

[जिस देवी ने हमारे समान एक अपरिचित व्यक्ति को इतनी स्पष्टता और सचाई के साथ पत्र लिखा है, उसने अपने पति से कितनी वेदना, दुःख और विनय के साथ क्षमा माँगी होगा, उसकी कितनी मिन्नत-ख़ुशामद की होगी, यह कोई भी सहृदय व्यक्ति अनुमान लगा सकता है। अपनी पत्नी के रहस्य को जान कर उस युवक के दिल पर कैसा गहरा आघात लगा होगा, इसे भी हम समझ सकते हैं, परन्तु इस अपराध के लिए उसने अपनी पत्नी को जो दण्ड दिया है, वह बहुत अधिक है। हमें अपने नवयुवकों में समझदारी के बदले भावुकता की प्रबलता देख कर दुःख होता है। इस मामले में इस विद्यार्थी ने अत्यधिक भावुकता से काम लिया है। भूल सब से हो सकती है, इस विद्यार्थी से भी हो सकती है, और कौन जानता है कि इसने भी इस प्रकार की कोई भूल की है या नहीं। यदि ऐसी भूलों के लिए पति-पत्नी एक-दूसरे को सदा के लिए छोड़ दिया करें तो हमें निश्चय है कि संसार के ९९ फ़ी सदी घर आज ही उजड़ जायँ। यह युवक अपने मित्रों से पूछ देखे कि उनमें से कितने आदमियों ने अपने जीवन में एक बार भी व्यभिचार नहीं किया। वह स्वयं अपने हृदय से पूछे कि यदि कोई सुन्दरी नवयुवती एकान्त में उसके समीप आकर उससे प्रेम की बातें करने लगे तो वह क्या करेगा। यदि ऐसी दशा में उसके संयम का बाँध टूट जाय तो क्या इसका यह अर्थ है कि वह एकदम दुराचारी है और उसकी पत्नी को उसे त्याग देना चाहिए? कदापि नहीं। भूल सब से हो सकती है, और भूल के लिए मनुष्य को क्षमा करना चाहिए। यही नियम उसकी पत्नी के लिए भी लागू होता है। प्रतिकूल परिस्थिति में उससे भूल हो गई है। इसके लिए वह पश्चात्ताप करती है, माफ़ी माँगती है। ऐसी अवस्था में कौन सा ऐसा कारण है, जिसके लिए उसे माफ़ी नहीं मिलनी चाहिए। यदि वह मना करने पर भी न माने, और बार-बार भूल करती जाय, तो बेशक उसे त्याग दीजिए, परन्तु केवल एक बार किसी का पैर फ़िसल जाने से उसे आजन्म दोषी समझ लेना तो अन्याय और अत्याचार दोनों की पराकाष्ठा है।

क्या यह युवक नहीं जानता कि ऐसी भूलें अनेक लड़कियों से हो जाया करती हैं? कौन ऐसा गाँव, मुहल्ला या शहर है, जहाँ कुछ लड़कियों के मायके में गर्भ नहीं रह गया हो, और जहाँ कुछ लड़कियाँ दुराचारी पुरुषों के चङ्गुल में फँस कर भ्रष्ट न होगई हों? परन्तु उनमें से कितनी त्याग दी गई हैं? आख़िर ऐसी लड़कियाँ भी संसार में ही रहती हैं, उन सबका विवाह होता है, उनमें से अनेक का वैवाहिक जीवन सुखी और पवित्र भी होता है। हमें बड़े-बड़े घरों के क़िस्से मालूम हैं, लड़की किसी नीच जाति के पुरुष के साथ या नौकर के साथ भाग गई। परन्तु घर वाले समझदार थे, उन्होंने लड़की को ढूँढ़ मँगाया और योग्य वर के साथ उसकी शादी कर दी। पीछे वही लड़की एक आदर्श गृहिणी सिद्ध हुई। ऐसे मौक़े पर यदि घर वालों ने नासमझी से काम लिया होता और लड़की को त्याग दिया होता, जैसा कि बहुत से मूर्ख लोग कर बैठते हैं, तो कौन कह सकता है कि उस लड़की की क्या हालत हुई होती? क्या वही लड़की, जो आज आदर्श गृहिणी का जीवन बिता रही है, किसी अड्डे पर बैठ कर हज़ारों पुरुषों के सर्वनाश का कारण नहीं हुई होती? संसार में इस प्रकार के

अनेक उदाहरण मिल सकते हैं, जब ज़रा सी समझदारी, थोड़ी सी सहानुभूति और स्वल्प-मात्र भी उदारता दिखाने से कितनी पतित स्त्रियाँ सुधर कर स्त्री-रत्न बन गईं, फिर एक बार ज़रा सी भूल कर देने वाली गृह-ललना की तो बात ही क्या ?

और केवल संसार ही में क्यों, शास्त्रों में भी तो ऐसा ही विधान है। मनु ने बारह प्रकार के पुत्र माने हैं, जिनमें से तीन प्रकार के विषय में कहा है :—

उत्पद्यते गृहे यस्य न च ज्ञायते कस्य सः ।
स गृहे गूढ़ उत्पन्नस्य स्याद्यस्य तल्पजः ॥

—मनुस्मृति ९-१७०

जिसके घर में लड़के का जन्म हो, परन्तु उसकी पैदाइश किससे हुई यह किसी को मालूम न हो, वह 'गूढ़ोत्पन्न' पुत्र होगा उसका जिसकी स्त्री में वह पैदा हुआ हो।

और सुनिए :—

पितृवेश्मनि कन्या तु यं पुत्रं जनयेद्रहः ।
तं कानीनं वदेन्नाम्ना वोढुः कन्यासमुद्भवम् ॥

—मनुस्मृति ९-१७२

बाप के घर में कुमारी कन्या छिप कर जिस पुत्र को जनती है, वह 'कानीन' पुत्र होता है उसका जो उस कन्या से ब्याह करता है।

और भी देखिए :—

या गर्भिणी संस्क्रियते ज्ञाताज्ञातापि वा सती ।
वोढुः स गर्भो भवति सहोढ इति उच्यते ॥

—मनुस्मृति ९-१७३

गर्भवती कन्या के गर्भ की बात जान कर या न जान कर जो उसके साथ ब्याह करता है, उसका वह 'सहोढ' पुत्र कहलाता है जो उस गर्भ से उत्पन्न होता है।

यह तो उदारता है हिन्दू-शास्त्रों की, और उन्हीं शास्त्रों के अनुयायी होते हुए भी हम इतने अनुदार हैं ! इस पतन की भी कोई सीमा है !!

इस नवयुवक में यदि समझदारी का थोड़ा सा अंश भी हो तो इसे अपनी स्त्री को अपनाना चाहिए। यह स्त्री एक देवी है। इनमें कितनी सच्चाई, कितना आत्म-बल है ! इन्होंने अपने दोष को कितनी वीरता से स्वीकार किया है। इतनी सचाई और इतनी वीरता कितनी स्त्रियों में मिलती है ? अभागा है वह युवक जो झूठे वहम और भावुकता में पड़ कर ऐसी महिला-रत्न का सम्मान करने से विमुख हो रहा है। हम आशा करते हैं कि यह विद्यार्थी इस मामले में भावुकता छोड़ कर समझदारी से काम लेगा और अपनी स्त्री को अपनाकर अपने कर्त्तव्य का पालन करेगा। परन्तु यदि वह मूर्खतावश अपने कर्त्तव्य को समझने में असफल रहे तो इस देवी को हम वही राय देंगे जो इस अङ्क के पहले पत्र के उत्तर में हम लिख चुके हैं। ऐसी सताई हुई देवियों की सेवा के लिए ही हमारा अस्तित्व है। इनके सम्मान की रक्षा के लिए हमारा सर्वस्व समर्पित है। यदि ऐसी देवियाँ सोच-समझ कर अपने कर्त्तव्य का पालन करें तो उनकी सहायता के लिए हम अपनी सारी शक्ति लगा देंगे।

परन्तु अन्त में इस देवी से भी हमें एक बात कहनी है। अपने पत्र के अन्त में आप लिखती हैं—"मैं इतने दिन तक इन्तज़ार करते-करते ऊब गई हूँ और मुझे डर है कि मैं फिर न कहीं पाप कमा बैठूँ।" यह वाक्य पढ़ कर हमें जो मार्मिक वेदना हुई है उसे हम शब्दों द्वारा प्रगट नहीं कर सकते। यह धमकी आप किसे दे रही हैं ? यदि आप पाप कमा बैठेंगी तो इससे हानि किसकी होगी ? हमारी ? या आपके घर वालों की ? या किसी और की ? किसी की नहीं। हानि होगी केवल आपकी। जिससे आप पाप कराएँगी वह तो मौक़ा पड़ते ही आपको छोड़ कर अलग हो जायगा, मारी-मारी फिरेंगी केवल आप। पाप कमा कर दुनिया भर की ख़ाक छानने के बाद आपको कहाँ जगह मिलेगी, इसका अनुभव आपको तो नहीं है, परन्तु उस समय आपकी जो दुर्दशा होगी, उसे याद करके हमारे रोंगटे खड़े हो जाते हैं ! इसलिए कृपा करके पाप न कमाइए, बल्कि जो कुछ करना हो उसे सोच-समझ कर खुल्लमखुल्ला कीजिए, जैसा कि इस अङ्क के पहले पत्र के उत्तर में हम लिख चुके हैं। यदि आप ऐसा करना चाहें तो हम अपनी पूरी शक्ति के साथ आपकी सहायता करने के लिए प्रस्तुत हैं।

—सम्पादक 'चाँद']

* * *

२

एक नवयुवक के पत्र का सारांश इस प्रकार है :—

यह नवयुवक विवाह नहीं करना चाहते थे, परन्तु यह संयम के साथ भी नहीं रह सके। एक मुसलमान स्त्री के साथ इनका सम्बन्ध हो गया और उसके साथ इन्होंने अनेक बार प्रसङ्ग किया। पीछे जब इनके घर वालों को इस बात का पता चला, और इनके पास उस मुसलमान स्त्री के भेजे हुए पत्र पाए गए तो घर वालों ने जल्दी से इनकी शादी कर दी। अब इन्हें मालूम हुआ है कि इनकी पत्नी ने, विवाह और गौना होने के पहले, अपने मायके में कई बार पुरुष-सहवास किया था। इससे इन्हें बहुत दुःख हुआ है। इनकी भूख-प्यास तक मारी गई है। इनके कथनानुसार, जब यह अपनी पत्नी को देखते हैं तो इन्हें ऐसा मालूम होता है मानो कोई वेश्या इनकी बग़ल में खड़ी है। यह पूछते हैं कि ऐसी अवस्था में यह क्या करें ? पत्नी के प्रति इनका क्या कर्तव्य है ?

[इन्होंने स्वयं एक मुसलमान स्त्री के साथ अनेक बार सहवास किया है, इस बात को यह सर्वथा भूल ही जाते हैं और केवल अपनी पत्नी को दण्ड देने की चिन्ता में पड़े हुए हैं ! एक शिक्षित व्यक्ति को इतना युक्तिहीन नहीं होना चाहिए। जब स्वयं उनका चरित्र शुद्ध नहीं था तो उन्होंने एक सदाचारिणी स्त्री से विवाह करने की इच्छा क्यों की ? क्या स्त्रियाँ सदाचारी पति नहीं चाहतीं ? क्या पुरुषों को ही यह इच्छा होती है कि उनकी स्त्री सीता और सावित्री के समान सती और साध्वी हो ? क्या स्त्रियाँ यह नहीं चाहतीं कि उन्हें भी राम और सत्यवान के समान वीर और सदाचारी पति मिले ? जो लोग अपनी पत्नी से अखण्ड सतीत्व की आशा रखते हैं उन्हें स्वयं भी तो अखण्ड और अविप्लुत ब्रह्मचर्य का पालन करना चाहिए। परन्तु दुःख है कि भारतवर्ष के पुरुष इतने मूढ़ और मोहान्ध हो गए हैं कि वे स्वयं पाप में आकण्ठ लिप्त रहने पर भी अपनी स्त्री से यह आशा करते हैं कि वह किसी अन्य पुरुष की ओर आँख उठा कर भी न देखे ! यह असम्भव है।

हर एक पुरुष को अपने समान स्त्री से ही विवाह करना चाहिए, ब्रह्मचारी को ब्रह्मचारिणी से, युवक को युवती से, कुमार को कुमारी से, विधुर को विधवा से, कुरूप को कुरूपा से, दुराचारी को दुराचारिणी से। हमें हर्ष है कि इस पत्र को लिखने वाले सज्जन को ठीक उन्हीं के अनुरूप कन्या मिली है। उन्होंने विवाह के पहले कई बार स्त्री-सहवास किया था, उनकी पत्नी ने विवाह के पहले कई बार पुरुष-सहवास किया था। इसमें तो दोनों में से किसी के भी साथ अन्याय नहीं हुआ। अब इन्हें एक-दूसरे को कुमार्ग पर जाने से बचाना चाहिए, इन्हें ऐसा प्रयत्न करना चाहिए कि ये आपस में ही सन्तुष्ट रहें, दुराचार का मार्ग न पकड़ें। परन्तु अफ़सोस है कि यह सज्जन अज्ञान और भावुकता के वशीभूत होकर अपनी स्त्री को सता रहे हैं और स्वयं भी चिन्ता के मारे मरे जा रहे हैं। यह चिन्ता व्यर्थ है। इससे किसी का लाभ नहीं, पर हानि दोनों की है। सब चिन्ता और ग्लानि त्याग कर इन्हें सुख से अपनी स्त्री के साथ रहना चाहिए और स्त्री को भी प्रसन्न रखना चाहिए।

यह सज्जन लिखते हैं कि ऐसी स्त्री से इनका ब्याह करा के इनके घर वालों ने भूल की है। परन्तु हम तो इनके घर वालों की समझदारी पर उन्हें बधाई देते हैं। उन्होंने जो कुछ किया है, बिल्कुल ठीक किया है। संसार में जितनी भी घटनाएँ घटती हैं, सब मनुष्य के मङ्गल के लिए ही घटती हैं। परन्तु मनुष्य इतना मूर्ख है कि उन्हीं में से वह अपने लिए घोर अमङ्गल की भी सृष्टि कर लेता है। इन सज्जन के घर वालों ने इनकी शादी करके बहुत ही उचित कार्य किया है। अब इससे लाभ उठाना अथवा इससे असह्य कष्ट और चिन्ता की सृष्टि करके पागल हो जाना—दोनों इनके हाथ की बात है। मनुष्य अपने जीवन-नौका की पतवार को जिस दिशा में चाहे मोड़ सकता है। यह भी चाहें तो इस विवाह से लाभ उठा सकते हैं, चाहें तो इससे घोर विभीषिका भी पैदा कर ले सकते हैं। इन दोनों में से कौन सी वस्तु इन्हें अभीष्ट है—यह सुख के साथ जीना चाहते हैं या झूठी चिन्ता और काल्पनिक ग्लानि के मारे मर जाना चाहते हैं—इसका निर्णय यह स्वयं कर लें।

—सम्पादक 'चाँद']

* * *

वर की आवश्यकता

चाईबासा (बिहार) से एक देवी जी लिखती हैं :—

मान्यवर सहगल जी,

सविनय प्रणाम !

पिछले साल के वैशाख महीने की घटना है, हमारी बिरादरी के एक परिवार की एक १६ वर्षीया कन्या, जिसकी शादी शीघ्र होने वाली थी, नदी से जल भरने के लिए दो स्त्रियों के साथ गई। उस समय प्रायः नदी का किनारा निर्जन हो आया था। वहाँ झाड़ियों की थोड़ी सी झुरमुट है। उसी गाँव के ज़मींदार का पुत्र कुछ दुष्टों के साथ वहाँ छिपा हुआ था। वह उस लड़की को ज़बरदस्ती उठा कर ले भागा। बाक़ी दो स्त्रियाँ उसकी रक्षा तो कहाँ तक करतीं, वे स्वयं बच कर भाग आईं, यही ग़नीमत हुई। उस समय प्रायः सन्ध्या हो चली थी, तो भी बत्तियों के प्रकाश में रातोंरात जङ्गल छान डाला गया, पर कहीं पता न चला। प्रातःकाल ख़बर लगी कि वहाँ से क़रीब ६ मील की दूरी पर घोर जङ्गल के भीतर लड़की बन्दी है। तीसरे दिन पुलिस की सहायता से वह मुक्त की गई। इसके बाद बहुत दिनों तक मुक़दमेबाज़ी होती रही, पर आजकल ग़रीबों के लिए न्याय पाना कितना मुश्किल है, यह तो आप जानते ही हैं। बेचारे लड़की के पिता मुक़दमे में तीन-चार सौ रुपए ख़र्च कर देने के पश्चात भी मुक़दमे के डिसमिस हो जाने से बिलकुल निराश हो गए हैं। इधर बिरादरी के ताने अलग जान खाए डालते हैं। वह इस वर्ष के अन्दर ही लड़की का विवाह कर डालना चाहते हैं। परन्तु वर्त्तमान स्थिति में उनसे कोई लड़की लेना नहीं चाहता। अतएव वह सपरिवार ईसाई-धर्म ग्रहण करना चाहते हैं। अब भी वह कहते हैं कि यदि कोई समाज-हितैषी युवक हिन्दू-धर्म के नाते उनको इस भयङ्कर पतन से बचा ले तो वह जन्म भर उसके ऋणी रहेंगे। लड़की देखने में अच्छी है, पढ़ना-लिखना थोड़ा जानती है, गृह-कार्यों में निपुण है, शरीर स्वस्थ और सबल है, अवस्था क़रीब १७ साल के है। गाँव की बालिका है, बिल्कुल सरल स्वभाव की है।

आप कृपा करके कुछ चेष्टा कीजिए, वर चाहे जिस सम्प्रदाय का हो, पर स्वस्थ और सबल हो, कम से कम २२ और अधिक से अधिक २५ वर्ष की आयु वाला हो। मैं आशा करती हूँ, आप इस कार्य में सफल होकर एक गृहस्थ की डूबती हुई नैया को पार लगावेंगे।

आपकी कृपाभिलाषिनी,

श्री० सु० दे० सामन्त

[क्या हम आशा करें कि कोई शिक्षित और देश-प्रेमी युवक इस बालिका को अपनाकर यौवन-सुलभ साहस और उदारता का परिचय देगा? पत्र-व्यवहार नीचे के पते से करना चाहिए :—

C/o श्रीयुत डी० एन० सामन्त, एम० ए०,
बी० एल०, पो० ऑ० चाईबासा
जि० सिंहभूम (बिहार)

—सम्पादक 'चाँद']

न घर का न घाट का

(प्रहसन)

[श्रीयुत जी० पी० श्रीवास्तव, बी० ए०, एल-एल० बी०]

पहला दृश्य

[स्थान—सड़क]

(समाजराय का नाक पर पट्टी बाँधे बड़बड़ाते हुए आना)

समाज—धत् तेरे सम्पादकों और ग्रन्थकारों की दुम में धागा। कम्बख़्तों ने आजकल अश्लीलता के नाबदान के नाबदान बहा दिए हैं। क्या बताऊँ, कोई भी पुस्तक, पत्र या पत्रिका पढ़ने योग्य नहीं। इसलिए मैं कभी इनकी तरफ़ आँख उठा कर नहीं देखता हूँ। और आज लाइब्रेरी जाना भी पड़ा तो नाक में पट्टी बाँध कर गया। मगर 'चाँद' का 'शिशु-अङ्क' उठाते ही न जाने गन्दगी किस तरफ़ से घुस गई कि मेरा दिमाग़ एकदम सड़ गया। मारे बदबू के मुझसे वहाँ ठहरा न गया। साढ़े तीन सौ छींकें छींक चुका हूँ। फिर भी खोपड़ी साफ़ नहीं हुई, बल्कि अब तो जी और भी मचला रहा है। यह लीजिए क़ै भी आने लगी। औ! औ!!

(जनताराम और पाठकमल का प्रवेश)

जनता—पाठक—अरे! यह क्या बाबू समाजराय? ख़ैरियत तो है?

समाज—वाह! जनाब जनताराम और पाठकमल! अब चले हैं ख़ैरियत पूछने? देखते नहीं कि हमारी तबीयत बिगड़ रही है।

पाठक—अरे! आपकी तबीयत बिगड़ रही है?

जनता—बेशक यह ताज्जुब की बात है!

समाज—क्यों?

पाठक—शादी में आप इतनी गालियाँ खाते हैं तब तो आपकी तबीयत नहीं बिगड़ती।

जनता—बेचुटकी वालों ने आपकी झोंटइया तक उखाड़ ली तब भी आप कुछ न मनके।

पाठक—गुण्डे रोज़ ही आपके घर से बहू-बेटियाँ निकाल ले जाते हैं और आपके मुँह से एक भी शब्द नहीं निकलता।

जनता—शब्द निकले कैसे? आपके पास तबीयत बिगाड़ने वाला मसाला ही नहीं है।

पाठक—हाँ-हाँ, तभी तो आप हर गली-कूचों में नपुंसकता की दवाइयाँ ढूँढ़ते फिरते हैं। और बेचारे अख़बार वाले भी 'वीर्यवर्द्धक' 'काम भड़काने वाली गोलियों' के मोटे-मोटे अक्षरों में लम्बे-चौड़े विज्ञापन छापा करते हैं कि किसी तरह आपकी तबीयत में कुछ रंगरूगी तो पैदा हो, मगर आपके कान पर जूँ तक नहीं रेंगती।

जनता—अगर आप इस योग्य होते ही तो आपकी स्त्री भारती भला एक पुत्र का मुख देखने के लिए रात-दिन तरसती रहती? साधू-फ़क़ीरों की ख़ुशामदें करती फिरती?

समाज—अजी यह बात नहीं है। यहाँ मारे दुर्गन्ध के हाल बेहाल है।

पाठक—यह कहिए। मगर आपको दुर्गन्ध का पता कैसे चला? नाक तो अपनी आप पहले ही कटा चुके हैं। देखिए किसी देश में भला आपकी आदमियों में गिनती है?

समाज—इससे क्या हुआ, अपने मुल्क में तो हम मियाँ मिट्ठू हैं।

जनता—मगर नकटा होकर रहने से तो चुल्लू भर पानी में डूब मरना अच्छा है।

समाज—नकटा कैसे?

जनता—नाक पर पट्टी फिर क्यों बाँध रक्खी है?

समाज—इसकी वजह यह है कि आजकल साहित्य और पत्र-पत्रिकाओं में गन्दगी की ऐसी भरमार है कि बिना नाक दाबे उसका पढ़ना कठिन है।

पाठक—फिर यों तो गन्दगी आपके पेट ही में भरी पड़ी है, जिसके कारण रोज़ ही सुबह-शाम आपको टट्टी-

घर का द्वार खटखटाना पड़ता है। भला वहाँ भी आपकी तबीयत बिगड़ती है और आप नाक बन्द करके मुँह से साँस लेते हैं ?

जनता—और 'मिरोड़', 'ऐंठन', 'सुद्दे', 'पेचिश', 'क़ब्ज़', 'दस्त', 'बवासीर' इत्यादि के वर्णन तो चार भलेमानुसों के बीच में आप ख़ूब खुल कर करते हैं। क्या यह गन्दे विषय नहीं हैं ?

समाज—हाँ हैं तो, मगर हम इन बातों को गन्दा ख़्याल नहीं करते।

पाठक—क्यों ?

समाज—यह हमारी समझ की बलिहारी है।

जनता—तो यह कहिए कि गन्दगी अपने विषय से सरोकार नहीं रखती, बल्कि आपकी समझ में विराजती है।

पाठक—अगर यह बात है तो अश्लील विषय पर लेख पढ़ते वक़्त आप अपनी अक़्ल पर पर्दा डाल दिया कीजिए। क्योंकि वही सारी आफ़तों की जड़ है। बस इसकी परछाईं न पड़े तो फिर कोई चीज़ पढ़ने में आपको कोई अड़चन न हो और आपकी नाक भी बची रहे।

समाज—वाह जनाब! आपने ख़ूब कहा। ऐसा होने लगे तो हमारा नाम समाजराय क्यों होता है ? हम भला कहीं अपनी नाक की परवाह करते हैं ? हम तो सिर्फ़ अपनी टेक रखना जानते हैं। और बाबू पाठकमल और बाबू जनताराम, आप लोग स्वयं किसी बात को अच्छा या बुरा कहने के लिए अधिकार नहीं रखते हैं। इसलिए आपकी भलाई इसी में है कि आप हर मामले में हमारी बात को ईश्वर-वाक्य की तरह सत्य मान लिया कीजिए।

जनता—हाँ साहब, आपका कहना अवश्य मानना चाहिए, आप बड़े प्रतापी महापुरुष हैं।

पाठक—बेशक! जैसे ब्राह्मणों में महाब्राह्मण।

जनता—अच्छा तो आप हम लोगों से क्या चाहते हैं ?

समाज—यही, कहिए कि 'चाँद' का 'शिशु-अङ्क' अश्लील है।

पाठक—जब आप उसे अश्लील कहते हैं तो ऐसा ही होगा।

समाज—होगा नहीं, बल्कि है।

जनता—अच्छा तो 'है' सही। मगर इतना तो बता दीजिए कि क्यों 'है' ? शायद कोई पूछ पड़े तो क्या जवाब देंगे ?

समाज—वाह! वाह! सारा रामायण पढ़ गए मगर यह पता न चला कि लङ्का कहाँ पर है। अजी साहब, उसमें रबड़ के कनटोप का वर्णन है, जिसे सुन कर स्त्रियाँ एकदम ख़राब हो जाएँगी।

जनता—हाँ तब तो 'चाँद' की ख़बर लेनी चाहिए।

समाज—और अच्छी तरह। चलिए हम लोग उसे अभी राहु की तरह ग्रस लें। पहले हमारी तरह नाक में पट्टी बाँध लीजिए और रास्ते भर ख़ूब क़ै करते चलिए, ताकि उसे अपनी अश्लीलता का अनर्थ तो दिखाई पड़े।

पाठक—मगर मुझको तो माफ़ कीजिए। मुझे ताज़ी हवा की बड़ी ज़रूरत है। नाक दबाने से मेरा दम घुटने लगेगा। इसीलिए न मैं इधर हूँ और न उधर हूँ। इस कान से सुनता हूँ और उस कान से सब बातें निकाल देता हूँ। और फिर मैं ज्यों का त्यों। अच्छा तो राम-राम! (जाता है)

जनता—ख़ैर कोई हर्ज नहीं, उन्हें जाने दीजिए। हम तो हैं।

समाज—अच्छा तो चटपट नाक बाँध लीजिए और उल्टी करते हुए चलिए।

(जनताराम रूमाल से अपनी नाक बाँध कर समाज के साथ औ! औ! करता हुआ जाता है)

* * *

दूसरा दृश्य

['चाँद' का दफ़्तर]

चाँद—(अकेला) इस सत्यानासी समाजराय ने हिन्दुओं के हिन्दुस्तान को सब तरह से चौपट कर देने में कोई कसर उठा नहीं रक्खी। देश की आबरू ली, दौलत फूँकी, व्यापार छीना, विद्या-हुनर और कला-कौशल सब ख़ाक में मिला दिए। इतने पर भी इसका मन नहीं भरा तो धर्म, मर्दानगी और स्त्री-अधिकार पर इसने उल्टी झाड़ू फेरी। आख़िर जब मुझसे इसके अत्याचार न देखे गए तो मैं इस देश के सबसे मुख्य

परन्तु सबसे दुर्बल और अत्यन्त ही पीड़ित अङ्ग अर्थात् अबलाओं की रक्षा के लिए उदय हुआ। मगर जब मेरी ज्योति फैली तो देखता क्या हूँ कि मर्द बेचारे कोल्हू के बैल हो रहे हैं। स्त्रियाँ कुएँ की मेंढकी बनी सड़ रही हैं। साहित्य लड़कों का खिलौना हो रहा है! धर्म का चौपटाध्याय आरम्भ है; और रस्म-रिवाज, देश की उन्नति तो अलग रही, उसकी स्थिति ही का ख़ून चूस रहे हैं। हम हर तरह से इन अत्याचारों को रोकने की कोशिश कर रहे हैं; मगर यह समाजराय हमारे पग-पग पर काँटे बो रहा है। धर्म का सुधार बताता हूँ तो यह मुझे बेधर्मी कहता है। रस्म-रिवाजों के बन्धन ढीले करता हूँ तो भ्रष्टाचारी कहलाता हूँ। साहित्य में मीठी बूँदों का छिड़काव करता हूँ तो मुझ पर अश्लीलता का कलङ्क लगाता है। स्त्रियों को प्रसव-रोगों से बचाता हूँ तो कुकर्मी कहा जाता हूँ। 'महिला-अङ्क' निकाल कर स्त्रियों के कर्तव्य बताए, 'विधवा-अङ्क' में विधवाओं का रोना सुनाया। इसी तरह 'शिशु-अङ्क' में प्रसव-सम्बन्धी बातें कहीं। मगर हमारे समाजराय ज़चेख़ाने में बेधड़क घुस आए। वह भी अकेले नहीं, बल्कि नासमझ बच्चों का झुण्ड लेकर और लगे ऊधम मचाने। अब क्या करूँ? पीठ ठोकने वाला कोई नहीं, मगर थूकने वाले हज़ारों! ख़ैर, इस कलङ्क को भी सर चढ़ाता हूँ। क्योंकि 'चाँद' बिना कलङ्क के कब रह सकता है?

(द्वारपाल का घबराए हुए आना)

द्वारपाल—सरकार, दुआरे पर बेदुम अउर बेसींग के दुई जनावर ठाढ़ हैं।

चाँद—जानवर?

द्वारपाल—हाँ, जनवरै हो ही हैं। देखे माँ तो आदमी अस हैं। मुल मूहें से अब-अब करत हैं और चिथड़ा खात हैं। थूथन माँ अब्बो चिथड़ा लाग है। हो लेयो। ई दूनो तो हियाँ घुस आएँ।

(समाजराय और जनताराम का अपनी-अपनी नाकों पर पट्टी बाँधे और औ-औ करते हुए आना)

द्वारपाल—धुत! धुत! निकर! हीयाँ नाहीं। देखत नाहीं कि फ़र्श बिछा है। सब खराब जाई।

चाँद—अल्ला, बाबू समाजराय और बाबू जनताराम आप हैं। आइए विराजिए।

द्वारपाल—नाहीं सरकार। इनका न परकाओ। कमरा गन्दा होइ जाई। बाहर अस छीछालेदर किहिन हैं कि का कही।

चाँद—अच्छा, द्वारपाल तुम बाहर जाओ।

द्वारपाल—जस मालिक की मर्जी। हम का करी!

(जाता है)

चाँद—अहोभाग्य! आपके दर्शन हुए। मगर आप लोगों की नाक ने ऐसा कौन सा अपराध किया है जो ऐसे दण्ड की भागी हुई?

समाज—आपका 'शिशु-अङ्क' औ-औ—

जनता—हाँ, ठीक है, औ-औ—

समाज—बहुत अश्लील है।

जनता—ज़रूर अश्लील है।

समाज—स्त्रियों के पढ़ने योग्य नहीं है।

जनता—नहीं है, हरगिज़ नहीं है!!

चाँद—बाबू समाजराय, यह रोग तो आपका बहुत पुराना हो गया। ख़ैर, फिर भी आइए हमारा आपका इस मामले में समझौता हो जाय।

समाज—अच्छा तो पञ्च हम होंगे।

चाँद—न हम और न आप, बल्कि कोई तीसरा आदमी हो!

समाज—मगर पाठकमल न होने पावें, उस पर अब मेरा भरोसा नहीं रहा।

जनता—घबराइए नहीं। हम पञ्च बनेंगे।

चाँद—कोई हर्ज नहीं। आप ही फ़ैसला कीजिए। मगर नाक पर से पट्टी खोल कर!

समाज—अच्छा खोल डालिए। मगर हाँ, औ-औ—

जनता—(पट्टी खोल कर) अब तो मेरी पट्टी खुल गई, आप ही अकेले औ-औ कीजिए।

चाँद—अच्छा आप अपनी शिकायतें कहिए।

समाज—आप सुधार का प्रचार करते हैं या देश में व्यभिचार फैलाने का उद्योग करते हैं?

चाँद—दुनिया में या कहीं भी भला ऐसी कोई चीज़ है जिसमें गुण के साथ दोष न हों? जहाँ स्वर्ग है वहीं नर्क भी, जहाँ दिन है वहाँ रात भी, इधर रोशनी है तो उधर साया। कहाँ तक देखिएगा। आग से सैकड़ों ही जल कर मर गए, लाखों ही घर भस्म हो गए, फिर भी आग को बुरा कह कर कोई त्याग नहीं

देता। बन्दूक़ से नित्य ही दुर्घटनाएँ होती हैं तो भी इसे उपद्रवी जान कर हमारा देश उसकी लालसा को अपने हृदय से नहीं निकालता। उसी तरह आप हमारे प्रचार के रुखड़े ही हिस्से पर नज़र न डालिए, बल्कि उसका दूसरा अङ्ग भी देखिए और हमारे भाव को देखिए।

जनता—भाव से क्या मतलब?

चाँद—इसको मास्टर की छड़ी से पूछिए या उस पिता से पूछिए जो अपने पुत्र को कनैठी दे रहा है। जिस तरह मास्टर और पिता की नीयत बालक को दुख पहुँचाने की नहीं होती, बल्कि उसका आगामी जीवन सुखमय बनाने की होती है, उसी तरह हमारे प्रचार का भाव सुधार की तरफ़ है। अगर इससे किसी पर बुरा प्रभाव पड़ भी सकता है तो उसी पर जिसकी पहिले ही से नीयत बुरी होगी। उसके कामों के हम ज़िम्मेदार नहीं हो सकते।

समाज—मगर प्रसव-सम्बन्धी बातें अथवा प्रेम का मीठा राग नौजवान लड़कियों के लिए हानिकारक है।

चाँद—मगर उसीके साथ इन बातों की अज्ञानता विवाहिता स्त्रियों के जीवन की जड़ को दुर्बल कर रही है। जो नासमझी की अवस्था में हैं, उनके लिए यह बेकार है और जो समझदार हैं उनके लिए इनका ज्ञान कभी न कभी अवश्य लाभकारी होगा।

समाज—जब होगा तब होगा, मगर पढ़ते समय तो चित्त चञ्चल कर देगा।

चाँद—जिन डालियों को समय ने मज़बूत कर दिया है, वह हवा के झोंके में लाख हिले-डोलें, मगर वह अपनी जड़ को छोड़ नहीं सकतीं। उसी तरह जो पुरुष अथवा स्त्री समझदारी की अवस्था पर पहुँच चुके हैं, वह किताबें पढ़ कर अच्छी बातें ग्रहण करने के बदले नासमझी से काम लें और भ्रष्ट होने लगें तो उनके मनुष्यत्व और स्त्रीत्व पर धिक्कार है!

समाज—बाबू जनताराम! याद रहे औ-औ—

जनता—बोलिए मत! यहाँ तो ईमान की हालत बड़ी गड़बड़ है।

समाज—ख़ैर! मगर यह गर्भ रोकने का आपने उपाय क्यों बताया? इसीके डर के मारे तो विधवाओं की आबरू बची हुई है। और अविवाहित नौजवान लड़कियाँ अनुचित लगाव से भागती हैं। अब आपके प्रचार से तो देश में दिन-दहाड़े कुकर्म फैलेगा।

चाँद—अब आए आप ठिकाने पर! हज़रत, बकरी की माँ कब तक ख़ैर मनाएगी? ऊपरी रोक-टोक, डर और धमकी से कहीं नेकचलनी बनी रहती है? असली नेकचलनी तो तभी स्थिर रह सकती है जब नीयत को भी साफ़ कीजिए। वरना यह हृदय का छिपा हुआ मैल बनावटी धोखे की टट्टी को मौक़ा पाते ही हटा देता है। तभी तो महाशय जी, आप अपनी स्त्री को एक मामूली प्रेम-पुस्तक भी पढ़ने के लिए देने से घबड़ाते हैं। आपका एतबार तो उस पर है नहीं, फिर भी उसके सतीत्व पर आप डींग मारते हैं? यदि आपको यह विश्वास होता कि हमारे यहाँ की स्त्रियों का सतीत्व केवल ऊपरी पर्दा, डर या पहरे पर निर्भर नहीं है, बल्कि उनकी भीतरी नीयत और उनके कर्त्तव्यों पर अटल है तो आज आप मुझसे ऐसा भोंड़ा सवाल न करते। आप स्त्रियों के आँख-कान पर पर्दा डाल कर जब तक उन्हें मूर्खा बनाए रक्खेंगे तब तक आपको ऐसे ही उनकी रखवारी करते दिन कटेगा।

जनता—तो क्या स्त्रियों को पर्दे में न रखना चाहिए?

चाँद—जब पुरुषों का एतबार स्त्रियों पर जम जायगा तो पर्दे का फिर सवाल ही नहीं होगा, फिर चाहे वह पर्दे में रहें तो वाह-वाह, न रहें तो वाह-वाह। तब लन्दन-दरबार-रहस्य पढ़ें तो क्या, कोकशास्त्र पढ़ें तो क्या, बाबू समाजराय को इतनी बेचैनी न होगी।

जनता—अच्छा वह एतबार करने योग्य कब होंगी?

चाँद—जब वह अपने कर्त्तव्यों को भली-भाँति समझने लगेंगी।

जनता—आख़िर कर्त्तव्यों को वे किस तरह समझ सकती हैं?

चाँद—ज्ञान द्वारा।

जनता—ज्ञान कैसे पैदा हो?

चाँद—हर बातों का पूरा ब्योरा बतलाने से, अच्छाई और बुराई दोनों साफ़-साफ़ दिखलाने से, जिस तरह मैं कर रहा हूँ।

समाज—बस-बस जनाब! ठहरिए। अब आप भी

आ गए मेरे पञ्जे में। अनुचित मेल ही में गर्भ रोके जाते हैं, उचित सम्बन्ध में नहीं।

चाँद—इस बात को माली से जाकर समझिए, जो आपके क़लमी दरख़्त लगाता है और उसके प्रथम बौर को तोड़ कर फेंक देता है। उस होशियार किसान से पूछिए जो खेत बोने के बाद उसके घनेपन को हलका करता है। उस आदमी से पूछिए जो लड़कपन ही में पिता बन जाता है और चार पैसे कमाने लायक़ होने के पहिले ही अपनी लड़की की शादी के लिए कर्मों पर हाथ धर के रोता है। उस माता से पूछिए जो जवानी के पहिले ही माता होकर अपनी जवानी में बुढ़ापा बुला लेती हैं। भला वह फिर कभी हृष्ट-पुष्ट सन्तान पैदा कर सकती हैं?

जनता—यह सब गड़बड़-सड़बड़ हमारी समझ में नहीं आता।

समाज—बहुत ठीक! यह सब गड़बड़-सड़बड़ है। औ-औ—

चाँद—अच्छा तो एक मेरी बात का भी उत्तर दीजिए।

समाज—कहिए।

चाँद—चाँद 'पुरुष-पत्र' है या 'स्त्री-पत्र'?

जनता—स्त्री-पत्र।

चाँद—अच्छा, स्त्रियों में इसका 'शिशु-अङ्क' किस तरह की पाठिकाओं को निमन्त्रण देता है?

जनता—बस बच्चे देने वालियों को।

चाँद—शिशु की उत्पत्ति कहाँ से होती है?

जनता—गर्भ से, यही तो इस वृत्त की जड़ है।

चाँद—वृत्त की भली-बुरी बातें जानने के लिए हम उसकी जड़ का ख़याल छोड़ सकते हैं कि नहीं?

जनता—नहीं।

चाँद—अच्छा गर्भ-सम्बन्धी बातें 'शिशु-अङ्क' में न होंगी तो क्या हिसाब, अलजब्रा, और रामायण में होंगी?

जनता—नहीं 'शिशु-अङ्क' में होंगी।

चाँद—अब बताइए गर्भ किसके पेट में रहता है?

जनता—स्त्रियों के।

चाँद—अच्छा तो गर्भ-सम्बन्धी बातें बच्चे देने वाली स्त्रियों से कहने में बुराई है?

जनता—बिल्कुल नहीं।

चाँद—तो अब आप ही देखिए कि यह हज़रत न तो स्त्री हैं और न बच्चे देते हैं और न गर्भ धारण करते हैं तो फिर इनको हमारे 'शिशु-अङ्क' को बुरा-भला कहने का क्या अधिकार है?

जनता—कुछ भी नहीं। यह बात मेरी समझ में आ गई।

समाज—अरे! यह क्या? जनताराम! तुम्हारी अक़्ल पर पत्थर पड़ गया!

जनता—घबड़ाइए मत। मैं आप ही की तरफ़ हूँ। मगर पहले गर्भ धारण करना सीख लीजिए और तब लहँगा-ओढ़नी पहन कर आइए।

चाँद—अच्छा आइए, चल कर आप लोग कुछ जलपान कर लीजिए।

समाज—जी नहीं, मैं जलपान करके भी यह फ़ैसला नहीं मानने का, मेरी बात पक्की। औ-औ—(जाता है)

चाँद—(जनता से) अच्छा तो आप ही मुझ पर कृपा कीजिए।

(दोनों का दूसरी तरफ़ प्रस्थान)

* * *

तीसरा दृश्य

[स्थान—सड़क]

(पण्डित अधिकारीनाथ म्यूनिसिपल-मेम्बर और सफ़ाईराय सफ़ाई के दारोग़ा का आना)

अधिकारी—क्यों बाबू सफ़ाईराय, ऐसी ही आप सफ़ाई की दारोग़ागिरी करते हैं? देखते हैं आप सड़क पर कितनी गन्दगी है। अगर हम म्यूनिसिपैलिटी के मेम्बरान घर से न निकला करें तो शहर एक ही दिन में बम्पुलुस हो जाए।

सफ़ाई—हज़ूर, भङ्गियों के मारे नाक में दम है। वह बड़े सुस्त हो गए हैं। हमारी बात सुनते नहीं?

अधिकारी—बुलाओ भङ्गियों के चौधरी को।

सफ़ाई—अरदली! ओ अरदली! अबे तू पीछे क्यों अटक गया?

(अरदली का आना)

अरदली—हज़ूर, हाकिम लोग से तनी दूरे रहे के चाही।

सफ़ाई—जाओ भगुआ मेहतर को बुला लाओ।

(अरदली का प्रस्थान)

अधिकारी—देखिए, काम-काज में कभी मुरौवत न किया कीजिए। इन भङ्गियों पर पाँच-पाँच रुपए जुरमाना ठोंक दीजिए। अभी सबकी अक़ल ठिकाने हो जाए।

(अरदली का आना)

अरदली—हजूर भगुआ पूजा करत है।

अधिकारी—अयँ! भङ्गी होकर पूजा करता है। मारा नहीं?

अरदली—कसस मारित? हम छुई जाइत की नाहीं!

सफ़ाई—मैं हुज़ूर चल कर अभी उसे ढेले से मारता हूँ।

अरदली—और मैं तो ईंट से उसका सर ही तोड़ दूँगा। और पूजा करने की सब शेख़ी भुला दूँगा। देखो तो भङ्गियों को, कम्बख़्त कितने सर चढ़ गए हैं।

(सबका प्रस्थान)

* * *

चौथा दृश्य

[स्थान—समाजराय का घर]

(समाजराय की स्त्री भारती और उसकी सहेली शिक्षा)

भारती—बहिन शिक्षा, तुमने मुझे 'चाँद' का यह 'शिशु-अङ्क' देकर मुझ पर बड़ी कृपा की। क्या कहूँ बहिन, एक तो हम लोग अबला थीं ही, उस पर हमारे हत्यारे और स्वार्थी मर्दों ने हमारे आँख-कान पर पर्दा डाल कर एकदम निकम्मी बना दिया। न तो वह स्वयं हमें कोई बात सिखावें और न हमें कुछ सीखने ही देते हैं। अगर मैं सन्तानोत्पत्ति के सम्बन्ध में कुछ भी जानती होती तो आज मैं एक बच्चे का मुख देखने के लिए इतनी न तरसती और न इस तरह साधू-फ़क़ीरों के आशीर्वादों के लिए मारी-मारी फिरती। उन मक्कारों के यहाँ जैसा आशीर्वाद मिलता है वह उन औरतों ही के दिल जानते होंगे जिनको उनसे पाला पड़ चुका है।

शिक्षा—ख़ैर बहिन भारती! 'चाँद' हम लोगों की सहायता कर रहा है। हर तरह के ज्ञान देकर हमको आदमी बना रहा है। देखो इस 'शिशु-अङ्क' में गर्भ-सम्बन्धी भी बातें दे रक्खी हैं।

भारती—यह बहुत अच्छा किया। क्योंकि मैं इस अज्ञान का अनर्थ भोग रही हूँ, क्योंकि १२ बरस की उमर में पति की सङ्गत हुई, मैं दुनिया की बातें कुछ भी नहीं जानती थी। पुरुष के पास मैं केवल मिट्टी का खिलौना थी। जैसा चाहते थे, मुझसे व्यवहार करते थे। यहाँ तक कि हमारी स्वाभाविक लज्जा भी उनके सामने चुल्लू भर पानी में डूब मरती थी। वह शुरू नौजवानी की तूफ़ान में अन्धे हो रहे थे। ब्रह्मचर्य इत्यादि के ग्रन्थ और व्याख्यान वे बहुत पढ़ चुके थे, मगर स्त्री के कमरे में आते ही अपना ज्ञान बाहर ही रख देते थे। यह भी नहीं समझते थे कि रजस्वला और गर्भावस्था किस चिड़िया का नाम है। नतीजा यह हुआ कि १३ वर्ष की उमर में गर्भपात हुआ और सदैव के लिए मैं स्वास्थ्य से हाथ धो बैठी। प्रकृति ने अपनी दुर्दशा का उनसे बदला लिया, और वह रोगी हुए। उन्होंने उस रोग को मुझे भी समर्पण कर दिया। वह तो मर-खप कर किसी तरह अच्छे हो गए, मगर मेरा रोग दिनोंदिन जड़ पकड़ता गया। मैं शर्म के मारे किसी से कह भी न सकी। और अब गर्भवती होने को भी तरसती हूँ। बधाई है 'चाँद' को, जो इन बातों का ज्ञान देकर हमें अकाल मृत्यु से तो बचा रहा है। ख़ैर, मैं तो हो बीती, मगर मेरी छोटी बहिनें हमारी तरह इतना अनर्थ न सहेंगी।

शिक्षा—हाँ, जब हमारे आँख-कान दोनों खुल जायँगे तो ज्ञान को हम तक पहुँचने में कोई बाधा न होगी। और अगर हम अच्छे हैं तो ज्ञान भी हमारे साथ अच्छाई करेगा। अच्छा बहिन, फिर मिलूँगी। अब आज्ञा दो।

भारती—देखो बहिन शिक्षा, हमें भूल न जाना। तुम्हारी डोली तो हमारी फुलवारी में कहार लिए खड़े हैं। फुलवारी का रास्ता इधर है।

('शिशु-अङ्क' मेज़ पर रख कर भारती, शिक्षा के साथ जाती है)

(दूसरी तरफ़ से समाजराय का आना)

समाज—अजब अन्धेर है! इस 'चाँद' ने जनता-राम को भी मूड़ लिया। ख़ैर, बाहर हमारा कुछ बस न चला तो न सही, मगर भीतर तो हमारा रङ्ग जमा हुआ है। ('शिशु-अङ्क' देख कर) अरे! यह 'शिशु-अङ्क' यहाँ भी पहुँच गया? अरे ग़ज़ब!!

(पत्रिका उठा कर उसमें से पृष्ठ फाड़ता है)

(भारती का आना)

भारती—हाय ! हाय ! यह क्या करते हो ?

समाज—जो करना चाहिए वही करता हूँ।

भारती—आख़िर मेरे 'शिशु-अङ्क' को क्यों फाड़ दिया ?

समाज—क्योंकि यह अश्लील है।

भारती—अश्लील तो घर में टट्टीघर भी है, उसे क्यों नहीं तोड़वा देते ? ईश्वर ने तुममें भी अश्लील अङ्ग बनाए हैं, उसमें क्यों नहीं आग लगा देते ?

समाज—अजीब मूर्खा हो। यह तुम्हारे पढ़ने योग्य नहीं है।

भारती—हमारे पढ़ने योग्य है या नहीं, यह जानने वाली मैं हूँ या तुम हो ?

समाज—मगर इसके पढ़ने से तुम बिगड़ जाओगी।

भारती—वाह रे कच्चे दिल वाले हिन्दुस्तान के मर्द ! जैसे तुम हो वैसे ही तुम हम औरतों को भी समझते हो। अगर हमें बिगड़ना ही है तो मर्दों की लाख होशियारी पर भी हम बिगड़ सकती हैं। तुम्हारी सारी चालाकी हमारे आगे धरी रह जाएगी। और अगर हम नेक हैं तो किताबें पढ़ कर नहीं बिगड़ सकतीं। हम लोग मर्दों की तरह जगह-जगह फिसलने वाली छिछोरी तबीयत नहीं रखतीं। तुम्हें हमारी तरफ़ ऐसा ख़्याल रखने में शर्म नहीं मालूम होती ? छिः ! इसीलिए तो औरतें मर्दों को और उल्लू बनाती हैं। क्योंकि वह हमें चोर समझते ही हैं तो हम फिर क्यों न चोरी करें ? यह तुम्हारी शक्की निगाह हमें बिगाड़ती है, पुस्तक की बातें नहीं।

समाज—मगर इसकी बातें तुम्हारे हृदय में कुवासना उत्पन्न करके तुम्हारा चित्त डगमगा देंगी।

भारती—जानते हो, मैं भारती हूँ ! मेरा चित्त डगमगाने वाला मुआ कौन हो सकता है ? मेरे हृदय में कुवासना भड़कती है और चित्त डाँवाडोल होता है तो बस तुम्हीं को देख कर। इसलिए तुम मेरी निगाह के सामने मत आया करो।

समाज—अररर ! यह नतीजा किस मन्तक़ से निकल आया।

भारती—जिस ख़्याल से तुमने मेरी किताब फाड़ी है, उसी ख़्याल से मैं कहती हूँ कि तुम हट जाओ और अभी हट जाओ। (जाता है)

* * *

पाँचवाँ दृश्य

[स्थान—सड़क]

(चार भङ्गियों का आकर झाड़ू देना)

पहला भङ्गी—जान पड़त है हमार राम आँधर हैं।

दूसरा—फुरे हैं हो, जो आँधर न होते तो हमार अस गत होते। न पूजा करे पाई, न कुआँ में पानी भर सकी, जौन काम ससुर कौनो न करे तौन तो हम करी और ओपर से हर जगह दुतकारा जाई !

तीसरा—का कही कुछ कहत नाहीं बनत है। जेकरे पेट में हर घड़ी मैला सड़े ऊ तो पाक-साफ और हम जो उनकेर मैला साफ करी तौन जहाँ जाओ तहाँ धुत ! धुत !

चौथा—हाँ हो, हमार राम दोषी हैं। जब हमका ऊहे बनाइन हैं तो हम काहे न उनकेर पूजा करे पाई। का हम आदमी न होई ? हमरे लिए लोक-परलोक नहीं है ?

पहला—होत तो हम गाय-भैंस से भी खराब माना जाइत ?

दूसरा—जाओ, गाय-भैंस तो बहुत बड़ी चीज़ आय। अरे कूकुर तो हिन्दू छुवत हैं और हमका नाहीं छुवत हैं।

तीसरा—हमरे मन में तो ई बसत है कि जहाँ तनिको कदर नाहीं हुवाँ रहब ठीक नाहीं है।

चौथा—राम दे ! यू पाँच पसेरी के बात बहुत नीक कह्यो।

पहला—हमका तो पादरी साहब केर राम बहुत भलामानुस जान पड़त हैं।

सब—हाँ भाई, हाँ।

पहला—तो उन्हीं के पास चली। पसु से आदमी तो गिना जाव।

सब—आव चली।

पहला—अच्छा एका बोहार लेई।

दूसरा—अब झाड़ू-पन्जा का मारो गोली, हम सभै जब न रहब तो सभे आपन-आपन मैला उठइहें। तब्बै इनकेर सेखी भुलाई।

तीसरा—मुला भाई सरकारी नौकर हन। बिना एवजीदार के सड़के पर झाड़ छोड़ के कसत चला जाई ?

(समाजराय का चुपके-चुपके आना)

चौथा—ईहू ठीक है। मुला कौन ससुर सरकिया सब गन्धवाए दिहिस है। ओका पाइ जाई तो मारत-मारत अचार निकाल लेई। वही के कारन हम पर जुरमाना भवा।

समाज—(अलग) लो यारो घर से भी निकाले गए और यहाँ भी हमारे अचार निकाले जाने की तैयारी हो रही है। अगर ये कम्बख़्त जान जाएँगे कि यह सब हमारी ही करामात है तो भई गड़बड़ है।

पहला भङ्गी—(समाजराय को देख कर) यह नकुना माँ पट्टी काहे बाँधे हैं।

सब—(समाजराय को देख कर) हाँ हो।

दूसरा—हम जान गए न। यू नवा भङ्गी भवा है। अभी मैला उठावत एका गन्ध लागत है।

तीसरा—भले कह्यो। पादरी साहब केर राम हमरे लिए एवजीदार भेज दिहिन।

चौथा—हाँ। (समाजराय से) काका राम-राम !

तीसरा—(समाजराय से) कहो हो, तू के हो ?

समाज—क्या बताऊँ मैं कौन हूँ ? सच पूछो तो अब मैं न घर का हूँ और न घाट का।

पहला—अच्छा तो लो ई झाड़ और पञ्जा। अब हमार काम तू करो। हम जाइत है गिरजाघर। हुआँ से जब कोट-पतलून पहन के आउब तो हमका गुडमानी करके हाथ मिलायो, (सब मिल कर) हमरौ लेयो। (सब भङ्गी जाते हैं)

समाज—(हाथ में सभों का झाड़ लिए हुए) क्या करूँ, यह तबेले की बला बन्दर के सर गई। समय का फेर देखो। भङ्गियों को जब पादरी साहब चर गए तो झाड़ू-पञ्जा बाबू समाजराय न लेंगे तो कौन लेगा? मजबूरी अजब चीज़ है।

मंगल कामना

[विवाह के पश्चात् विदा के समय]

[श्री० आनन्दिप्रसाद जी श्रीवास्तव]

(१)

परिणय तुम्हारा प्रिय बहिन !
यह पुण्य मङ्गल-धाम हो।
दोनों प्रगति-पथ पर चलो,
उस पर नहीं विश्राम हो ॥

(२)

जग में सदा तुम सिंहनी सम,
सिंह सम निर्भय रहो।
दुख देख दुखियों का युगल
उन पर सदैव सदय रहो ॥

(३)

धन-धान्य पूरित सद्म हो,
मन नित्य ही बलवान हो।
सब प्रिय जनों का—सज्जनों का
प्राप्त नित सम्मान हो ॥

(४)

अपने परम प्रिय देश का
तुमको सदा ही ध्यान हो।
अभिमान हो तो बस तुम्हें
निज देश का अभिमान हो ॥
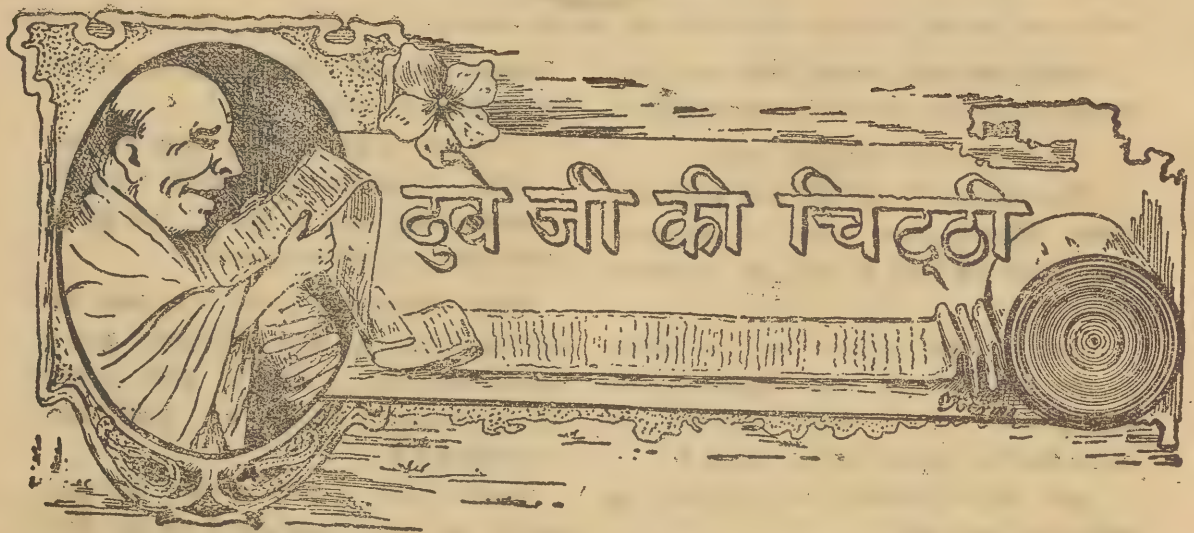
अजी सम्पादक जी महाराज,

जय राम जी की !

स्वदेशी का आन्दोलन पुनः जाग्रत हुआ है। और इस बार कुछ ज़ोरों पर दिखाई पड़ता है; क्योंकि विदेशी के बड़े पुराने-पुराने भक्त भी अपने बाप-दादा की क़सम खाकर कह रहे हैं कि—"भई अब तो स्वदेशी ही ख़रीदेंगे।" जिनके मुँह में दाँत और पेट में आँत नहीं, चिता के ईंधन हो रहे हैं, वे भी कहते हैं कि हम भी विदेशी नहीं पहनेंगे। हालाँकि अपने राम की राय में यदि वे पहनें भी तो देश की अधिक हानि नहीं होगी। ख़ैर—बासी कढ़ी में उबाल तो आई, यही क्या कम है। यहाँ तो ताज़ी कढ़ी भी 'आइस क्रीम' हुई जा रही थी। फ़िलहाल तो लोगों में काफ़ी जोश है—यदि यह स्थायी रहे तो। ऐसा न हो कि साँप-काटे की लहर प्रमाणित हो। क्योंकि हमारे नगर में विलायती कपड़े के व्यापारियों ने मालवीय जी के आने की ख़बर जो सुनी तो चुपके से ऑर्डर दे दिए और मालवीय जी के आने पर प्रतिज्ञा की कि अब विलायती कपड़ा साल भर तक नहीं मँगावेंगे—जो मौजूद है वही बेचेंगे। जिस माल का ऑर्डर प्रतिज्ञा करने के दो दिन पहले जान-बूझ कर दिया था, वह भी उनके यहाँ 'मौजूद' है। अन्तर केवल इतना है कि वह उनके हिन्दुस्तान के गोदाम में नहीं—लङ्काशायर तथा मानचेस्टर के गोदाम में है। चलिए दोनों काम हो गए—इधर प्रतिज्ञा करके देश-सेवक और त्यागी भी बन गए और विलायती माल बेच कर कौड़ें भी करते रहेंगे। परन्तु यदि जनता अपनी प्रतिज्ञा पर दृढ़ रहे और विलायती माल न ख़रीदे तो व्यापारियों की नानी को जीवन से असहयोग करना पड़ेगा—यह निश्चय है।

उस दिन एक महाशय से वार्त्तालाप हुआ। यह महाशय हाल ही में स्वदेशी-भक्त हुए हैं। वह बोले—भई अब तो स्वदेशी ही पहनना चाहिए।

मैंने कहा—बेशक अब पहनना चाहिए—अब नमक बनने लगा है।

"नमक भी बनने लगा है और सच बात तो यह है कि विदेशी से देश की हानि है।"

"आपने यह बात इसी जीवन में महसूस कर ली, यह आश्चर्य की बात है।"

"महसूस तो की—यही क्या कम है। बहुत से लोग तो अब भी नहीं महसूस कर रहे हैं। कुछ ठिकाना है—साठ करोड़ का विदेशी कपड़ा साल भर में यहाँ आता है!"

"साठ करोड़ रुपए बहुत होते हैं—क्यों न?"

"बहुत होते हैं—दुबे जी! पाँच करोड़ का महीना और लगभग सत्रह लाख दैनिक हुआ। सत्रह लाख रोज़—अरे बाप रे!"

"इतना रुपया आपको मिल जाय जो आप क्या करें?"

"क्यों मज़ाक़ करते हो?"

"मज़ाक़ नहीं—कल्पना कीजिए कि आपको सत्रह लाख रुपए नित्य मिल जाया करें तो आप क्या करें ?"

"करने-धरने की बात सोचने ही से दिमाग़ चक्कर खाने लगता है। पहली बात तो यह है कि इतना रुपया रक्खेंगे कहाँ।"

"बेशक यह बड़ी अड़चन है। रखने की जगह तो हिन्दुस्तान में कहीं है नहीं।"

"यही तो कठिनता है।"

"ऐसी दशा में तो उनका विलायत चला जाना ही ठीक है—यहाँ रखने की जगह ही नहीं।"

"जगह बनवाए से बन सकती है।"

"हाँ, परन्तु झगड़ा बहुत है।"

"यही तो ख़राबी है।"

"तो जाने दीजिए—उसका सोचना ही व्यर्थ है।"

"जिसके पास लक्ष्मी होती है, वह चिन्तित और दुखी ही रहता है। शास्त्रों में लिखा है।"

"तब तो हिन्दुस्तान ग़रीब रहे तो अच्छा !"

"ग़रीब तो क्या रहे; परन्तु अधिक धन होना भी बुरा है।"

"तो आप विदेशी ही पहिनें—इससे अधिक धन नहीं होने पावेगा।"

"विदेशी तो अब पहनेंगे नहीं—चाहे धन बढ़े या घटे। जो प्रतिज्ञा कर ली सो कर ली।"

एक अन्य मित्र मिले। उन्होंने कहा—अब कोई चीज़ विलायती नहीं ख़रीदना चाहिए।

मैंने कहा—अच्छा, तब तो आप महात्मा जी से भी चार क़दम आगे निकल गए।

"क्यों ?"—उन्होंने आश्चर्य से पूछा।

"बहुत सी चीज़ें ऐसी हैं जिनके बिना आपका काम ही नहीं चल सकता।"

"कौन सी चीज़ें, एकाध का नाम लीजिए।"

"सूई को ही ले लीजिए। बिना सूई के आपका काम चलेगा नहीं और सूई हिन्दुस्तान में बनती नहीं।"

"सूई नहीं बनती ? तो एक बात और भी तो है—सूई तो दर्ज़ी ख़रीदेगा, हम थोड़ा ही ख़रीदेंगे। परन्तु कोई ऐसी युक्ति नहीं है कि बिना सूई के काम चल जाय ?"

"इसकी युक्ति तो है।"

"क्या ?"

"आप कोट के लिए कपड़ा लावें तो उसे सिलाव नहीं।"

"तो क्या करें ?"

"उसे ओढ़े रहें।"

"और कमीज़ का कपड़ा क्या करें ?"

"उसे भी ओढ़े रहें। पहले कमीज़ का कपड़ा ओढ़ लिया, उसके ऊपर से कोट का कपड़ा ओढ़ लिया जाय।"

"यह युक्ति कुछ समझ में नहीं आई।"

"दूसरी युक्ति यह है कि गोंद या सरेश से चिपका लिया जाय।"

"परन्तु धुलाने से निकल जायगा ?"

"धुल कर आवे तो फिर चिपका लिया जाय।"

"ऊँ हूँ ! यह सब झगड़ा है। बबूल के काँटे सूई की जगह काम में नहीं आ सकते ?"

"उसमें डोरा कैसे डाला जावेगा ?"

"छेद बना लिया जायगा। परन्तु हाँ, एक बात है, टूट जायगा—मोटे कपड़े में काम नहीं देगा।"

"इसके लिए उसे लोहे या पीतल से मढ़ा लिया जाय—तब नहीं टूटेगा।"

"हाँ, यह भी ठीक है। परन्तु जब यही करना है तो सूई ही क्यों न बनाई जाय।"

"यह ठीक है, स्वदेशी सूई बनाई जाय। यह युक्ति आपने बहुत सुन्दर सोची। अच्छा सूई तो स्वदेशी बन गई अब × × ×।"

"अभी कहाँ बन गई—दुबे जी ! अभी तो केवल विचार हो रहा है।"

"हम हिन्दुस्तानियों के लिए इतना ही काफ़ी है—जब यह विचार आया कि स्वदेशी सूई बनाई जाय तो समझ लीजिए कि बन गई।"

"यदि मेरे पास रुपया होता तो मैं तो सूई बनाने का कारख़ाना खोल देता।"

"एक तरकीब और है ! और वह अभी सूझी है।"

"वह क्या ?"

"कपड़ा बनाने वाले मिल यदि कपड़े के थान न बुन कर कोट, कमीज़ें, वास्कट बुना करें तो बड़ा काम हो। न सूई की ज़रूरत न सिलाई का झञ्झट।"

"वाक़ई तरकीब तो बड़ी अच्छी है। यदि मिल वाले स्वीकार कर लें तो।"

"न स्वीकार करें तो सत्याग्रह कीजिए, असहयोग कीजिए, धरना दीजिए—तब झख मारेंगे और स्वीकार करेंगे।"

"इसमें उनकी कुछ हानि तो है नहीं।"

"हानि! अजी उल्टा लाभ है। दाम अधिक मिलेंगे।"

"बेशक! यदि न स्वीकार करें तो यह उनकी मूर्खता है।"

"सोलहो आने! अच्छा और बहुत सी चीज़ें विलायती हैं और उनके बिना काम नहीं चल सकता—उनके सम्बन्ध में क्या होगा?"

"अजी सब बन सकती हैं—ऐसी कौन चीज़ है जो हिन्दुस्तान में नहीं बन सकती?"

"कोई नहीं!"

"तो बस फिर!"

"ख़ैर, चलो यह भी तय हो गया कि यहाँ सब चीज़ें बन सकती हैं, इसलिए कोई विदेशी चीज़ न ख़रीदी जाय।"

"आख़िर मेरी बात आपको माननी पड़ी।"

"आपने बात ही ऐसी कह दी कि सारा झगड़ा ही मिट गया। महात्मा जी को भी यह बात नहीं सूझी।"

"दिमाग़ ही तो है—लड़ गया।"

"ख़ूब लड़ा। यदि आपसे और आपके दिमाग़ से ऐसा ही युद्ध होता रहा तो थोड़े ही दिनों में आप महात्मा जी से भी बढ़ जायँगे। बराबर के लगभग तो आप इसी समय पहुँच गए हैं।"

"आप भी क्या बातें करते हैं—कहाँ मैं और कहाँ महात्मा जी। वह वही हैं।"

"हाँ, यह भी ठीक है—वह आप जैसे तो कभी हो ही नहीं सकते।"

एक अन्य महोदय ने स्वदेशी का व्रत तो ले लिया, परन्तु उन्हें विदेशी के त्यागने का सख़्त अफ़सोस है। उन्हें सबसे बड़ी शिकायत यह है कि उनकी इच्छा तथा आवश्यकता के अनुसार स्वदेशी कपड़े बनते ही नहीं। विशेषतः धोती जोड़ों के सम्बन्ध में उन्हें बहुत बड़ी शिकायत है। मुझसे बोले—दुबे जी, और तो सब ठीक है; परन्तु धोती जोड़ों का घोर कष्ट हो गया।

मैंने पूछा—क्यों? स्वदेशी जोड़े तो बड़े सुन्दर बनने लगे हैं।

"सुन्दर तो बनने लगे हैं, परन्तु मेरी नाप के नहीं बनते।"

"आपकी क्या कोई ख़ास नाप है?"—मैंने पूछा।

"हाँ, मैं बारह गज़ा और ५२ इञ्ची जोड़ा पहनता हूँ।"

"तो क्या इतने बड़े जोड़े स्वदेशी नहीं आते?"

"कहाँ आते हैं—मैंने तो बहुत तलाश किए, पर मिले ही नहीं।"

"विलायती मिलते हैं?"

"बहुत! चाहे जितने ले लीजिए।"

"तो मालूम होता है आपने विलायत वालों को इतना बड़ा जोड़ा बनाने के लिए लिखा होगा।"

"जी नहीं, वह स्वयम् बना कर भेजते हैं। इसी से तो कहता हूँ कि विलायत वाले बड़े बुद्धिमान हैं। सबकी ज़रूरत की चीज़ बनाते हैं।"

"परन्तु आपको इतने बड़े जोड़े की आवश्यकता क्या है? आपके लिए दस गज़ा काफ़ी है।"

"बात यह है कि मैं दो लाँग लगाता हूँ।"

"परन्तु दो लाँगों की आवश्यकता क्या है?"

"आदत पड़ गई है।"

"ग़नीमत है कि आपको तीन लाँगें लगाने की आदत नहीं पड़ी, अन्यथा विलायत वालों को भी कठिनता पड़ती। क्योंकि उस दशा में तेरह गज़ा और ६० इञ्ची जोड़ा उन्हें तैयार करना पड़ता।"

"कौन—वह तैयार कर देते।"

"मुझे इसमें सन्देह है।"

"आख़िर जब उन्होंने इस बात का पता लगा लिया कि हिन्दुस्तान में बारह गज़ा जोड़ा पहनने वाले लोग भी हैं तो इसका भी पता लगा लेते।"

"यह भी आप ठीक कहते हैं।"

"तो अब बताइए, धोती जोड़ों के लिए मैं क्या करूँ?"

"मेरी समझ में तो आप पाजामा पहना कीजिए।"

"पाजामा!"

"जी!"

"पाजामा तो हम चाहे मर जायँ तब भी न पहनेंगे।"

"मरने के बाद तो न पाजामे की आवश्यकता रहती है न धोती की। प्रश्न तो इस समय के लिए है जब कि

आप हट्टे-कट्टे खड़े हैं। पाजामे से आपको इतनी घृणा क्यों है ?"

"पाजामा मुसलमान पहनते हैं।"

"मुसलमान तो कोट भी पहनते हैं, अचकन भी पहनते हैं—वास्कट भी पहनते हैं, इसलिए आप उन्हें भी न पहना करें।"

"धोती की बराबरी पाजामा नहीं कर सकता।"

"धोती की बराबरी चाहे न कर सके, परन्तु आपकी टाँगों का मुक़ाबला भली भाँति कर सकता है।"

"जितना आराम धोती में है उतना आराम पाजामे में थोड़ा ही मिल सकता है।"

"हाँ, दो लाँगें लगाने को नहीं मिलेंगी—यह दोष पाजामे में अवश्य है।"

"यह थोड़ा दोष है ?"

"नहीं, बहुत बड़ा दोष है।"

"धोती में एक और आराम है।"

"वह क्या ?"

"जब चाहा, आधी धोती खोल कर ओढ़ ली। पाजामा ओढ़ा जा सकता है ?"

"नहीं ओढ़ा जा सकता।"

"तो फिर ?"

"पाजामे के साथ एक ओढ़नी कमर में लपेटे रहा कीजिए। जब ओढ़ने की आवश्यकता हुई, कमर से ओढ़नी खोल कर ओढ़ ली।"

"यह सब स्वाँग है।"

"तो आख़िर आपकी धोती की समस्या कैसे हल होगी ?"

"कुछ न कुछ तो करना ही पड़ेगा। न होगा धोती पहनना ही छोड़ देंगे।"

"तो पहिनिएगा क्या—लहँगा ?"

"अजी नहीं, आप भी अच्छा मज़ाक़ करते हैं। बढ़िया मारकीन या मलमल का थान लाकर उसकी धोतियाँ बनावेंगे।"

"उसमें किनारी तो होगी नहीं।"

"न सही; परन्तु विलायती जोड़ा तो अब इस जन्म में नहीं पहनेंगे।"

"और दूसरे जन्म में ईश्वर के लिए दो लाँग बाँधने की आदत न डालिएगा। क्योंकि इसी आदत की बदौलत आप इस जन्म में स्वदेशी जोड़ों से विमुख रहे जाते हैं।"

इतना सुन कर वह हँसते हुए चले गए। सम्पादक जी, देखा आपने ? स्वदेशी पहनने की प्रतिज्ञा तो लोग कर रहे हैं, परन्तु स्वदेशी से कोई न कोई शिकायत अवश्य है। अधिकांश को तो यही शिकायत है कि स्वदेशी विदेशी से मँहगा पड़ता है। परन्तु फिर भी लक्षण अच्छे हैं। यदि यही भावना रही तो स्वदेशी का यथेष्ट प्रचार हो जायगा।

भवदीय,

विजयानन्द (दुबे जी)

मारवाड़ी अग्रवाल महासभा का निश्चय

कलकत्ता के श्री० देवीप्रसाद जी खेतान के सभापतित्व में होने वाले उक्त महासभा का १२ वाँ अधिवेशन, उज्जैन में सानन्द समाप्त हो गया। सभापति महोदय का भाषण विचारपूर्ण और प्रभावशाली था। सभा ने शारदा क़ानून का स्वागत किया और स्वदेशी, ख़ास कर खद्दर का व्यवहार करने की जनता से अपील की। मारवाड़ी भाइयों की यह सुबुद्धि क़ायम रहे !

एक आदर्श विवाह

बुरहानपुर के सेठ हीरालाल नेमीदास जी ने अपनी कन्या की शादी जिस सादगी और वैदिक आदर्शों को सामने रखते हुए की है, वह प्रशंसनीय है। स्वयंवर की रीति से कन्या ने वर श्रीनन्दलाल जी पोद्दार के गले में वरमाला डाल दी और यावत् कुरीतियों का बहिष्कार करते हुए विवाह-कार्य सम्पन्न किया गया। मारवाड़ी समाज में यह आदर्श विवाह अपना सानी नहीं रखता।

इलाहाबाद में मातृमन्दिर

इलाहाबाद में जिस मातृमन्दिर के खुलने की इतने दिनों से प्रतीक्षा की जा रही थी वह, पाठकों को यह जान कर प्रसन्नता होगी, इस मास में खुल गया। ता० १५ मई से नियमानुसार कार्य प्रारम्भ हो जायगा।

यह संस्था विशेषतः ऐसी ही स्त्रियों की सहायता करेगी, जिन्हें अनुचित रूप से गर्भ रह गया हो और इस कारण जो घर से निकाल दी गई हों अथवा जिनके पथ-भ्रष्ट हो जाने की सम्भावना हो। अनाथ बच्चों को भी यहाँ रखने तथा उन्हें पढ़ाने का प्रबन्ध किया जायगा। जिन देवियों अथवा सज्जनों को आवश्यकता हो वे निम्न-लिखित पते से पत्र-व्यवहार कर सकते हैं :—

कुमारी लीलावती जी प्रिन्सिपल, मातृमन्दिर
कृष्ण-कुटीर, रसूलाबाद
इलाहाबाद

मातृमन्दिर-कोष

मातृमन्दिर (इलाहाबाद) के मन्त्री महोदय सूचित करते हैं कि गत अप्रैल मास के अङ्क में प्रकाशित सूचना के अनुसार मातृमन्दिर-कोष में ६४७) रु० ८ पा० नक़द प्राप्त हुए थे। विगत मार्च मास में ३५) रु० नक़द और भी मिले हैं, जिसकी सूची इस प्रकार है :—

१—श्रीमती गुरप्यारी देवी, मार्फ़त श्रीयुत प्रिया-दास जी टण्डन, एक्ज़ेक्यूटिव इञ्जिनियर, गुजरानवाला ... ... १०)
२—श्री० भुवनेश्वरसिंह जी "भुवन" कमलालय, मुज़फ़्फ़रपुर ... ... ४)
३—श्रीयुत सुन्दरदास जी मेहरा, सिद्धेश्वरी स्ट्रीट, बनारस ... ... ५)
४—श्रीमती चन्द्रकुमारी मिश्र, मार्फ़त मेजर पृथ्वी-सिंह साहेब, कोटा ... ... ५)
५—पं० मूलचन्द गोविन्दराम पुरोहित पो० गोकक (बेलगाँव) ... ... १)
६—पं० याज्ञिक मिश्र पो० खोदियार आर० एस० (उत्तर गुजरात) ... ... १०)

३५)

इस प्रकार अब तक ६८२) रुपए ८ पाई नक़द हमें प्राप्त हुए हैं। 'चाँद' के आगामी अङ्क में इस संस्था के सम्बन्ध में विशेष प्रकाश डाला जायगा। अब देशवासियों का कर्तव्य है कि वे शीघ्र ही और भी सहायता भेज कर हमारा हाथ बटावें।

* *

स्वीकृति

विगत मास के अङ्क के साथ 'भारत में अङ्गरेज़ी राज्य' वाले मुक़द्दमे तथा अन्य मुक़द्दमों के ख़र्च में सहायता देने के लिए जो अपील प्रकाशित हुई थी उसके उत्तर में ता० १२ अप्रैल से २५ अप्रैल तक निम्नलिखित सज्जनों की सहायता प्राप्त हुई है, जिसे हम धन्यवाद सहित नीचे प्रकाशित करते हैं :—

१—श्रीयुत एस० पी० एस० पेजाब मठ पो० सुरत-फल, मङ्गलोर (दक्षिण कनारा) ... ५)
२—श्रीयुत सुन्दरदास जी मेहरा सिद्धेश्वरी स्ट्रीट, बनारस ... ... ६॥)

३—श्रीयुत आर० एस० बूब पो० अकोला ... १०)
४—श्रीयुत शिवसहाय जी शर्मा, पो० रुदौली ज़ि० बाराबङ्की ... ... २)
५—श्रीयुत हरीप्रसाद जी कनोडिया, पो० रुदौली ज़िला बाराबङ्की ... ... २)
६—बाबू चन्द्रभूषण जी वैश मु० और पो० नारायणगञ्ज (ढाका)... ... ... ५)
७—श्रीयुत आर० पी० तिवारी गार्ड, बी० एन० आर० झारसुगुड़ा ... ... ३॥)
८—श्रीयुत प्रहलादराय रुङ्गटा नं० २३५-२३६ सी सुर्ती बाज़ार, रङ्गून ... ... ५)
९—श्रीयुत बनारसीदास गुप्त स्टेशन मास्टर चकराजिन्द, पो० सरकारा (बिजनौर) ... ... २)
१०—श्रीमती राधावती देवी, मार्फ़त ठाकुर वीरनारायण सब इन्स्पेक्टर-पुलिस मुत्तसिल मुँगेर ... ... ५)

जोड़ ४६)

* * *

वैवाहिक अत्याचार

शारदा बिल के भय से गत मास देश भर में विवाहों की धूम सी मच गई थी। बिहार के मुज़फ़्फ़रपुर ज़िले में मार्च महीने में प्रायः ६ हज़ार बच्चे-बच्चियों की शादी हुई, जिनमें एक सात दिन की लड़की का विवाह २१ दिन के लड़के के साथ किया गया। न जाने देश की यह बुद्धि उसे किस ओर ले जायगी !

* * *

कन्या-विक्रय

बङ्गाल प्रान्त के बाँकुड़ा नामक स्थान में एक मछुए की स्त्री ने अपनी ४ वर्ष की कन्या एक ३५ वर्ष के वर से ब्याह दी। पहले कन्या की माता यह विवाह करने को राज़ी नहीं थी, किन्तु वर ने जब उसे १४७) रुपए नगद दिए और लड़की से उत्पन्न बच्चे के नाम अपनी जायदाद लिख देने का वचन दिया, तो उसने अपनी लड़की उसे सौंप दी। रुपयों की एक इतनी छोटी संख्या के लोभ में पड़ कर एक अज्ञान बालिका का बलिदान करने का यह शायद पहला ही मौक़ा है !!

* * *

कौन्सिल में मोची

कुछ समय पहले बङ्गाल की कौन्सिल के सदस्य एक मेहतर—हुसेनी रावत—चुने गए थे। अब ख़बर आई है कि आसाम कौन्सिल में श्रीचिरातन नाम के एक मोची महोदय सदस्य निर्वाचित हुए हैं। आपने अपने प्रतिद्वन्दी वकील श्री० इशारेलाल को बहुत अधिक वोटों से हरा दिया। बधाई !

* * *

स्त्रियों का उत्तराधिकार

मेरठ में आर्य-स्त्री-समाज से सम्बद्ध महिला-कॉन्फ़्रेन्स का एक अधिवेशन अभी हुआ है। सभानेत्री श्रीमती उर्मिला देवी जी प्रभाकर थीं। उन्होंने अपने भाषण में १८७२ और १९२३ के प्रस्तावित सिविल मैरिज ऐक्टों के हानि-लाभ पर एक विवेचनात्मक दृष्टि डालते हुए, चौधरी मुख़्त्यारसिंह के द्वारा एसेम्बली में उपस्थित किए गए प्रस्ताव पास कराने पर ज़ोर दिया। उन्होंने यह भी कहा कि इस क़ानून के अनुसार एक पत्नी के जीवित रहते हुए पति महाशय दूसरी शादी न कर सकें, ऐसी व्यवस्था भी हो जानी चाहिए। इसके सिवा इस क़ानून के अनुसार जिस विवाह की रजिस्ट्री हुई हो, विधवा होने पर उस स्त्री को पति की सारी मिलकियत पर अधिकार हो।

* * *

ज़ुल्म की सीमा

पटियाला रियासत की प्रजा की दरख़्वास्त पर सरकार की ओर से पटियाला-महाराज के कुकर्मों का पता लगाने के लिए एक जाँच कमेटी नियुक्त की गई थी। उसके रिपोर्ट से जिन भयानक काण्डों का पता लगा है, उन्हें सुन कर रोंगटे खड़े हो जाते हैं। रिपोर्ट में कहा गया है कि महाराजा के ससुर के चचेरे भाई लालसिंह की स्त्री बड़ी सुन्दर थी। महाराजा साहब ने उसे अपने महल में बन्द करवा दिया और लालसिंह को मरवा डाला। इस तरह की और भी कितनी ही घटनाओं का पता लगा है, जिनसे महाराजा की कामुकता और अन्याय का कुछ पता चलता है। न जाने इन ज़ुल्मों की सीमा कहाँ है और इनका अन्त किस प्रकार होगा !

* * *

वासनाओं का गुलाम

झाबुआ रियासत (मध्यप्रान्त) के राज्यच्युत नरेश ने ६१ वर्ष की बूढ़ी अवस्था में अपनी छठीं शादी की है। इस समय भी राजा साहब की छै रानियाँ और कितनी ही रखेलियाँ मौजूद हैं। राजा साहब के सारे अधिकार स्थायी रूप से छीन लिए गए हैं और उनकी कोई स्त्री सुखी नहीं है। राजा साहब की कामुकता पर हमें तरस आता है। एक युवती रमणी के यौवन से खिलवाड़ करने वाले इन राजा साहब के दुस्साहस पर हमें आश्चर्य भी होता है।

*   *   *

शिक्षित समाज में बाल-विवाह

गत मास की २४ तारीख़ को लखनऊ के एक उच्च शिक्षित परिवार में एक विवाह सम्पन्न हुआ है। यह विवाह अवध चीफ़ कोर्ट के जस्टिस वज़ीरहसन की बड़ी लड़की से महमूदाबाद के महाराजा के छोटे लड़के का हुआ है। लड़की की अवस्था केवल छः वर्ष की है और लड़का तो उससे भी छोटा है। एक तो अधिकांश मुस्लिम समाज योंही अपनी हठधर्मी के कारण अपने अतिरिक्त सारे देश को रसातल की ओर ढकेल ही रहा है, उस पर शिक्षित परिवारों का यह आदर्श कैसा भयङ्कर अनर्थ करने में सहायक होगा, यह कल्पना का विषय है !!

आवश्यक सूचना

श्रद्धानन्द अनाथ महिलाश्रम, बम्बई के मन्त्री महोदय लिखते हैं :—

श्री० सम्पादक जी, 'चाँद'

आपकी पत्रिका के अप्रैल के अङ्क में जिन दुःखी और असहाय स्त्रियों का हाल छपा है, उन्हें सूचना दे दीजिए कि वे यदि चाहें तो हमारे आश्रम में आ सकती हैं, यहाँ उनके लिए सन्तोषजनक प्रबन्ध हो जायगा।

[इस सूचना के लिए हम मन्त्री महोदय को सप्रेम धन्यवाद देते हैं तथा आशा करते हैं कि 'चाँद' की पाठक-पाठिकाएँ इससे लाभ उठाएँगी। इस संस्था की विस्तृत समालोचना 'चाँद' के विगत जनवरी मास के अङ्क में प्रकाशित हो चुकी है। पत्र-व्यवहार निम्नलिखित पते से करना चाहिए :—

मन्त्री,
श्रद्धानन्द अनाथ महिलाश्रम,
कस्टम हाउस रोड,
हरि बिल्डिङ्ग, फ़ोर्ट, बम्बई]

एक विचित्र प्रथा

बड़ौदा रियासत के कुडवा कुनबियों में विवाह की जो प्रथा है, वह बड़ी ही आश्चर्य-जनक और कौतूहलोत्पादक है। उनके यहाँ लड़के-लड़कियों की शादी, उनके कुल-देवता के द्वारा नियत समय पर कर दी जाती है। ऐसी स्थिति में अनेक बार ऐसा होता है कि एक ही तिथि में उनके यहाँ हज़ारों शादियाँ हुआ करती हैं। कभी-कभी तो इतने छोटे-छोटे बच्चे-बच्चियों की शादी वे करते हैं कि वैवाहिक कृत्यों को करने में असमर्थ होने के कारण, बच्चों के बदले उनके माता-पिता ही उन रस्मों को पूरा करते हैं। यदि किसी कन्या के लिए योग्य वर न मिला और देवता की आज्ञा हो गई तो किसी फूल के गुच्छे के साथ उसकी शादी करके गुच्छे को नदी में फेंक देते और लड़की को विधवा मान लेते हैं। फिर, जब कभी देवता की आज्ञा होती थी तो वह बालिका अपना पुनर्विवाह कर सकती है।

बड़ौदा में हाल ही में बाल-विवाह का संशोधित क़ानून पास हुआ है। इस क़ानून के भय से इन लोगों ने महाराजा गायकवाड़ के पास इसके विरोध में अर्ज़ियाँ दी थीं, लेकिन, महाराजा ने उन्हें यह कह कर वापस कर दिया कि जो क़ानून सार्वजनिक हैं, उनके विरुद्ध कोई कार्रवाई नहीं की जा सकती।

हिन्दुस्तानी एकेडेमी संयुक्त प्रान्त, इलाहाबाद

हिन्दुस्तानी एकेडेमी ने निश्चय किया है कि एक त्रैमासिक पत्रिका हिन्दी में प्रकाशित करे। पत्रिका में साहित्य, इतिहास, भाषा, पुरातत्व, दर्शन, विज्ञान आदि पर मौलिक और ऊँचे दर्जे के लेख होंगे। प्रकाशित पुस्तकों की समालोचना भी रहेगी।

पत्रिका के हर अङ्क में रॉयल साइज़ (अठ पेजी) के १०० पृष्ठ और समय-समय पर चित्र रहेंगे। सालाना चन्दा केवल ८) रु० होगा।

अच्छे लेखों पर उचित पुरस्कार दिया जायगा। समालोचनार्थ पुस्तकों की दो प्रतियाँ आनी चाहिए। साहित्य-सम्बन्धी विज्ञापनों को ही पत्रिका में छापा जायगा। लेखकों और ग्राहकों से निवेदन है कि नीचे लिखे हुए पते से पत्र-व्यवहार करें।

जेनरल सेक्रेटरी

हिन्दुस्तानी एकेडेमी यू० पी०;

इलाहाबाद

Regd. No. A—1154

मालिका

हिन्दी-संसार के सुपरिचित कवि और लेखक—
पं॰ जनार्दनप्रसाद झा 'द्विज', बी॰ ए॰

यह वह 'मालिका' नहीं जिसके फूल मुरझा जायँगे, यह वह 'मालिका' नहीं जो दो-एक दिन में सूख जायगी। यह वह 'मालिका' है जिसकी ताज़गी सदैव बनी रहेगी। इसके फूलों की एक-एक पङ्खुरी में सौन्दर्य है, सौरभ है, मधु है, मदिरा है। आपकी आँखें तृप्त हो जायँगी, दिमाग़ ताज़ा हो जायगा, हृदय की प्यास बुझ जायगी, आप मस्ती में झूमने लगेंगे।

इसलिए हर[illegible] आग्रह है कि [illegible] 'मालिका' की ए[illegible] प्रति अवश्य मँगा लीजिए, नहीं तो इसके बिना आपकी आलमारी शोभा-हीन रहेगी। हमारा दावा है कि ऐसी पुस्तक आप हमेशा नहीं पा सकते। अभी मौक़ा है, मँगा लीजिए! मू॰ ४) रु॰; स्थायी ग्राहकों से ३)

 व्यवस्थापिका 'चाँद' कार्यालय, चन्द्रलोक, इलाहाबाद

Printed and Published by SHUKDEVA ROY—Editor—at the Fine Art Printing Cottage, 28, Edmonstone Road, Chandralok, Allahabad.